मध्यकालीन हिंदी कविता

(DSC-1B) **Credits: 06**

HIND 103

पूर्णांक : 70 (रेगुलर परीक्षार्थी/आई.सी.डी.ई.ओ.एल.)

आन्तरिक मूल्यांकन : 30

समय : तीन घण्टे

इकाई -1

1.1 कबीर तथा सूरदास का व्यक्तित्व एवं कृतित्व : सामान्य परिचय

1.2 कबीर तथा सूरदास की काव्यगत विशेषताएं

पाठ्यपुस्तक-कबीर ग्रंथावली, सं. श्यामसुन्दर दास, काशी नागरी प्रचारिणी सभा।

1.3 कबीर की साखियाँ - गुरुदेव कौ अंग दोहा संख्या 3, 4

कुसंगति कौ अंग 6, 7

कस्तुरिया युग कौ अंग 4, 9

कबीर के पद - 1, 2, 15, 16

पाठ्यपुस्तक-भ्रमरगीत सार (सं.) रामचन्द्र शुक्ल

1.4 सूरदास के पद - 1, 2, 43, 44, 111, 115, 354, 355, 387, 402

इकाई-2

2.1 तुलसीदास तथा मीरांबाई का व्यक्तित्व एवं कृतित्व : सामान्य परिचय

2.2 तुलसीदास तथा मीरांबाई की काव्यगत विशेषताएं

पाठ्यपुस्तक-कवितावली, गीताप्रेस गोरखपुर, सं. 2052, 36वां संस्करण

2.3 बालकांड-1

उत्तरकांड - 96, 106

विनय पत्रिका - पद संख्या - 105, 111, 162

पाठ्यपुस्तक- मीरांबाई की पदावली, सं. आचार्य परशुराम चतुर्वेदी, हिन्दी साहित्य सम्मेलन

2.4 मीरांबाई के पद - 5, 17, 18, 19, 22, 23, 25, 41, 73, 158

इकाई-3

3.1 रसखान तथा बिहारी का व्यक्तित्व एवं कृतित्व : सामान्य परिचय

3.2 रसखान तथा बिहारी की काव्यगत विशेषताएं

पाठ्यपुस्तक-रसखान रचनावली, सं. विद्यानिवास मिश्र, सत्यदेव मिश्र, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, सं. 1993

3.3 रसखान के पद - 1, 2, 3, 4, 5, 6, 7

पाठ्यपुस्तक - बिहारी रत्नाकर, सं. जगन्नाथ रत्नाकर प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली

3.4 बिहारी के दोहे - 2, 15, 20, 25, 38, 46, 69, 70, 110, 123

इकाई–4

4.1 भूषण तथा घनानंद का व्यक्तित्व एवं कृतित्व : सामान्य परिचय

4.2 भूषण तथा घनानंद की काव्यगत विशेषताएं

पाठ्यपुस्तक–भूषणग्रन्थावली, नागरी प्रचारिणी सभा, कांशी, सं. 2015

4.3 शिवराज–भूषण– 2 से 9 तक दोहे

पाठ्यपुस्तक–घनानंद कवित्त सं., विश्वनाथ प्रसाद मिश्र

4.4 घनानंद के छंद – 1 – 8 तक

*****

इकाई–1
कबीरदास का जीवन परिचय

संरचना

1.1 भूमिका

1.2 उद्देश्य

1.3 कबीरदास का जीवन परिचय

1.3.1 कबीरदास की रचनाएं

1.3.2 कबीरदास की काव्यगत विशेषताएं

स्वयं आकलन प्रश्न

1.4 सारांश

1.5 कठिन शब्दावली

1.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

1.7 संदर्भित पुस्तकें

1.8 सात्रिक प्रश्न

1.1 भूमिका

सन्त कबीर के अन्तः बाह्य व्यक्तित्व का समन्वित आकलन करते हुए विद्वान् लेखक और आलोचक आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी ने एक स्थल पर उचित ही लिखा है –"वे सिर से पैर तक मस्तमौला, स्वभाव से फक्कड़, आदत से अक्कड़, भक्त के सामने निरीह, वेषधारी के आगे प्रचण्ड, दिल के साफ, दिमाग के दुरूस्त, भीतर से कोमल, बाहर से कठोर, जन्म से अस्पृश्य, कर्म से वन्दनीय थे। युग अवतार की शक्ति और विश्वास लेकर पैदा हुए थे और युग-प्रवर्त्तक की दृढ़ता उनमें वर्तमान थी, इसलिए वे युग-प्रवर्त्तक कर सके।" हमारे विचार में इससे अच्छा और सन्तुलित आंकलन अन्य कुछ हो ही नहीं सकता। सन्त कबीर अन्तः बाह्य स्तर पर जो कुछ भी थे, वह सब इस प्रत्यंकन में निश्चय ही अन्तर्हित है।

1.2 उद्देश्य

1. कबीरदास के जीवन की जानकारी।
2. कबीरदास की रचनाओं का बोध।
3. कबीरदास की रचनाओं में वर्ण्य विषय का बोध।
4. कबीरदास समाज सुधारक होने का बोध।

1.3 कबीरदास का जीवन परिचय

हिन्दी साहित्य के मध्ययुगीन भक्ति आन्दोलन की नियुक्तियां संतधारा के 'कबीर' अन्यतम कवि हैं, जिन्हें किसी परिचय की आवश्यकता नहीं है। यहां संक्षेप में उनके जीवन को देख लें। कबीर के जन्म एवं जीवनवृत्त के विषय में ज्ञात कुछ भी नहीं है, लेकिन जनश्रुतियों एवं दो चार साखियों से यह पता लगाया जाता है कि जब उत्तर भारत के सिकन्दर लोदी सन् 1489–1518 युद्ध शासन कर रहा था, तब उसके समय कबीर विद्यमान थे। कबीर के जीवन में संबंधित विवरणिकाएं अनेक ग्रन्थों में मिलती हैं, किन्तु जन्म तिथि की दृष्टि से 'कबीर चरित्र बोध' का महत्त्व अविस्मरणीय है। उनमें कबीर का जन्म 'चौदह सौ पचपन विक्रमी, ज्येष्ठ

सदी पूर्णिमा, सोमवार स्पष्टत: लिखा है। डॉ. माता प्रसाद गुप्त ने एस.आर. पिल्लै की 'इंडियन क्रौनौलॉजी' के आधर पर गणित कर यह स्पष्ट किया कि सं. 1455 की ज्येष्ठ पूर्णिमा को सोमवार ही पड़ता है। कबीर की जन्म तिथि के संबंध में कबीर-पंथियों में यह पद्य प्रसिद्ध है-

चौदह सौ पचपन साल गए, चन्द्रवार एक ठाठ ठए।
जेठ सुदी बरसायत कौ पूरनमासी तिथि प्रगट भए।
घन गरजे दामिनि दमके बूंदे बरषै झर लाग गए।
लहर तालाब में कमल खिलै, तक कबीर भानु प्रगट हुए।

इसी के आधार पर डॉ. श्यामसुन्दरदास ने 'गए' को व्यतीत हो जाने के अर्थ में मानकर कबीर का जन्म संवत् 1456 सिद्ध करने का प्रयत्न किया है, किन्तु गणित करने से स्पष्ट हो जाता है कि ज्येष्ठ पूर्णिमा संवत् 1456 को चन्द्रवार नहीं पड़ता, अत: कबीर की जन्म-तिथि के सम्बंध में संवत् 1455 की ज्येष्ठ पूर्णिमा ही अधिक जान पड़ती है। कबीर के जन्म के प्रति कथ्य है कि कबीर का जन्म काशी नगरी के बाहर स्थित 'लहरतारा' नामक सरोवर के तट पर हुआ। लेकिन उसको वहां छोड़ दिया गया था। नीरू और नीमा नामक जुलाह दम्पत्ति ने उनका पालन-पोषण किया।

• शिक्षा-दीक्षा

सन्त कबीर अनपढ़ (निरक्षर) थे, अशिक्षित यद्यपि नहीं थे किसी भी प्रकार की नियमित शिक्षा उन्हें प्राप्त नहीं हुई थी। उन्होंने जो और जैसा भी ज्ञान प्राप्त किया, वह अपने अध्यवसाय, सतसंगति, जीवन के जीवन्त अनुभवों के आधर पर ही प्राप्त किया। शैशव के सुकुमार क्षणों से ही इन्हें हर जाति, धर्म और सम्प्रदाय के साधु-सन्तों, पीरों-फकीरों की संगति में बैठने, उनकी बातें ध्यान से सुनने, जिज्ञासाएं प्रकट कर समाधान पाने का शौक था। इस प्रकार सत्संगति से अर्जित ज्ञान को ही इनकी शिक्षा कहा जा सकता है। उस शिक्षा ने इन्हें 'बहुश्रुत' और ज्ञान का पिटारा बना दिया। कोरी शिक्षा के बारे में इन्होंने स्वयं कहा :

''मसि-कागद छुय नहीं, कलम नहिं धरि हाथ''

जीवन की सुविस्तृत और खुली पाठशाला से प्राप्त प्रत्यक्ष ज्ञान और अनुभव ने ही वास्तव में सन्त कबीर बनाया। शैशवी सुकुमार क्षणों से ही इन्होंने धर्म के नाम पर होने वाले अनाचारों को बड़े मनोयोग से देखा-सुना और बड़े होकर भोगा भी। जाति-पांति के नाम पर होने वाले अन्याय और उत्पीड़न को भी जन्मजात रूप से अति निकट से देखा। इसी शैशव के सुकुमार क्षणों से ही कबीर को परम्पराओं और रूढ़ियों का विद्रोह बना दिया। एक नवीन दृष्टि, निष्ठा एवं आस्था प्रदान की। समन्वित मानवीयता एवं धर्मिकता की भावना शैशव के सुकुमार क्षणों से ही इसके चरित्र एवं व्यवहार में विकसित हाने लगी थी, उसके कई उदाहरण इनके बाल्यकाल से जुड़ी कथाओं से मिलते हैं। कबीर बचपन से ही राम-नाम की रट लगाने लगे थे। इससे पिता प्रसन्न और माता नीमा प्राय: रूष्ट रहती और पति से शिकायत भी करती रहती पर वे ध्यान न देते और कबीर को राम-नाम रटते रहने के लिए प्रोत्साहित ही किया करते। कबीर के पिता नीरू 'दसनामी' सम्प्रदाय में दीक्षित थे और मुसलमान होने पर भी 'गोसाई' कह कर पुकारे जाते थे। जाति-पांति को बिल्कुल नहीं मानते थे। एक बार उनके कई गुरु भाई नीरू से मिलने आए। कट्टर स्वभाव वाली पत्नी से बहस छिड़ जाने के कारण नीरू को बाहर आने में देर हो गई पर बालक कबीर बाहर आकर उन दसनामी साधुओं से ज्ञानचर्चा करने लगे। इससे वे सभी बहस प्रभावित हुए। उन्होंने नीरू के आने पर कहा -''तुम्हारा यह बच्चा तो बड़ा ज्ञानी है, बड़ा होनहार है, गोसाईं। इतनी छोटी उम्र में ही हम बड़ों-बड़ों के कान काटने लगा है।'' सुनकर पिता नीरू प्रसन्न होते पर माँ नीमा चिढ़ जाती। वह बालक कबीर के मुंह से राम-नाम की रट सुन वंश मर्यादा भंग होती देखती और चिल्ला उठती -''यह तो होता नहीं कि तनने-बुनने का घर का धन्धा सीखे, कोई काम-धाम करे। घर में अब इसके और छोटे भाई-बहन हो गए हैं। बस, यह तो बैठा राम-राम करता

रहेगा या फिर मुशटण्डे साधु फकीरों के पीछे भागता फिरेगा। .... अरे निपूते! हमारे वंश में आगे भी कभी ऐसा कुछ हुआ है ....।''

जो हो, अपने पालक पिता और युग की परिस्थितियों के प्रभाव से ही कबीर के व्यक्तित्व का अनवरत निर्माण होता गया। माता के तानों-उलाहनों के प्रभाव से उन्होंने ताना-बाना तनने-बुनने का पुश्तैनी धंधा सीख लिया। तनने-बुनते समय भी उनकी जीभ राम का नाम ही रटती और उनका गुणानुवाद करती रहती। वही कविता का रूप धारण करता गया और इस प्रकार एक अनपढ़ कवि का व्यक्तित्व की भक्ति भाव भी परम्परा में क्रमशः स्वरूपाकार ग्रहण करता गया।

सन्त कबीर के गुरु कौन थे और उन्हें गुरु-दीक्षा कैसे प्राप्त हुई थी, इस सम्बन्ध में भी एक कथा प्रचलित है, कबीर के घर एक बार साधुओं की ज्ञान चर्चा हुई, इसी बीच एक साधु ने कबीर को गुरु दीक्षा लेने के लिए रामानन्द का नाम सुझाया। कबीर ने रामानन्द के चरण पकड़े हुए ही नम्र भाव से कहा। सुनकर दो-चार क्षणों तक असमंजस में पड़े रहने के बाद स्वामी जी ने झुककर कबीर जी के मस्तक का स्पर्श किया और बोले- ''तुम में राम, मुझी में राम, सब में राम समाया।'' और फिर बड़े स्नेह से कबीर को खड़े करते हुए स्वामी जी ने कहा -''उठो, कबीर? तुम से बढ़कर राम-नाम का अधिकारी भला और कौन हो सकता है? बिना किसी भेद-भाव के सारी दुनिया में राम का नाम बांटना। वही सारा दुनिया में समा रहा है। उस एक तत्व का प्रकाश ही चारों ओर फैल रहा है। भेद-भाव स्थूल जगत के देन और मायाजन्य है। मायाजन्य भेदभाव में पड़कर सभी कष्ट भोग रहे हैं। विश्व को उस एक परम तत्व सत्-चित्-आनन्द स्वरूप का मार्ग-दर्शन कराना। तुम समर्थ हो, कबीर! तुम पर राम की विशेष कृपा है। राम! राम! राम!'' और कहते हुए स्वामी रामानन्द गंगा-स्नान के लिए बढ़ गए। इसके बाद स्वामी रामानन्द जी के सत्संग में कबीर को उनका निकट सम्पर्क प्राप्त होने लगा। उनसे ग्रहीत सत्य और राम-नाम का समभाव से प्रचार-प्रसार ही कबीर का लक्ष्य बन गया।

''सति गुरु मिलिआ मारगु दिखाइया,
जगत पिता मेरे मन भाइया।''

स्वामी रामानन्द के अतिरिक्त कबीर के गुरु के रूप में कड़ा मानिकपुर के निवासी सूफी सन्त शेख़ तकी का नाम भी बड़े आदर से लिया जाता है। कहते हैं कि एक बार कुछ बन्दों या सूफी सन्तों की मस्ती में झूमकर अल्ला को पुकारते हुए कहीं जाते हुए कबीर ने जिज्ञासावश उनका गन्तव्य पूछा। सूफी सन्त शेख़ तकी का नाम सुनकर कबीर भी उनके साथ हो लिए। कड़ा मानिकपुर पहुंचकर कबीर ने उनसे सत्संग और ज्ञान चर्चा की, जब शेख़ तकी ने कबीर जी से कहा कि वह भी परम तत्व के बारे में अपने कुछ विचार बताएं, तो अपने को अनपढ़ गंवार बताते हुए कबीर ने कहा :-

''नाना नाच नचाय के, नाचे नट के भेस।
घट-घट अविनासी अहै, सुनो तकी तुम सेख।।''

सुनकर शेख़ तकी बड़े प्रभावित हुए और कह उठे -''कबीर .... कबीर......... सचमुच तुम कबीर ही हो।'' कबीर उनके चरणों में नतमस्तक हो गए। उन्होंने कबीर से कहा -''याद रखो कबीर, ज्ञान से युक्त प्रेम के द्वारा ही उस ब्रह्म के स्वरूप को समझा और पाया जा सकता है। यह रहस्य समझ आ जाने पर शेष सभी भेद-भाव, जागतिक टण्टे स्वतः ही समाप्त हो जाते हैं। यही परम सत्य है। मनुष्य का धर्म, मज़हब और जाति आदि सब कुछ यही है - यही। बस तू-ही-तू ......'' और कहते हुए तल्कीन होकर शेख तकी मौन हो गए। उनकी बात को 'सत्य' कहकर कबीर ने उनके चरणों में नतमस्तक होते हुए कहा :-

''अगम अगोचर रहे निरन्तर गुरु किरपा ते लहिऐ।
कह कबीर बलि जाउफँ गुरु आपने सतसंगति मिलि रहिये।''

इसके बाद भी कबीर कड़ा मानिकपुर शेख तकी के दरबार में आकर सत्संग करते रहे। कहा जा सकता है कि गुरु के स्तर पर स्वामी रामानन्द और शेख तकी से कबीर जी को जो भाव-विचार प्राप्त हो सके, उन्हीं के समन्वय से वह मत प्रचारित हो सका, जिसे आज कबीर-मत या वाद कहा जाता है। ऐसे लोगों की कमी नहीं कि जो शेख तकी को ही कबीर जी का दीक्षा गुरु स्वीकार करते हैं परन्तु सत्य केवल इतना ही है कि अन्य अनेक सन्तों, पीरों-फकीरों के समान कबीर इनके सम्पर्क में भी विशेष रूप से आए? स्वामी रामानन्द के बाद इनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व वाणी पर सर्वाधिक प्रभाव भी इन्हीं का पड़ा। जैसा कि उस पर भी कहा जा चुका है, इन दोनों का समन्वित मत ही कबीर का मत है। अन्य कई प्रकार के प्रभावों के रहते हुए भी मुख्य प्रभाव इन्हीं दोनों का ही है।

● व्यवसाय एवं परिवार

धर्म और अध्यात्म-साधना के क्षेत्र में रहते हुए भी कबीर ने न तो स्वयं ही जगत् का त्याग किया था और न ऐसा करने के पक्षपाती ही थे। वे अन्य अनेक सम्प्रदायों के साधु-सन्तों, पीरों-फकीरों के समान भिक्षाटन करके पेट पालने के पक्ष में भी नहीं थे। वे कर्म पर विश्वास करते थे। अपना पारिवारिक धन्धा जुलाहा-कर्म यानि कपड़ा बुनकर अपना तथा परिवार का पेट पालते थे। वे ग्रहस्थ सन्त थे। उनका विश्वास था कि संसार के समस्त मानवोचित कर्म करते हुए भी मनुष्य को पानी में कमल की तरह दुनिया में रहना चाहिए। उनका ध्येय-था-''पानी में चलो, पर आंचल न भीगने दो।'' इसी प्रकार वे आजीवन रहे।

कबीर ने दो विवाह किए थे। उनका पहला विवाह काशी के एक वनखण्डी बाबा की पालित पुत्री लोई के साथ हुआ था। वनखण्डी बाबा को गंगा-स्नान करते समय गर्मशाल में लिपटी बहती आती एक नन्हीं बालिका मिली थी, जिसे उन्होंने अपने आश्रय में पाल-पोसकर बड़ा किया। कबीर के पिता नीरू वहां सत्संग के लिए आया-जाया करते थे। सो वनखण्डी बाबा का आग्रह मानकर नीरू ने कबीर का विवाह लोई से कर दिया। कहते हैं कि लोई सभी प्रकार से सामान्य और कबीर के विवाह के लिए अयोग्य नारी थी। रूप सौन्दर्य का अभाव तो उसके पास था ही, विद्या और भक्ति से भी वह सर्वथा अछूती नारी थी। राम-नाम का मर्म न तो वह समझती थी और न समझना ही चाहती थी। सो पिता की आज्ञा से उसके साथ कबीर जी ने विवाह तो कर दिया, पर निर्वाह न हो सका। दोनों एक दूसरे को अपना नहीं सके। उनका मन और भी वैराग्य भाव से भर उठा। इस पत्नी के बारे में उन्होंने कहा था :-

''पहिली करूपि कुजाति कुलखनी''

वह क्योंकि कबीर के नित्य-नियम और सत्संग आदि में भी बाधा उपस्थित करने लगी थी, अत: एक प्रकार से उसका परित्याग करते हुए कबीर जी ने कहा :-

''हरि जसु सुनहिं न हरि जसु गावहिं।
बातन ही असमानु गिरावहिं।
ऐसे लोक न सिद किआ कहिऐ।
जो प्रभु कीए भगति ते बाहज,
तिन से सदा दुराने रहिऐ।।''

लोई का परित्याग करने के कारण कबीर की माता नीमा ज्ञान चिंता से हमेशा परेशान रहा करती कि उनके वंश की बेल आगे कैसे बढ़ेगी? वह पति नीरू को वंश डूबने का भय दिखाकर दबाव डालती रहती कि कबीर का एक और विवाह कर दिया जाए। कबीर जैसा बेटा पाकर भी वंश डूबने की बात पत्नी के मुख से सुनकर गोसाईं नीरू परेशान हो उठते। पर अन्त में विवश होकर उन्होंने कबीर का एक और विवाह कर ही दिया। नई पत्नी का वास्तविक नाम 'धनिया' था, पर माता नीमा उसे रमजनिया नाम से पुकारती।

रमजनिया हर प्रकार से सुघड़ और समझदार थी। उसने जल्दी ही पति कबीर का ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर लिया। अगले तीन-चार वर्षों में कबीर 'कमाल' और 'कमाली' नामक एक बेटे और बेटी के बाप भी बन गए। इस प्रकार घर-गृहस्थी के समस्त नियमों और कार्यों का उचित निर्वाह करते हुए भी कबीर ने न तो इसी को सब कुछ माना और न अपने-आपको दुनियादारी में डुबोया ही। घर-गृहस्थी को जंजाल कहकर मज़ाक उड़ाने वालों का कबीर जी यह कह कर मुंह बन्द कर देते -''संसार में रहकर उस परम पिता परमात्मा की इच्छा मान, उसी के लिए सारे कर्म करना जंजाल नहीं, भक्ति का ही एक सम्पूर्ण अंग हुआ करता है।''

ऐसा माना जाता है कि कबीर की सन्त परंपरा उनके वंश में नहीं थी। बेटी कमाली तो सगुणोपासिका बनकर कृष्ण की उपासना करने लगी थी, जबकि बेटा 'कमाल' ईश्वर और भक्ति के नाम से बिदकता था। उसने और भी कई तरह की बुराइयाँ पाल रखी थीं, जिनके कारण बात-बात में उनका सिर दूसरों के सामने नीचा होने लगा था। इसी कारण विवश होकर कबीर जी को एक बार कहना पड़ गया :-

''बूढ़ा बंश कबीर का उपजे पूत कमाल''

सन्तान के इस प्रकार के विचित्र व्यवहार ने कबीर की संसार से विरक्ति बढ़ा दी थी। वे कुछ दिन घर से गायब भी रहे और एक दिन कपड़ा बुनते-बुनते उन्होंने करघा तक उखाड़ फैंक दिया। उस समय वे गुनगुना रहे थे :-

''देखो भाई, आई ज्ञान की आंधी।
सभै उड़ानी भ्रम की टाटी, रहै न माहया बांधी।''

और उस दिन कबीर सचमुच के सन्त कबीर बन गए। अब वे केवल सत्संग करते। घर पर साधु-सन्तों की भीड़ लगी रहती। रात-दिन भजन-कीर्तन होता रहता। सत्संग में आने वाले लोग उनके शिष्य बनने लगे। उन में हिन्दू-मुसलमान दोनों प्रकार के लोग थे। उनकी संख्या निरन्तर बढ़ती गई। कबीर के मुख से जो वाणी भी निकलती, शिष्य गण उसे 'मंत्रा' या 'गुरुवाणी' मानकर नोट करते जाते। उनके यश से आकर्षित होकर सभी जातियों-धर्मों के लोग, साधु सन्त उनके पास आते और सत्संग करते। पंजाब के सन्त गुरु नानक देव जी आए और कई दिनों तक सत्संग करते रहे। उनकी वाणी का संकलन भी अपने साथ ले गए।

• मृत्यु

लोगों की इस भ्रान्त धारणा को दूर करने के लिए कि 'काशी' में मरने पर मुक्ति मिलती है, जबकि 'मगहर' नामक स्थान पर मरने वाला नरक का भागी बनता है, कबीर मगहर में ही आकर रहने लगे। एक दिन 'अब राम का बुलावा आ गया है।' यह कह ज्यों समाधि लगाई फिर कभी नहीं उठें, संवत् 1575 सन् 1518 ई. वि. के दिन उनके प्राण पखेरू उड़ गए। उनके अन्तिम संस्कार के प्रश्न को लेकर हिन्दू-मुस्लिम शिष्यों का विवाद चादर हटाने पर मिलने वाले फूलों के अवशेष पाकर ही हल हो सका। उनकी समाधि आज भी सभी जातियों, धर्मों के लोगों के लिए आदरणीय बनी हुई है।

1.3.1 कबीरदास की रचनाएं

कोई साधक कलाकार जिस प्रकार की परिस्थितियों और वातावरण में पाल-पुस कर परवान पाता है। वे अपने अन्तः बाह्य स्तर पर वह उनसे प्रभावित हुए बिना नहीं रह पाता। उसी के प्रभाव से उस सर्जक साधक या कलाकार की उन मूल प्रवृत्तियों का निर्माण हुआ करता है। जो उसके सृजन या साहित्य को सर्जक कलाकार के व्यक्तित्व का प्रतिफलन इसी प्रकार होता है। सन्त कबीर का उद्‌भव जिस युग और वातावरण में हुआ था। राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक आदि हर स्तर पर वह विघटनकारी परिस्थितियों और प्रवृत्तियों वाला युग था। राजनीति के स्तर पर चारों ओर उठा-पठक मच रही थी। अभी तक किसी केन्द्रीय राजनीतिक सत्ता की प्रतिष्ठापना नहीं हो गई थी कि जिस के प्रभाव से वातावरण सुस्थिर रह सकता। यहां

के राजनीति के मूल अधिष्ठाता भारतीय नरेश आपस में तो अपने ईर्ष्या-द्वेष का बदला चुकाने में मग्न रह कर दुर्बल एवं क्रमशः क्षीण हो रहे थे, उस पर बाह्य इस्लामी आक्रमणों का दबदबा और घात-प्रतिघात भी निरन्तर वृद्धि पा रहा था। उसके प्रभाव को रोकने वाला कोई न था। फलस्वरूप एक नई राजनीतिक संस्कृति और सत्ता का जन्म हो रहा था। व्यक्तित्व और कृतित्व के स्तर पर यद्यपि सन्त कबीर का उस सबसे कोई सीधा सम्बंध नहीं था। पर उसकी और बद्धमूल मानसिकता के कारण उन्हें अनेक प्रकार की प्रवंचनाओं, कष्टों और उत्पीड़नों से गुजरना अवश्य पड़ा था। ऐसी स्थिति में यह सम्भव नहीं कि ज्ञात-अज्ञात रूप से या जाने-अनजाने उनकी मानसिकता, प्रवृत्तियों आदि पर प्रभाव न पड़ा हो। फिर भी यह सत्य है कि सन्त कबीर के व्यक्तित्व में से इस प्रकार के प्रत्यक्ष प्रभाव को खोज पाना सहज नहीं है।

जहां तक सन्त कबीर की समकालीन धर्मिक परिस्थितियों और प्रवृत्तियों का प्रश्न है, कहा जा सकता है कि उनका कृतित्व इस सब से स्पष्ट प्रभावित है। उस समय बाह्याचारों और आडम्बर-पाखण्डों को ही धर्म माना जाने लगा था। भारत में मूल रूप से वैष्णव, शैव, शाक्त, श्रौत, स्मार्त आदि अनेक धार्मिक सम्प्रदाय, कई प्रकार से वाममार्गी और बाह्यचारों पर विश्वास करने वाले सम्प्रदाय तो सक्रिय होकर आपस में लड़-झगड़ एवं धर्म के सत्स्वरूप को अपने कार्यों से विकृत कर ही रहे थे। बाहर से इस्लाम धर्म का आक्रमण भी होने लगा था। उसका दबाव और प्रभाव भी निरन्तर बढ़ता जा रहा था। फलस्वरूप बलात् धर्म-परिवर्तन तो हो ही रहे थे, अपने-अपने धर्म, धार्मिक सम्प्रदाय, पन्थ, मान्यताओं, देवी-देवताओं और भगवानों-अल्लाओं को श्रेष्ठ सिद्ध करने की झोंक में धार्मिक उन्माद पारस्परिक साम्प्रदायिक दंगे-फिसादों का आयोजन भी करने लगा था। इस प्रकार आडम्बर, पाखण्ड और दिखावा ही धर्म की परिभाषा और स्वरूप बनकर रह गया था। सन्त कबीर ने धर्म के विकृत होते स्वरूप को निकट से देखा और अनुभव किया। उन्होंने ऐसे धर्म और ईश्वर की आवश्यकता अपनी समग्र आन्तरिकता से अनुभव की कि जो सभी धर्मों, सम्प्रदायों, जातियों और वर्गों के लिए समान रूप से स्वीकार्य हो सके। उनकी इस मान्यता ने ही उन्हें परम्परागत ब्राह्मणवाद और मुल्लावाद के प्रति असहिष्णु एवं एक सीमा तक उग्र भी बना दिया। उनके कृतित्व या रचना धर्मिता के स्तर पर इस सबको दर्शाने वाले कई उदाहरण प्रस्तुत किए जा सकते हैं।

क्योंकि उस काल का समाज एवं सामाजिक जीवन राजनीति या धर्म से ही अनुशासित हुआ करता था, राजनीति भी धर्म से अनुशासित हुआ करती थी। अतः राजनीति और धर्म का सीधा प्रभाव युगीन सामाजिक परिवेश एवं जीवन को प्रभावित कर रहा था। राजनीति और धार्मिक क्षेत्रों के समान सामाजिक वातावरण भी पथ भ्रष्ट एवं अराजकतापूर्ण हो रहा था। कट्टर वर्ण-व्यवस्था या जातिवाद ने तो समाज को विभाजित कर ही रखा था, तरह-तरह की कुरीतियां भी सामाजिक व्यवहारों में घर कर गई थीं। उँच-नीच छुआछूत और अपने-पराये का भेदभाव चरम विकास पर था। क्योंकि कबीर का लालन-पालन एक छोटी समझी जाने वाली जुग्गी जाति में हुआ था। इस प्रकार ज्ञानी, पहुंचे सन्त और उच्च श्रेणी के साधक होने पर भी उन्हें अनेकशः जातिवाद और धार्मिक विषमताओं का शिकार होना पड़ा था। इस सब ने उनके व्यक्तित्व और कृतित्व दोनों को निश्चय ही प्रभावित किया। यह कबीर की चारित्रिक दृढ़ता एवं सहनशीलता की अदम्य शक्ति ही थी कि वे किसी भी प्रकार की अवमानना से घबराए या निराश नहीं हुए। बल्कि हर बार वे और भी सुदृढ़ एवं प्रखर होकर सामने आए। यह कबीर के व्यक्तित्व का कमाल ही था कि इस ज्ञान के अनवरत बढ़ रहे प्रभाव के क्षेत्रों में भी वे इस्लामिक बाह्याचारों को इस ललकारते हुए, चौड़े चौराहे पर खड़े होकर कुछ कहे :-

''कांकर पाथर जोड़ि कै, मसजिद लई चिनाय।
ता चढ़ मुल्ला बांग दे, बहरा हुआ खुदाय।।''

इसी प्रकार कृतित्व के स्तर पर इस यथार्थवादी अध्यात्मिक-साधक ने हिन्दुओं की कट्टरता और बाह्याचारता को भी नहीं बख्शा। मुसलमानों के प्रति उपर्युक्त बात जिस साहस, सच्चाई और सादगी से कही, उसी से हिन्दुओं को भी लताड़ते हुए कहा :-

''पाहन केरा पूतरा करि पूजे संसार।
इहि भरोसे जो रहे, बूड़ें कालीधर।''

इतना ही नहीं, अपने कृतित्व में सन्त कबीर ने उपयोगितावादी या व्यवहार चारी होने का भी पूर्ण परिचय दिया है। मूर्ति-पूजा को बेकार बताते हुए उन्होंने कहा :-

''पाथर पूजै हरि मिलै, तौ मैं पूजूं पहार।
ताते यह चाकी भली, पीसि खाय संसार।।''

कबीर के कृतित्व के मूल में एक ऐसे सर्व स्वीकृत धर्म, जीवन और समाज की सुखद परिकल्पना थी। जिसमें केवल उदात्त-उदार भावनाओं से परिचालित मानव रहते हों। उस जीवन-समाज में उन्होंने सभी प्रकार के द्रोहात्मक एवं जड़ मूल झगड़ों के कारण बाह्याचारों को त्याज्य बताया। इसी दृष्टि से व्रतोपवास, रोजा-नमाज, नदी-तीर्थ, समाधि-मजर आदि की पूजा-उपासना को व्यर्थ बताया। इस दृष्टि से कृतिकार कबीर की निम्नलिखित पदावली पंक्तियां विशेष द्रष्टव्य हैं :-

''हिन्दू बरत एकादसी साधैं दूध -सिंघाड़ा सेती।
अन्न को त्यागैं मन नहीं हटकै पारन करैं सगोती।।
मुल्ला बिस्मिल बांग उजारें रोजा-नमाज गुजारें।
तिनकौ भिस्त कहां ते होई, सांझे मुरगी मारैं।।

इस प्रकार स्पष्ट है कि सन्त कबीर का कृतित्व अपनी अन्तः प्रेरणा एवं समूची अन्तः योजना में अध्यात्मवाद के तट-बन्धें से वेष्टित होते हुए भी जीवन के समग्र यथार्थ का उद्भावक है। सम्वेदना के तट-बन्धें से वेष्टित होते हुए भी जीवन पर वह दुःखी एवं पीड़ित मानवता की अन्त वेदना को स्वर, स्वरूप एवं आकार देने वाला है - फिर चाहे वह पीड़ा राजनीति जन्य हो, धार्मिक उन्मादों का परिणाम देने वाला हो या फिर सामाजिक रूढ़ियों की उपज हो। इस दृष्टि से सन्त और साधक कबीर के कृतित्व को मात्रा पर अशेष धार्मिक-आध्यात्मिक ही नहीं कहा जा सकता, बल्कि इस सब से कहीं आगे बढ़कर उसे उदात्त मानवीय भावनाओं, व्यथाओं और व्यवस्थाओं का चित्रण कहना अधिक युक्ति संगत प्रतीत होता है। हमारे विचार में धार्मिक आध्यात्मिक पर्यावरण में सन्त कबीर जैसा यथार्थवादी आज तक न तो कोई अन्य साध ाक हुआ है और न ही होगा जैसे कि छायावादी पर्यावरण में पं. सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' जैसा कवि कोई अन्य नहीं हुआ। प्रेम का इतना सुघड़ सपाट सन्देश अन्य कौन-सा साधक सर्जक दे सका है :-

''पोथी पढ़ि जग मुआ, पंडित भया न कोय।।
ढाई आखर प्रेम कि पढ़े, सो पंडित होय।।''

एक साधक-सर्जक कवि के रूप में सन्त कबीर के कृतित्व पर विचार करने से पहले इस बात का ध्यान रखना बहुत आवश्यक है कि वे मूलतः सन्त और सुधारक थे, कवि नहीं थे। दूसरे उन्होंने छन्द शास्त्र या काव्य शास्त्र के नियमों को ध्यान में रखते हुए युग के अन्य कवियों के समान पाण्डित्य प्रदर्शन करने या कविता करने के लिए कविता की थी। बल्कि सहज अपनी बात दूसरों तक पहुंचाने के लिए माध्यम के रूप में कविता या काव्यमय सहज सरल भाषा को अपनाया था। भावावेश के क्षणों में उनके मुख से जो वाणी प्रस्पुफटित हुई, वह काव्य शास्त्र की कसौटी पर चाहे खरी न भी उतरती हो, पर वही उनकी कविता एवं कृतित्व है। साक्षर न होने के कारण कबीर ने स्वयं अपनी वाणी को लिपिबद्ध नहीं किया, बल्कि जब वे

बोल रहे होते, जब उनके सत्संग में उपस्थित पढ़े-लिखे श्रोता शिष्य उसे लिपिबद्ध करते जाते। शिष्यों ने ही उनकी जन-जन में प्रचलित पूर्व वाणी का भी लेखन एवं संकलन किया। कहा जाता है कि अपनी यात्राओं के क्रम में जब सिक्ख पन्थ या सम्प्रदाय के आदि संस्थापक गुरु नानक देव काशी पहुंचे तो कई दिनों तक सन्त कबीर से सत्संग करते रहे। उन्होंने अपनी यात्रा-डॉयरी में अपनी बाला-मरदाना नामक परम शिष्यों से कबीर वाणी का संकलन भी किया। वह संकलन 'आदि ग्रन्थ' में आज भी संकलित है और सर्वाधिक प्रामाणिक स्वीकारा जाता है।

डॉ. श्यामसुन्दर दास प्रभृति विद्वानों के अनुसार, कृतित्व के स्तर पर सन्त कबीर की वाणी का संकलन 'बीजक' कहलाता है। इस 'बीजक' में संकलित कबीर वाणी को ही हिन्दी भाषा के विद्वान् आलोचक एवं इतिहासकार प्रामाणिक स्वीकार करते हैं। सन् 1928 ई. में डॉ. श्यामसुन्दर दास ने काशी नागरी प्रचारिणी सभा के तत्वावधान में कबीर जी की प्रामाणिक वाणी का संकलन-सम्पदान किया था। उस संकलन में संकलित एवं 'बीजक' नामक संकलन के अनुसार सन्त कबीर की समूची वाणी के निम्नलिखित तीन भाग कर दिए गए, या स्वीकारे जाते हैं :-

1. साखी

साखी, अर्थात् साक्षात अनुभव। कबीर के दोहे 'साखी' के अन्तर्गत ही आते हैं। इनमें उन्होंने व्यवहारिक जीवन, प्रेम तत्व आदि के सम्बन्ध में समय-समय पर जो कुछ भी प्रत्यक्ष अनुभव किया और कहा, उनका संकलन है।

2. सबद

सबद या शब्द, अर्थात् शास्त्रीय राग-रागनियों पर आधरित गेय पद। इन्हें केवल 'पद' भी कहा जाता है। गेयता इनकी प्रमुख विशेषता है। हिन्दी के गीति काव्य के विकास में कबीर रचित इन गेय पदों शब्दों का विशेष महत्व स्वीकारा जाता है। इनकी सार्थक संगीतात्मकता और लोकप्रियता का अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि आज भी शास्त्रीय संगीत में बड़े-बड़े और प्रख्यात गायक इन पदों को बड़े चाव से एवं मस्त होकर गाया करते हैं। इन पदों में ब्रह्म, जीव, जगत्, माया आदि के बारे में कबीर जी ने अपनी तात्विक एवं व्यवहारिक अभिव्यक्ति प्रदान की है। कबीर के सबद या गेय पद का एक उदाहरण देखें -

''सन्तों भाई ज्ञान की आई आन्धी।
सभै उड़ानी भ्रम की टाटी, रहै न माइया बांधी।।
दुचिते की दुई थूनि गिरानी, मोह बलेड़ा टूटा।
तिसना छानी परी हार उपरि, दुरमति भांडा फूटा।।
आंधी पाछै जो जनु बरखै, तिहिं तेरा जनु भीना।
कहि कबीर मनु भया परगासा, उडै भानु जब चीन्हा।।''

कबीर जी क्योंकि निर्गुणवादी, ज्ञानमार्गी साधक और सर्जक थे। इस प्रकार उनके इन शब्दों में ज्ञान-चिन्तन की प्रचुरता है। ज्ञान तत्व के चिंतन और भजन का प्रभाव इस प्रकार के प्रत्येक पद में स्पष्ट देखा-परखा जा सकता है।

3. रमैनी :

कबीर वाणी में जो विशिष्ट प्रकार का गहन-गूढ़ चिंतन है। उसका संकलन रमैनी की रचनाओं में मिलता है। कबीर ने वाम मार्गियों, बाह्याचारों को प्रधनता देने वालों को फटकारने के लिए कई प्रकार की गूढ़-गम्भीर उक्तियां कही हैं, जो 'उलटबासियां' कहलाती हैं। जिनका वास्तविक एवं तात्विक विवेचन करते समय बड़े-बड़े विद्वानों के छक्के छूट जाते हैं, वे सब इसी के अन्तर्गत आती हैं और बीजक के उसी भाग में संकलित हैं। एक 'उलटबासी' की एक पंक्ति देखें :-

''नाव मैं नदिया डूबी नदिया डूबी जाए''

नदिया में नाव को डूबाते हुए तो सभी ने देखा-सुना है। पर जब नाव में नदिया डूबने लगे, तब अचरज होना आवश्यक है। अब बैठ कर करते रहिए अपने आचरण का निराकरण, पर हो कहां पाता है बड़े-बड़े कबीर के मर्मज्ञों द्वारा भी। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि इस प्रकार की तात्विक गूढ़ उक्तियों का संकलन 'रमैनी' है।

वास्तव में कबीर के कृतित्व की परख उसकी संख्या नहीं बल्कि गुणवता और प्रभाव द्वारा ही सम्भव हो सकती है। अपनी कृतियों में एक ओर तो सन्त कबीर उन सब बातों, परम्पराओं, रूढ़ियों, अन्धविश्वासों का खण्डन करते हुए दिखाई देते हैं कि जिन्हें वे आम जीवन और समाज के लिए नितांत अनुपयोगी, मानवीय रिश्तों-नातों में दरार लाने वाला और विभाजक स्वीकार करते हैं। दूसरी ओर वे सच्चारित्रता, प्रेम, भाईचारा, सत्य, अहिंसा, इन्द्रिय-निग्रह आदि उदात्त मानवीय तत्वों का मण्डन या प्रतिष्ठापन करते हुए दिखाई देते हैं। इस प्रकार की खण्डन -मण्डनात्मक प्रवृत्ति के द्योतक कुछ उदाहरण हम उफपर दे आए हैं। व्रत-उपवास, रोजा-नमाज़, अगम, तीर्थयात्राा, हज, नदी स्नान आदि का तथा मन्दिर-मस्जिद में होने वाले बाह्यचारों का खण्डन करना सन्त कबीर के कृतित्व की व्यापकता का एक सर्वाधिक उज्ज्वल पक्ष है। इसी के द्वारा उन्होंने सर्व-धर्म-समन्वय एवं भावात्मक एकता का प्रयत्न किया है। उनकी रचनाओं में जो ज्ञान मार्ग और निर्गुणवाद का महत्व विशेष रूप से प्रतिपादित किया गया है, उसके मूल में भी समन्वय और भावात्मक एकता की भावना ही प्रमुख रूप से अन्तः निहित दीख पड़ती है। निर्गुण-निराकार ब्रह्म की व्यापकता का मण्डन करके ही वे मन्दिर-मस्जिद से जुड़ी सगुणात्मक बाह्यचारी भावनाओं का खण्डन कर सके। सन्त कबीर की रचनाओं में आई ज्ञान खण्डन-मण्डन की प्रवृत्ति का माहात्म्य प्रतिपादित करते हुए 'हिन्दी साहित्य का विवेचनात्मक इतिहास' में लेखक ने ठीक ही लिखा है कि - ''तथा यह है कि इनकी इस खण्डन-मण्डन की प्रवृत्ति में द्वेष या पक्षपात का भाव कहीं भी दृष्टिगत नहीं होता। इन्होंने जो कुछ भी कहा, निर्लिप्त भाव और सत्य हृदय से कहा, ताकि जीवन में सत्य के सहज मानवीय भाव की प्रतिष्ठिा हो सके।''

सन्त कबीर की रचनाओं में वर्ण्य विषयों की दृष्टि से जिस दूसरी प्रमुख और उच्च मानवीय भावनाओं के दर्शन होते हैं, वह है धर्म एवं समाज-सुधार की भावना। इस प्रकार की उक्तियों में उपर कथित खण्डन-मण्डनात्मक उक्तियां भी इस दृष्टि से रखी जा सकती हैं कि उनका उद्देश्य धर्म में आ गई बाह्यचारता, आडम्बरप्रियता और समाज में विद्यमान कुरीतियों का सुधार करना ही था। वास्तव में कबीर हास्यास्पद स्थितियों से धर्म और समाज का पुनरूद्धार करना चाहते थे। इसी कारण भाग्यवाद आदि एवं धर्माश्रिता (रोटी-रोज़गार की दृष्टि) से आदि का विरोध या खण्डन करते हुए सन्त कबीर ने चुनौती भरे स्वरों में जीवन और समाज से कहा था:-

''करू बहियां बल आपनी, छांड़ पराई आस।
जिनके आंगन है नदी, वह कत मरत पियास।।''

कबीर ने अन्धानुकरण कर रहे जगत का दु:खी होकर विरोध किया। अन्धानुकरण को भेड़चाल बताकर इस प्रकार की प्रवृत्ति को जीवन और समाज के लिए अत्यंत घातक विचार उनका कहना था:-

''ऐसी गति संसार की ज्यों गाडर को ठाट।
एक गिरा जेहि खाड मैं, सबै जाहिं तेहि बाट।।''

कृतिकार या सर्जक कलाकार के रूप में इस प्रकार की उक्तियां सन्त कबीर को एक समर्थ अन्योक्तिकार और स्वाभाविक सूक्तिकार के रूप में हमारे सामने उभरकर उजागर कर देती हैं। तब उनके सर्जक का स्वरूप स्वतः ही उस पर उठने लगता है, अपने युग से लेकर आज तक के पर्यावरण पर घन-घटाओं के साथ, उच्चाकाशवत् छाता हुआ सा आभासित होने लगता है। उनकी आर्धुनिकता, सार्वकालिकता, समसामयिकता भी उजागर होने लगती है।

कृतित्व के स्तर पर सन्त कबीर की वाणी में जो तीसरा प्रबल स्वर स्वतः स्फूर्त रूप में मुखरित सुन पड़ता है, वह है आत्मानुभूतियों के प्रबल एवं सबल चित्रण का। कबीर के इस पक्ष के सम्बंध में इतिहासकार डॉ. तिलकराज शर्मा ने उचित ही कहा है –''यह पक्ष प्रेम एवं रहस्य का उद्‌भूत समन्वय प्रस्तुत करता है। कवि की भी गरिमा तल्लीनता भी यहीं दिखाई देती है। हमारे विचार में उनकी कवित्व प्रतिभा और अनुभूति को तरल गहनता भी इसी प्रकार की उक्तियों में प्रस्पुफटित हुई है। इन उक्तियों को पढ़कर कोई नहीं कह सकता है कि कबीर जी कवि नहीं, बल्कि कोरे उपदेशक ही थे।'' वास्तव में कबीर जी की वाणी में जो रहस्यवादिता पाई जाती है, उसके साधनात्मक और भावनात्मक दोनों रूपों के दर्शन कबीर की इन आत्मानुभूतियों की तरलता में ही हो पाते हैं। इस प्रकार की उक्तियों में बड़ी–बड़ी पोथियों पर प्रेम के ढाई अक्षरों का महत्व प्रतिपादित एवं निनादित हो पाता है और स्वयं रामदेव पाहुन बनकर आते हुए प्रतीत होने लगते है।

''दुलहिन गावहु मंचलाचार।
रामदेव मोरे पाहुन आए, हौं जीव्य मदमाती।।''

और फिर रामदेव के स्वागत में तल्लीन आत्मा अपने चारों ओर मात्रा उसी की अनुभूति पाने लगती है। उसी में तल्लीन होकर गा उठती है।

''लाली मेरे लाल की जित देखूं तित लाल।
लाली देखन मैं गई, मैं भी हो गई लाल।।''

1.3.2 कबीरदास की काव्यगत विशेषताएं

• ब्राह्मणों के पाखण्डों का विरोध

तत्कालीन ब्राह्मण वर्ग स्वयं को श्रेष्ठ मानता था। चाहे उनके आचरण निम्न स्तर के ही क्यों न हो, वे समाज के अन्य जातियों पर अपने ब्राह्मणत्मक का रौव डालते रहते थे। परन्तु कबीरदास ने यह स्वीकार किया है कि एक बिन्दु से निर्मित पंचतत्व युक्त मानव शरीर का निर्माण करने वाला ब्रह्म एक कुंभकार है। इसलिए जन्म आधर पर किसी प्रकार का भेदभाव नहीं होना चाहिए। उन्होंने ब्राह्मणों को फटकारते हुए कहा –

''जो तू बाम्हन बाम्हन जाया।
आन बाट है क्यों नहीं आया।।''

कबीरदास ने अपने क्रान्तिकारी चिंतन द्वारा समाज के उस वर्ग को ब्राह्मणों के प्रपंच से युक्त किया जो लम्बे काल से पीस रहे थे। शूद्र कह जाने वाले लोगों से ब्राह्मण लोग प्रायः घृणा करते थे और उनका स्पर्श करना भी पाप समझते थे। क्रांतिकारी कबीर ने अपने आक्रामण स्वर में ब्राह्मणों को ललकारते हुए कहा –

''कहि को कीजै पांडे छोति विचारा।
छोतिहि ते उपजा संसारा।
हमारे कैसे लोहू तुम्हारे कैसे दूध।
तुम कैसे ब्राह्मण पांडे हम कैसे सूद।
छोति छोति करत तुम्हरी जाए।
तौ ग्रभवास काहे को आए।।''

इधर मुसलमानों और हिन्दुओं में भी वैमनस्य की खाई बन गई थी। दोनों धर्मावलम्बी एक–दूसरे पर कीचड़ उछाल रहे थे। इब्राहिम लोदी के अत्याचारों के बावजूद मुसलमानों की कुछ प्रवृत्तियों पर आक्रमण किया। उन्होंने मुसलमानों के साथ–साथ ब्राह्मणों को भी फटकार लगाई है वे कहते हैं –

''ना जाने तेरा साहिब कैसा है।
मसजिद भीतर मुल्ला पुकारै, क्या साहिब तेरा बेहरा है?
चिउँटी के पग ने वर बाजे, सो भी साहब सुनता है।
पंडित होय के आसन मारे, लम्बी माला जपता हैं।
अंदर तेरे कपट कतरनी, सो भी साहब लखता है।''

कबीर दास का क्रान्तिकारी स्वर हिन्दुओं तथा मुसलमानों दोनों पर पत्थर की वर्षा करता हुआ दिखाई देता है। उन्होंने निष्पक्ष होकर हिन्दुओं की मूर्ति पूजा पर मजाक उड़ाया और कहा –

''हम भी पाहन पूजते, होते वन के रोज।
सतगुरु की किरपा मयी, डारया सिर थै बोझ।।
पत्थर पूजे हरि मिलै, तो मैं पूंजू पहाड़।
ताते यह चक्की भली पीस खाय संसार।।''

इसी प्रकार मुसलमानों की अजान आदि पर भी करारा व्यंग्य करते हुए कहा –

''कंकड़ पत्थर जोड़ के मसजिद लई बनाय।
तापचढ़ मुल्ला बांग दे, क्या बहिरा हुआ खुदाय।।''

• मुस्लिम धर्म के पाखण्डों और आडम्बरों का विरोध

सत्ता प्राप्त वर्ग की आलोचना करना तथा धार्मिक पाखंडों पर प्रहार करना कोई सहज कार्य नहीं है यह काम कोई आक्रमक क्रांतिकारी व्यक्ति ही कर सकता है और कबीर ने तत्कालीन शासकों की परवाह न करते हुए मिथ्या आचार व्यवहार और बाह्य आडम्बरों का पर्दाफाश किया। कबीर ने अपनी वाणी में इस्लाम धर्म के अनुयायियों को तुर्क नाम से अभिहित किया है। वे इस मत के ठेकेदारों को काजी, मुल्ल, शेख, दरवेश आदि नामों से पुकारते हैं। इन्होंने ऐसे लोगों को शेख कहा है जो दिखावे के लिए हज के लिए जाते थे, परन्तु जो नमाज़ पढ़कर झूठी बंदगी करते हैं और खुदा की इबादत करते हुए अपने जिह्वा के स्वाद के लिए गौ हत्या करते हैं, उसे काजी कहा जाता है। इसी प्रकार मस्जिद पर अजां देने वाले तथा रोजा रखने वाले को मुल्ला कहा है और कुरान पढ़कर जनता को बहकाने वालों को मौलवी कहा है। कबीर के अनुसार इनको धर्म का ज्ञान नहीं है, बल्कि ये लोग मिथ्याचारी, मांसाहारी तथा व्याभिचारी है और भोली–भाली जनता को धोखा देते है। एक स्थल पर वे कहते भी हैं –

''पीरां मुरीदा काजियां मुलां अरू दरवेस।
कहा थे तुम्ह किनि कीपे अकलि है सब नेस।।
कुराना कतेबा अस पढ़ि–पढ़ि ककिरिपा नहीं जाई।
दुक दम करारी जै करै हाजिरां सूर खुदाई।''

सच्चा मुसलमान किसी पर अत्याचार नहीं करता न ही किसी हिंसा में विश्वास रखता है। कबीर युग में इस्लाम के नाम पर गैर–मुस्लिम पर तरह–तरह के अत्याचार किए जाते थे। कबीरदास को इतना दृढ़–विश्वास था कि उन्होंने तत्कालीन मुस्लिम शासकों को खरी–खोटी सुनाने का फैसला किया।

• धार्मिक विसंगतियों पर प्रहार

कबीर में आक्रमण क्रांतिकारी बनने का प्रमुख कारण यह था कि उस समय धर्म के नाम पर कर्मकाण्ड, पाखंड और अंधविश्वास बढ़ता जा रहा था। मुट्ठीभर धर्म के ठेकेदार करोड़ों लोगों का शोषण कर रहे थे और धर्म रक्षक बनकर स्वार्थी की पूर्ति कर रहे थे। कबीर ने अपनी कठोर वाणी द्वारा इन पाखण्डियों और ढोंगियों का पर्दाफाश किया। उन्होंने तीर्थ स्थलों पर बैठे हुए पाण्डे और पुरोहितों पर कठोर व्यंग्य किए।

इस संदर्भ में कबीरदास ने मुसलमानों को भी क्षमा नहीं किया और उनके पाखण्डों तथा आडम्बरों का डटकर विरोध किया। एक स्थल पर वे हिन्दुओं तथा मुसलमानों दोनों की आलोचना करते हुए कहते भी हैं–

अरे इन दोउन राह न पाई।
हिन्दू अपनी करे बड़ाई गागर हवन न होई।
वैस्या के पाइनन्तर सॉवे यह देखों हिन्दुभाई।
मुसलमान के पीर औलिया मुर्गी, मुर्गा खाई।
खाला केरी बेटी ब्याहें घरहि में करैं सगाईं ।
हिन्दुन की हिन्दुयाई देखी तुरकन की तुरकाई।
कहे कबीर सुनों भाई साधो कौन राह है जाई।''

• जातिगत भेदभाव का विरोध

कबीर कालीन समाज जातिगत भेदभाव का शिकार बना हुआ था । हिन्दू समाज अनेक जातियों में विभाजित था और इसी प्रकार मुसलमानों में भी जातिगत भेदभाव था। उच्च कहलाने वाले मुसलमान नीच मुसलमानों का शोषण करते रहते थे। कबीरदास ने सभी जातियों के लोगों को मानवीयता का पाठ पढ़ाया। यही नहीं उन्होंने जाति–पांति, उंच–नीच, छुआछूत के बारे में खुलकर अपने विचार व्यक्त किए। उन्होंने न हिन्दुओं को माफ किया, न मुसलमानों को माफ किया। उन्होंने दोनों पक्षों को खरी–खोटी सुनाई। वस्तुत: दोनों सामाजिक कुरीतियों, जातिवाद, छुआछूत, उंच–नीच आदि भावनाएं वर्णाश्रम धर्म की ही उपज हैं। कबीर ने युग में समाज का एक बहुत बड़ा वर्ग राजनैतिक, सामाजिक तथा आर्थिक दृष्टि से पिछड़ चुका था। निम्न वर्ग दो वक्त की रोटी जुटाने में स्वयं को असमर्थ मान रहा था। दूसरी और सत्ता वर्ग तथा पूंजीपति वर्ग जीवन की सभी सुख–सुविधाएं भोग रहे थे। कबीरदास ने इन सामाजिक विसंगतियों का उद्घाटन किया और समाज–सुधार पर बल दिया। इस संदर्भ में डॉ. कृष्ण देव शर्मा ने लिखा भी है ईश्वर ने जब मनुष्य को एक ही माना तो सभी की पीड़ा उनके लिए अपनी पीड़ा बन गई और वह उनका निदान करने में लग गए।''"कबीर समाज के बहिष्कृत व्यक्ति की पीड़ा को जानते थे। कितनी ही बार समाज के द्वारा ठुकराए जाने के कारण वह इस पीड़ा की गहराई स्वयं अनुभव कर चुके थे। अत: उन्होंने साफ कहा है कि मानव जाति ही संसार में मनुष्यों के लिए एक मात्रा जाति है। केवल ईश्वर ही हमें इस जाति से बहिष्कृत कर सकता है। वह मनुष्यों को मनुष्य ही मानते थे, इससे बढ़कर कुछ नहीं। यही कारण था कि उनका झुकाव द्वैत की ओर अधिक था। किन्तु क्या कबीर को केवल परिस्थितियां ही उनके क्रांतिकारी बनने के लिए उत्तरदायी हैं। वास्तव में बात ऐसी नहीं थी।

कबीर ने छुआछूत की प्रथा को अमानवीय घोषित किया और उसे उखाड़ फैंकने में कोई कसर नहीं छोड़ी। कबीरदास इस बात को लेकर बड़े उदास थे कि वर्णाश्रय धर्म के नाम पर हिन्दू समाज में अस्पृश्यता का प्रसार हो रहा है। कबीरदास इसे समाज के लिए अभिशाप मानते थे। इसलिए उन्होंने छुआछूत की प्रथा का खण्डन किया और धर्म के ठेकेदार पंडितों को ललकारते हुए कहा –

''काहे को कीजै पांडे छोति विचारा।
छोतिहि ते उपजा संसारा।।
हमारे कैसे लोहू, तुम्हारे कैसे दूध
तुम कैसे ब्राह्मण पांडे, हम कैसे सूद।
धेति छोति करत तुम्हारी जाए।
तो ग्रामवास काहै कौ आये।।''

• सांप्रदायिक एकता पर बल

भले ही कबीर को आक्रामक क्रान्तिकारी कहे, परन्तु अपने इस रूप के पीछे उनका उद्देश्य कुछ और था। वे अपनी तीखी वाणी द्वारा हिन्दुओं तथा मुसलमानों को उनकी त्रुटियों से अवगत कराना चाहते थें और दोनों सम्प्रदायों को एक-दूसरे के नजदीक लाना चाहते थे। उन्होंने वैज्ञानिक दृष्टिकोण को अपनाते हुए एकेश्वरवाद की स्थापना की और यही दोनों के लिए कल्याणकारी भी था। इस सन्दर्भ में डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी लिखते भी हैं -''जो लोग हिन्दु-मुस्लिम एकता के व्रत में दीक्षित है, वे भी कबीर दास को अपना मार्गदर्शन मानते हैं। यह उचित भी है। राम-रहीम और केशव-करीम की जो एकता स्वयं सिद्ध है उसे भी संप्रदाय बुद्धि से विकृत मस्तिष्क वाले लोग नहीं समझ पाते।'' इस कथन से यह स्पष्ट हो जाता है कि कबीर का अविर्भाव उस धर्म में हुआ जहां विभिन्न धर्मों एवं भाषाओं का बोल-बाला था । एक ओर हिन्दु अपने धर्म और संस्कृति को श्रेष्ठ करने में लगे थे तो दूसरी ओर मुसलमान अपने मजहब को सच्चा कहते थे। ऐसे विकट समय में कबीरदास ने एकता का पाठ पढ़ाया। कबीर ने जिस भक्ति-भावना का प्रचार-प्रसार किया, वह सबके लिए ग्राही थी। उन्होंने सभी धर्मों से अच्छी भावनाएं लेकर हिन्दुओं तथा मुसलमानों को जोड़ने का काम भी किया। इसलिए वे कहते भी है -''हरि जैसा है तैसा रहे, तू हरिषि हरिबिगुण गाए।'' इससे स्पष्ट होता है कि वे समन्वयवादी सन्त थे। इस संदर्भ में आचार्य परशुराम द्विवेदी भी लिखते हैं -''कबीर साहब के समन्वयवाद की आधरशिला परमतत्व के केवल नित्य तथा एक रस होने, उस पर आश्रित बहुरूपिणी सृष्टि के अस्थिर होने और उसके विविध अंगों के उनके मौलिक एकता के कारण के समान सिद्ध होकर स्थित है।''

कबीर के समन्वयवादी होने का सबसे ब्रह्म प्रमाण तो यह है कि वे राम-रहीम, अल्लाह, ईश्वर आदि में भेद न मानकर दोनों को एक मानते हैं। वे स्पष्ट कहते हैं कि हमें ईश्वर व अल्लाह के नामों में न उलझकर उस परमतत्व को स्वीकार करना चाहिए जो हर प्राणी व कण-कण में व्याप्त हैं। उस परमतत्व के अतिरिक्त कोई शक्ति नहीं हैं। कबीर का कथन है :-

''जोगी गोरख गोरख करै
हिन्दू राम राम उच्चरै
मुसलमान कहै एक खुदाई,
कबीर को स्वामी घटि-घटि रह्यौ समाई।''

कबीर की वाणी में अधिकांश तत्व धर्मनिरपेक्ष है, जिन्हें सभी धर्मों के लोग नि:संकोच होकर अपना सकते हैं। उनका परमतत्व किसी विशेष स्थल पर ही उपलब्ध नहीं, अपितु वह कण-कण में समाया हुआ है। इसलिए उसे कोई भी व्यक्ति चाहे वह किसी भी धर्म से संबंधित क्यों न हो, समान रूप से प्राप्त कर सकता हैं।

• आत्मविश्वास एवं स्भावलम्बी समाज की स्थापना

कबीर का लक्ष्य आत्मविश्वास से भरे समाज की स्थापना करना था। इसी से उन्होंने सन्त और भक्त होते हुए भी बड़े निर्भय भाव से आडम्बरों- कुरीतियों आदि पर कठोर प्रहार किए। इसी कारण मुक्त भाव से यह तथ्य स्वीकार किया जाता है कि कबीर का दर्शन वास्तव में अनेकत्व में एकत्व की स्थापना करने वाले अद्वैतवाद पर आधारित है। उनका समाज दर्शन भी वस्तुत: इसी प्रकार का है। इसके लिए कबीर व्यर्थ के शास्त्र जाल के आडम्बरों में नहीं पड़ते। वह अपनी सहज प्रतिभा के बल-कौशल से ही जीवन के सहज सत्य तक पहुंच पाने का प्रयास करते हुए दिखाई देते हैं। उनका समकालीन हिन्दू समाज बाह्माचार और वंश-अभियान के लिए प्राण दे रहा था। कबीर इन दोनों बातों को व्यर्थ बताते थे। इसी दृष्टि से उन्होंने इस आडम्बर लिप्त ब्राह्मणी दृष्टि पर सीधा आघात करते हुए कहा -

''पंडित भूले पढ़ि-मुनि वेदा, आयु अपनायो जान न भेदा।
अति गुन गरब करै अधिकाई अधिक गरबि न कोई भलाई।।''

स्वयं आकलन के लिए प्रश्न

1. कबीर का अर्थ क्या है?
2. कबीर का जन्म कब हुआ?
3. कबीर के गुरु का क्या नाम है?
4. कबीर का पालन पोषण किसने किया?

1.4 सारांश

इस प्रकार कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि कृतिकार के रूप में सन्त कबीर की जीवन यात्रा सब प्रकार के भेदभावों से उपर उठकर शुद्ध आत्मतत्व के रूप में दिखने और परम तत्व के समीप पहुंचाने वाली है। वह शासक के स्तर पर उन्नत न सही, पर भाव और प्रभाव के स्तर पर निश्चय ही उन्नत है, अद्‌भुत ओर अजेय है।

1.5 कठिन शब्दावली

कबीर-महान। **पाहन**-पत्थर। **मुल्ला**-मौलवी। **गावड़ू**-गाना। **जिन**-जितना। **पढि**-पढ़ना।

1.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

1. कबीर का अर्थ महान् है।
2. 1398 ई।
3. रामानन्द।

4 नीरु और नीमा।

1.7 सन्दर्भित पुस्तक

1. डॉ. श्याम सुन्दर दास कबीर ग्रन्थावली।

1.8 सात्रिक प्रश्न

1. कबीर का जीवन परिचय बताइए।
2. कबीरदास का साहित्यिक परिचय लिखिए।
3. कबीर की साहित्यिक विशेषताएं लिखें।

*****

इकाई–2
कबीरदास : व्याख्या भाग

संरचना

2.1 भूमिका

2.2 उद्देश्य

2.3 कबीरदास : व्याख्या भाग

स्वयं आकलन प्रश्न

2.4 सारांश

2.5 कठिन शब्दावली

2.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

2.7 संदर्भित पुस्तकें

2.8 सात्रिक प्रश्न

2.1 भूमिका

कबीरदास हिन्दी साहित्य के सर्वश्रेष्ठ कवियों में से एक थे। उन्होंने समकालीन समाज की समस्याओं का चित्रण किया है इसलिए उनको कवि से पहले समाज सुधारक की संज्ञा दी जाती है।

2.2 उद्देश्य

1. कबीर के विषय में जानकारी।
2. कबीर के साहित्य का बोध।
3. कबीर की रचनाओं का ज्ञान।

2.3 कबीरदासः व्याख्या भाग

सतगुरु की महिमा अनंत, अनंत किया. उपगार।
लोचन अनंत उघाड़िया, अनंत दिखावणहार ।।

शब्दार्थ : **अनंत** = अनन्त। **लोचन अनंत** = ज्ञान चक्षु । **अनंत** = ब्रह्म।

व्याख्या : कबीरदास जी कहते हैं कि सतगुरु, की महिमा अनिर्वचनीय है। उनका बखान कहां तक किया जाए? उन्होंने मुझे उपकृत करके मेरे ज्ञान चक्षु खोल दिए और दिव्य दृष्टि दी। उसी दिव्य दृष्टि के कारण मुझे पारब्रह्म परमेश्वर, के दर्शन हो, गए।

विशेष

1. गुरु की महिमा का गुणगान।
2. गुरु का स्थान ईश्वर से भी उच्चा बताया।

राम नाम लै पटंतरै, देवे को कुछ नाहिं।
क्या ले गुरु संतोषिए, हौंस रही मन मांहि।।

शब्दार्थ : **पटंतरै** = बदले में । **संतोषिए** = संतुप्ट करू। **हौंस** = प्रबल अभिलाषा।

व्याख्या : कबीरदास जी दैन्य महसूस करते हुए कहते हैं कि सतगुरु ने राम–नाम का जो महामंत्र मुझे दिया है, मैं उसके बदले में गुरु को क्या दूं? उस महामंत्र के समक्ष सांसारिक सभी वस्तुएं तो सार–हीन हैं। मेरे मन में गुरु को संतुष्ट करने की अभिलाषा भीतर ही भीतर उमग–उमग कर रह जाती है।

विशेष

1. भजन के महत्व का चित्रण।
2. गुरु की महिमा का चित्रण करना।
3. गुरु के द्वारा दिया गया ज्ञान संसार में श्रेष्ठ है।

माषी गुड़ मैं गड़ि रही, पंष रही लपटाइ।
ताली पीटै सिरी धुनैं, मीठै बोई माइ।।

शब्दार्थ : **माषी** = मक्खी। **पंप** = पख।

व्याख्या : कबीरदास जी कहते हैं कि जीव रूपी मक्खी विषयासक्त रूपी गुड़ में लिपट गई है, उसके सद्वृत्ति के पंख उसी में चिपक गये हैं। इसका परिणाम है कि वह हाथ पटक–पटक कर सिर धुन रही है, किन्तु उसी मीठे या उसकी गंध में ही वह समाती जा रही है।

विशेष–

1. 'बोई' या तो 'बो ई' है, जिसका तात्पर्य 'वही' है अथवा यह 'बोय' गंध (दुर्गन्ध) का पर्यायवाची है।
2. अन्योक्ति अलंकार है।

ऊंचे कुल क्या जनमियां, जे करणीं ऊंच न होइ।
सवन कलस सुरै भर्या, साधू निंद्या सोइ।।

शब्दार्थः जनमियां = जन्म लेने से। **जे करणीं** = तुम्हारा कर्म। **सवन कलस** = स्वर्ण।

व्याख्या : कबीरदास कहते हैं कि ऊंचे कुल में जन्म लेने से ही क्या लाभ यदि तुम्हारा कर्म उच्च कोटि का नहीं हआ; साधु व्यक्ति तो शराब से भरे स्वर्ण–कलश की भी निन्दा ही करते हैं–अतः दुर्गुण से युक्त तुम, उच्च कुल के होने पर भी, निन्द्य हो।

विशेष

1. दृष्टान्त और अर्थान्तरन्यास का संकर है ।

1. **कबीर खोज राम का, गया जु सिंघल दीप।**
   रांम तौ घट भीतर रंमि रहता, जौ आवै परतीत।।

2. **ज्यूं नैनूं मैं पूतली त्यूं खालिक घट मांहि।**
   भूरिख लोग न जांणहीं, बाहरि ढूंढन जांहि।।

प्रसंगः प्रस्तुत दोहा हमारी पाठ्य पुस्तक 'मध्यकालीन हिन्दी कविता' में संकलित कवि कबीरदास द्वारा रचित 'कस्तूरियां मृग कौ अंग' में से लिया गया है।

संदर्भः प्रस्तुत दोहे में कबीरदास ने मनुष्य को ईश्वर भक्ति का मार्ग सुझाया है। उनके द्वारा सुझाया गया मार्ग निर्गुण भक्ति मार्ग है।

व्याख्याः कबीरदास कहते है कि व्यक्ति प्रभु श्री राम की भक्ति करने के लिए संसार में इधर–उधर भटकते रहते है। अर्थात् प्रभु श्री राम को खोजने के लिए योगी लोग सिंघल द्वीप तक जाते हैं। कबीरदास कहते है कि वास्तव में वे योगी नहीं जानते कि जिस राम को खोजने के लिए वे सिंघल द्वीप तक जाते रहते है वे प्रभु श्री राम उनके अन्दर व्याप्त है अर्थात् राम उन योगी के हृदय में बसे हुए होते है। अर्थात् वे मनुष्य से सच्ची प्रीति करते हैं। भगवान राम घट–घट में व्याप्त है। इसलिए उसको अपने हृदय से सच्ची प्रीति करनी चाहिए।

कबीरदास प्रभु की तुलना आंख की पुतली से करते हुए कहते है कि जिस प्रकार आंख की पुतली सबको दिखाकर स्वयं नहीं दिखती उसी प्रकार हरि शरीर में सब कुछ करते हुए भी स्वयं नहीं दिखते। अर्थात् प्रभु श्री हरि हमारे हृदय में वास करते है। कबीरदास उन योगी लोगों की मूर्खता का वर्णन करते है जो लोग ईश्वर को संसार में ढूंढते है। वे कहते है कि वे लोग ऐसे मूर्ख है जो इस तथ्य को नहीं जानते और ईश्वर को संसार में ढूंढते है।

विशेष

1. ईश्वर की व्यापकता का चित्रण।
2. मानव को ईश्वर स्वरूप मानना।
3. सधुक्कड़ी भाषा का प्रयोग।
4. 'ज्यूं नैनूं में पूतली' में उत्प्रेक्षा अलंकार है।

पद भाग

(1)

दुलहिनीं गावहु मंगलचार।
हम घरि आये हो राजा राम भरतार।।
तन रत करि मैं मन रत करि, पंचतत बराती।
रामदेव मोरै पांहुनै आये, मैं जोबन मैं माती।।
सरीर सरोबर बेदी करिहूं, ब्रह्मा बेद उचार।
राम देव संगि भांवरि लेहूं, धंनि धंनि भाग हमार ।।
सुर तैंतीसूं कौतिग आये, मुनिवर सहस अठ्यासी।
कहें कबीर हम ब्याहि चले, पुरिष एक अबिनासी।।

शब्दार्थ : **दुलहिनी** = सधवा नारी, आत्मा, सुन्दरी। **मंगलाचार** = विवाह के मंगल गीत। **भरतार** = पति। **रत** = अनुरक्त। **रति** = प्रेम । **पंचतत** = पंचतत्व (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु एवं आकाश)। **पांहुने** = अतिथि। **कौतिग** = कोटिक। **मुनियर** = श्रेष्ठ मुनि।

प्रसंगः प्रस्तुत पद्य हमारी पाठ्य पुस्तक 'मध्यकालीन हिन्दी कविता' में संकलित कबीरदास द्वारा रचित 'पदभाग' में से लिया गया है।

संदर्भः कबीर ने इस पद में आत्मा से अपना संबंध वैवाहिक रूपक के माध्यम से प्रस्तुत किया है।

व्याख्याः कवि कहता है कि हे सौभाग्यवती नारियों! तुम आज विवाह के मंगलगीत गाओ। क्योंकि आज हमारे घर मेरे पति राजा राम पधारे हैं। इस समय मैं शरीर से इनमें अनुरक्त होकर उनको मन से प्रेम करूंगी। मेरे पति राम के साथ इस समय पंचतत्व बराती के रूप में आएं है और मैं भी इस समय यौवन के मद से ओतप्रोत हूं। अर्थात् अपने अतिथि राम के प्रति प्रेम रोम–रोम में व्याप्त है, और यह उनसे मिलने का सर्वोत्तम समय है। देखो साथियों, इस विवाह–संस्कार का विधान इस प्रकार होगा। मैं अपने शरीर रूपी कुण्ड (सरोवर) की यज्ञ–वेदी बनाऊंगी और स्वयं ब्रह्मा इस यज्ञ संसार के अवसर पर वेद–मंत्रो का पाठ करेंगे। आज भगवान राम के साथ मेरी भांवरें पड़ेंगी। मेरा भाग्य निश्चत रूप से धन्य है। मैं सौभाग्यशालिनी हूं। हमारे इस विवाह रूपी महामिलन के तमाशे को देखने के लिए तैंतीस करोड़ देवता और अट्ठासी हजार श्रेष्ठ मनि पधारे हैं। कबीरदास कहते हैं कि उनकी आत्मा इस प्रकार अविनाशी अव्यक्त परम पुरुष परमात्मा के साथ विवाह करने वाली है अथवा अविनाशी अव्यक्त परम–पुरुष परमात्मा मुझसे विवाह करके मुझे अपने साथ लेकर चल दिए हैं।

विशेष–

1. हिन्दू परम्परा के अनुसार विवाह के समय सात भांवेरं पड़ती हैं। यहां जीव अपने सात शरीरों को साक्षी करके परमात्मा के साथ एकाकार हो रहा है। वह प्रत्येक आवरण को त्यागकर पूर्ण मोक्ष या निर्वाण को प्राप्त हो रहा है।
2. तैंतीस करोड़ देवताओं से अभिप्राय है तैतीस करोड़ रहस्य अथवा विश्व संचालन संबंधी समस्त नियमों का ज्ञान। अटठासी हजार ऋषि–मुनि का अर्थ है–विश्व के भौतिक रूप का परिज्ञान। तारागणों को भी ऋषि–मुनि कहा जाता है।
3. रहस्यवाद की अभिव्यक्ति।
4. सम्पूर्ण पद में सांगरूपक अलंकार है।

(2)

बहुत दिनन थे मैं प्रीतम पाए,
भाग बड़े घरि बैठें जाय ।। टेक।।
मंगलचार मांहि मन राखौ, राम रसांइण रसनां रसनां चावौं।।
मंदिर मांहि भया उजियारा, ले सूती अपनां पीव पियारा।।
मैं रनि रासी जे निधि पाई, कहा यहु तुमहि बड़ाई ।।
कहै कबीर मैं कछु न कीन्हां, सखी सहाग रांम मोहि दीन्हां ।।

शब्दार्थ : **थे** = मैं (बहुत दिनो में)। **रसांयण** = रसायन । **मंदिर** = हृदय, मंदिर। **सूती** = सती।

प्रसंग : पूर्ववत् ।

सन्दर्भ : प्रस्तुत पद में कबीरदास प्रभु श्री राम को अपने पति के रूप में स्वीकार करना और प्रभु श्री राम महिमा का व्याख्यान/चित्रण करना।

व्याख्या : कबीर परमात्मा के साथ अपने महामिलन का वर्णन करते हुए कहते हैं कि मैंने बहुत दिनों में अपने स्वामी के दर्शन किये हैं (जब से आत्मा परमात्मा से बिछुड़ी है, तभी से उसे परम तत्व के दर्शन नहीं हुए) यह मेरा परम सौभाग्य है कि मैंने इस संसार में ही उनका प्राप्त कर लिया। हे सखियों! (दूसरी आत्माओं) तुम अपना मन प्रभु–अर्चना में गाये मंगल गीतों में ही लगाओं एवं जिह्वा से राम नाम के अमुल्य रसायन का रसास्वादन करो। प्रभु आगमन से मेरे हृदय मन्दिर में प्रकाश हो उठा। (ज्ञानवर्तिका प्रदीप्त हो उठी)। हे सती आत्मा! तू अपने प्रियतम से भेंट कर। मैंने यह अमूल्य और सुन्दर निधि जो प्राप्त की यह प्रभु की ही अनुकम्पा है। कबीर कहते हैं कि हे सखी! मैंने कुछ भी विशेष महत्व का कार्य नहीं किया किन्तु यह प्रभु की कृपा है कि उन्होंने मेरी आत्मा को अपनाया।

विशेष

1. रूपक अलंकार का प्रयोग।
2. माधुर्य भावपूर्ण भावात्मक रहस्यवाद।
3. सूक्ष्म व्यापार को मूर्तिमान करने वाला भावलग्न विम्ब–विधान।

(15)

अब हम सकल कुसल करि मांनां,
स्वांति भई तब गोब्यंद जांनां।। टेक।।
तन में होती कोटि उपाधि, उलटि भई सुख सहज समाधि।।
जम थें उलटि भया है रांम, दुख बिसर्या सुख कीया विश्रांम।।

बैरी उलटि भये है मींता, साबत उपलटि सजन भये चीता।।
मापा जांनि उलटि ले आप, तौ नहीं ब्यापै तीन्यं ताप ।।
अब मन उपलटि सनातन हुआ, तब हम जाँनाँ जीवत मूवा।।
कहै कबीर सुख सहज समाऊं, आप न डरौं न और डराऊं।।

शब्दार्थ : **स्वांति** = शान्ति । **गोव्यंद** = गोबिन्द, प्रभु, ब्रह्म। **उपाधि** = व्याधियां। **सजन** = स्वजन, हितैषी।

प्रसंग : पूर्ववत् ।

सन्दर्भ : प्रस्तुत पद में कवि कबीरदास ने राम नाम मंत्र को प्राप्त कर लिया है और इस मंत्र संसार की सभी व्याधियां/पीड़ाओं का नाश होता है।

व्याख्या : कबीर कहते हैं कि जब मैंने प्रभु को जान लिया तभी चित्त को शान्ति हुई, इसलिए अब तो मेरी कुशल ही कुशल है। संसार की मायालिप्त होने की जो स्वाभाविक गति है उससे विपरीत आचरण कर अर्थात् वृत्तियों को जड़ोन्मुख से चिदुन्मुख कर देने से जो शरीर की कोटि–कोटि व्याधियां थीं वे समस्त सहज समाधि में परिवितित हो गई। अब काल भी बदल कर मुझे राम सम ग्राह्य और प्रिय हो गया और इस प्रकार में दुख को विस्मृत कर सुख लाभ कर रहा हूं। काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह आदि जो आत्मा के शत्रु थे वे अब दास बन कर मित्र रूप में काम आ रहे हैं। शाक्त जैसे कुमार्गी, आचरण भ्रष्ट भी सज्जन रूप में परिवर्तित हो गये हैं। यदि मनुष्य अपनी वृत्तियों को अन्तर्मुखी कर दे तो उसे दैविक, दैहिक, भौतिक –तीनों तापों में से कोई भी व्यथित नहीं कर सकता। जब में जीवन–मुक्त की स्थिति में आ गया तभी मेरा मन जो संसार माया में उलझा रहता था निर्मल होकर अपने प्रकृत रूप (जिस रूप में ईश्वर ने उसे प्रदान किया था) में आ गया।

कबीर कहते हैं कि मैं सहज–समाधि में अपने को लगाकर सुख लाभ करूंगा और संसार–तापों के भय से न तो स्वयं भयभीत होऊंगा और न किसी को भयभीत करूंगा।

विशेष–

1. पद की टेक पूर्णतः लोकगीत पर आधृत है।
2. लोकगीतों में पति के लिए ननद के बीर का सम्बोधन बड़ा प्रिय है।

(16)

संतौ भाई आई ग्यांन की आंधी रे।
भ्रम की टाटी सबै उडांणीं, माया रहै न बांधी।। टेक।।
हित चत की द्वै थूनीं गिरनीं, मोह बलींडां तूटा।
त्रिस्नां छांनि परी घर ऊपरि, कुबधि का भांडा फूटा।।
जोग जुगति करि संतौं बांधी, निरचू चुवै न पांणी।
कूड़ कपट काया का निकस्या, हरि की गति जब जांणी।।
आंधी पींछैं जौ जल बूठा, प्रेम हरि जन भींनां।
कहैं कबीर भान के प्रगटैं, उदित भया तम षींनां।।

शब्दार्थ–टाटी = छप्पर। **उडांणी** = उड़ गई। **थूनीं** = वह टेक जिस पर छप्पर की ओरी टिकी रहती है। **बलींडा** = बल्ली जिस पर छप्पर बीचों–बीच टंगा रहता है। **छांनि** = छप्पर। **बूठा** = बरसा। **भांन** = सूर्य। **षींना** = क्षीण।

प्रसंग : पूर्ववत् ।

सन्दर्भ : प्रस्तुत पद में कबीरदास ने ज्ञान के महत्व का चित्रण किया है।

व्याख्या—कबीरदास जी सन्तों को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि हे सन्तों! ज्ञान की आंधी आ गई जिससे भ्रम की सारी टाटियां उड़ गई और माया बन्धन भी टूट गए। ज्ञान की आंधी से मिथ्या प्रेम की टेकें भी गिर गईं तथा मोह की बल्लियां भी टूट गईं। इस प्रकार तृष्णा की छान घर से अलग गिर गई तथा कुबुद्धि के गलत मार्ग का रहस्य भी खुल गया। जीवात्मा ने यह छप्पर बड़े मनोयोग से बांधा था ताकि ज्ञान की एक बूंद भी इसमें से बाहर न निकले परन्तु इस ज्ञान की आंधी ने इसे उड़ाकर जीवात्मा के पापों रूपी कूड़े को बाहर फेक दिया। ज्ञान के इस अंधड के बाद ईश्वर भक्ति के जिस जल की वर्षा हुई उससे भक्तगण भीग गए। कबीरदास जी कहते हैं कि ज्ञान रूपी सूर्य के उदित होते ही अज्ञान रूपी तिमिर समाप्त हो गया।

विशेष—

1. प्रस्तुत पद में सांगरूपक एवं अतिशयोक्ति अलंकार है।

स्वयं आकलन के प्रश्न

1. कबीर की रचना का नाम लिखिएं।
2. कबीरदास के काव्य की एक विशेषता बताओं।
3. कबीर किस भक्तिधारा के कवि है?
4. कबीर किस युग के कवि है?

2.4 सारांश

सारांश रूप में हम कह सकते है कि कबीरदास ने अपने काव्य में समाज की विविध समस्याओं का चित्रण किया है। कबीरदास कवि बाद में जबकि वह समाज सुधारक के रूप में हमारे सामने पहले उपस्थित हुए है। उन्होंने अपने काव्य में साख्य भक्ति भाव का वर्णन किया है। उन्होंने मनुष्य को ज्ञान चक्षु को खोलने की सलाह दी है और घट—घट में व्यापक ईश्वर का स्मरण किया है।

2.5 कठिन शब्दावली

अनंत = अनंत । **लोचन** = नेत्र । **हौंस** = प्रबल अभिलाषा । **पंटतरै** = बदले में। **माषी** = मक्खी। **पष** = पंख । **पचतव** = पंचतत्व। **कौटिग** = कोटिग । **थे** = मैं । **रसांयण** = रसायन । **सूती** = सती। **स्वाति** = शांति । **गोव्यंद** = गोबिन्द । **उपाधि** = व्याधि । **टाटी** = छप्पर । **पींना** = क्षीण।

2.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

1. बीजक (साखी, सबद, रमैनी)।
2. गुरु का महत्व।
3. निर्गुण काव्य धारा।
4. भक्तिकाल।

2.7 सन्दर्भित पुस्तकः

1. श्याम सुन्दर दास — कबीर ग्रंथावली।

2.8 सात्रिक प्रश्नः

1. कबीर साहित्यिक विशेषता लिखों।
2. कबीरदास का जीवन परिचय बताओं।
3. कबीरदास की साहित्यिक रचनाओं के नाम लिखों।

*****

इकाई–3
सूरदास का जीवन परिचय

संरचना

3.1 भूमिका

3.2 उद्देश्य

3.3 सूरदास का जीवन एवं साहित्यिक परिचय

3.3.1 सूरदास की रचनाएं

3.3.2 साहित्यिक विशेषताएं

स्वयं आकलन प्रश्न

3.4 सारांश

3.5 कठिन शब्दावली

3.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

3.7 संदर्भित पुस्तकें

3.8 सात्रिक प्रश्न

3.1 भूमिका

हिन्दी–साहित्याकाश को अपनी–रस–सिक्त वाणी एवं आलौकिक प्रतिभा से सूयर्वत् ज्योतित करने वाले भक्त और कवि सूरदास मध्यकाल में चलने वाले सपुण भक्तिधारा की कृष्ण–भक्ति शाखा के प्रमुख एवं प्रतिनिधि कवि स्वीकार किए जाते हैं। यह कृष्ण–भक्त के अन्यतम साधक तो थे ही, कृष्ण काव्य के भी अनन्यतम साधक एवं गायक थे। कृष्ण भक्ति के प्रवर्तक आचार्य वल्लभ के प्रमुख शिष्य एवं सुपुत्र गोस्वामी विटठलनाथ द्वारा प्रतिष्ठापित 'अष्टछाप' के भी सूरदास प्रमुख और प्रतिनिधि साधक तथा कवि थे। इनके जन्म और जीवन–परिचय आदि को लेकर आज भी विद्वान इतिहासकारों में मतभेद पाया जाता है। 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' नामक रचना के अनुसार यह रूनकता क्षेत्र के निवासी और जन्मान्ध थे। परवर्ती अनुसंधानकर्त्ता और इतिहासकार इनका मूल स्थल या जन्म स्थान गुड़गांव बल्लभगढ़ राजपथ पर स्थित सीहीं नामक स्थान को स्वीकार करते हैं। कहा जाता है कि अभी यह केवल चार वर्ष के ही थे कि इनके पिता पारिवारिक दरिद्रता से छुटकारा पाने और जीविका की खोज करते हुए पारसोली नामक स्थान पर आकर बस गए। वहां स्थित एक पुराने मन्दिर के पिछवाड़े कुछ भक्तजनों ने उनके पिता के परिवार के निवास के लिए एक छोटा सा घर बना दिया। वहां रह कर वे प्रतिदिन मन्दिर के आंगन में श्रीमदभागवत पुराण की कथा करने लगे। कथा के समय चढ़ने से ही इनके घर–परिवार का गुजारा होता।

3.2 उद्देश्य

1. सूरदास के जीवन परिचय का बोध।
2. सूरदास के व्यक्तित्व का बोध।
3. सूरदास की रचनाओं की जानकारी।
4. सूरदास के आराध्य का बोध।

3.3 सूरदास का जीवन एवं साहित्यिक परिचय

भक्त प्रवर एवं कविवर सूरदास का जन्म सीहीं नामक स्थान पर ही वैशाख मास के शुक्ल पक्ष की पंचमी तिथि को सम्वत् 1535 वि. को हुआ था। इनके माता-पिता के सम्बम्ध में भी मतभेद बना हुआ है और उनके नाम धाम अज्ञात माने जाते हैं। कुछ लोग सम्राट अकबर के दरबारी गायक बाबा रामदास को सूरदास का पिता मानते हैं। कुछ लोगों का मानना है कि सूरदास का वास्तविक नाम विल्वमंगल था, जिसने चिन्तामणि नामक एक वेश्या के प्रेम से निराश होकर अपनी आंखें फोड़ ली थी और बाद में सूरदास नाम से प्रसिद्ध हो गए। एक अन्य मत भी उपलब्ध है। वह यह कि सूरदास वास्तव में वीर गाथाकाल और पृथ्वीराज चौहान के दरबारी कवि चन्दरबरदाई के वंशज ब्रहाभट्ट थे। सूरदास के नाम से प्रचलित 'साहित्य लहरी' नामक रचना के आधार पर ही इस मान्यता को प्रचारित किया गया प्रतीत होता है।

अपने उपन्यास 'खंजन नयन' में उपन्यासकार अमृतलाल नागर ने सूरदास के जन्म स्थान, घर-परिवार और वंश परम्परा सम्बन्धी मान्यताओं को एक निर्णायक मोड़ देने का प्रयास किया है। उनकी मान्यता के अनुसार सूरदास का जन्म सीहीं नामक स्थान पर हुआ, पर बाद में परिवार पारसौली चला आया।? उनके पिता का नाम भागवत महाराज था। बहुत संभव है कि भागवत के कथावाचक होने के कारण लोग उन्हें 'भागवत महाराज' अर्थात भागवत की कथा वांचने वाला ब्राह्मण कहने लगे हों। सूरदास जन्मांध थे, जबकि दोनों बड़े भाई आंख वाले थे और अपने जन्मांध होते भाई को एक बोझ मान कर रास्ते से हटाना चाहता थे। उनका वास्तविक नाम सूर्यनाथ था, परन्तु पिता केवल सूरा रहकर पुकारा करते थे। लगता है कि यही सम्बोधन 'सूरदास' बन कर चल निकला। माता सूरदास को 'सूरज' कह कर सम्बोधित किया करती थी। ज्ञातव्य है कि अपने कई पदों में कवि ने 'सूर' या 'सूरदास' के स्थान 'सूरज' नाम का भी प्रयोग किया है। लगता है, स्नेहमयी माता का स्मरण हो आने पर ही सूरदास ऐसे प्रयोग किया करते थे। उनकी जाति ब्रह्मभट्ट या भाट नहीं थे, बल्कि के सारस्वत ब्राह्मण थे। पिता कथा एवं पुरोहितताई करके बड़ी कठिनता से अपने परिवार का लालन-पालन किया करते थे। उनके दोनों बड़े बेटे भी कथा के अवसर पर साथ रह कर भजन गाया करते थे। सूरदास जब छः वर्ष के हो गए, तो वे भी पिता के साथ कथा में भाग लेने के लिए जाने लगे। इस छोटी सी अवस्था में ही उन्हें कविताई भी सूझने लगी थी। उनका कण्ठ स्वर भी बड़ा मधुर था। कहा जाता है कि मात्र छः वर्ष की आयु में ही बालक सूरदास ने मधुर स्वरों में स्वरचित निम्नलिखित पद सुना कर कथा सुनके स्वरों में स्वरचित निम्नलिखित पद सुना कर कथा सुनने आए सभी लोगों को विस्मय-विमुग्ध कर दिया था।

चरन कमल बन्धों हारी राई
जाकी कृपा पंगु गिरि लांघे, अन्धे को सब कुछ दरसाइ।।
बहिरौ सुनै, गूंग पुनि बोलैं, रंक चलै सिर छत्र धराइ।।
सूरदास स्वामी करूनामय, बार-बार बन्दौं तिहिं पाइ।।

इस कविताई एवं स्वर-माधुर्य ने जहां सभी श्रोताओं को भाव-विभोर कर बालक सूरे को प्रंशसक बना दिया और हर प्रकार के चढ़ावे से ही दरिद्र परिवार का घर भर दिया, वही दोनों बड़े भाई जन्मान्ध सूर के शत्रु बन गए। बार-बार पिता के कान भरते रहने से वे भी बड़े बेटों के बहकावे में आकर छोटे अन्धे बेटे से छुटकारा पाने के उपाय सोचने लगे। गांव के एक चरवाहे के संग पशु चराने जाकर सूरदास को उसकी सहायता से विविध ज्ञान हुआ। बालक सूर्यनाथ या सूरा ने मार्तण्ड पंडित के पास जाकर सूरदास को उसकी सहायता से विविध वनस्पतियों, रंगों, ध्वनियों, आकृतियों आदि का ज्ञान प्राप्त हो सका। घर पर माता की स्नेहहिल प्रेरणा सूरदास अपने श्याम सरण के भक्ति प्रेम में निमग्न होते गए। भाइयों और पिता का व्यवहार बालक सूरदास के मन मस्तिष्क को अकसर उद्वेलित करता रहता और कई बार वह घरबार

त्यागने की बात सोच चरवाहे बाबा से भी कहते रहते। केवल माता के स्नेह ने ही उन्हें अपने घर संसार के साथ बांधा हुआ था। आठ वर्ष की आयु में पिता ने सूरदास का यज्ञोपवीत संस्कार भी कर दिया। परन्तु बड़े भाइयों को व्यवहार दिन प्रतिदिन आधिकाधिक अपमानजनक होता गया। तो तंग आकर मात्र आठ वर्ष के बालक सूर्यनाथ ने अपनी एकान्त लाठी सम्भाली और वह अनजानी राहें नापता अनजान दिशा की ओर बढ़ गया।

सूरदास की नयनान्धता पर भी विद्वानों में पर्याप्त मतभेद पाया जाता है। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, 'खंजननयन' उपन्यास के लेखक स्वर्गीय पं. अमृतलाल नागर ने सूरदास को जन्माध मान कर ही उनका औपन्यासिक परिवेश में चरित्रांकन किया है। अन्य कई विद्वान भी उन्हें जन्मांध ही स्वीकार करते हुए कहते हैं कि बाद में सूर की भक्ति भावना से प्रसन्न होकर भगवान श्रीकृष्ण ने इन्हें नेत्रवान होने का वरदान प्राप्त किया, परन्तु सूरदास ने यह कह कर ऐसा स्वीकार करने से साफ इन्कार कर दिया कि जिन नयनों से एक बार आपके दर्शन कर लिए हैं, उन नयनों से अब वह इस छलिया एवं नश्वर संसार का और कोई रूप नहीं देखना चाहते। फलतः आंखें पाकर भी वे पुनः पूर्ववत् अर्थात् नयनांध हो गए। ऐसी स्थिति में जन्मांधता की बात एवं मान्यता ही उचित प्रतीत होती है। सूरदास ने अपने रचे पदों में भी कहीं-कहीं इसी मान्यता को संकेतित किया है। जैसे -

"सूरदास की कौन निहोरी, नयनहु की हानि।"

फिर भी कुछ लोग सूरदास की 'जन्मान्धाता' का अर्थ आंखों की अंधता न लेकर अकल या बुद्धि की अंधता लेना अधिक उचित मानते हैं। हमारे विचार में उन्हें जन्मान्ध मानना ही अधिक उचित प्रतीत होता है।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, भाइयों के अपमान जनक व्यवहार से पीड़ित होकर आठ वर्ष की अबोध अवस्था में ही सूरदास ने घर त्याग दिया था। वे इधर-उधर घूमते और स्व-रचित पद गाते फिरते। इससे लोगों को सहानुभूति उन्हें सहज भाव से प्राप्त होने लगी। वे चारों ओर 'श्याम-सखा' नाम से जाने-माने लगे। वे लोगों के प्रश्नों पर विचार कर उन्हें सब ठीक-ठाक बताते, उनके कार्य सिद्ध करते। इस कारण उन्हें धन, मान सम्मान सभी कुछ प्रचुर मात्रा में प्राप्त होने लगे। सभी जातियों-धर्मो के लोग उनका यथेष्ठ मान प्रदान करते। परन्तु जैसे-जैसे उनका मान सम्मान और ऐश्वर्य बढ़ता, वे अन्तः प्रेरणा से व्याकुल होकर वह सब त्याग कर आगे बढ़ जाते। उन्हें अपने व्यवहार पर पश्चाताप होता कि 'श्यामसखा' होकर भी वे धन सम्पत्ति के चक्कर में पड़ जाते हैं। तब अचानक उनका काव्यमय स्वर फूट उठता -

"मन रे, तू भूल्यौ जनम गंगावै।
बेगि चेत सकल सिर ऊपर, काल सदा मंडरावै।।
खान-पान अरधे निसिबसार, जिम्या लाड़ लड़ावै।
गृह-सुख देखि फिरत है, फूल्पौं सुपने मन भटकावै।
मेरी-मेरी करत बांवरे, आयुष वृथा गंवावै।
हरि से हितू बिसारे वैसे, सुख-विष्टा चित भावै।।"

सभी सुख साधन एवं चेले-चेलियां त्यागकर के चुपचाप आगे बढ़ जाते। इस प्रकार वे अनेक वर्षो तक देश-देशांतर में घूमते रहे। उनकी काव्य प्रतिभा, स्वर की मधुरता और ज्योतिष विद्या के अनुपम ज्ञान के कारण उनका यश चारों तरफ फैल चुका था। वे जहां जाते उनका यश उनसे पहले वहां पहुंच चुका होता। इस प्रकार देशाटन करते हुए उनकी आयु बत्तीस तैंतीस वर्ष की हो गई। अब वह मथुरा-आगरा राजपथ पर यमुनातट पर बने गऊ घाट नामक स्थान पर रह कर 'श्याम सखा' का दास्य भाव से भजन कीर्तन करने लगे। वहां भी उनके भक्तों सेवकों की कोई कभी नहीं रही। उन दिनों अपने पुष्टिमार्गी सिद्धांतों का प्रचार

करते हुए दक्षिण से आकर गोस्वामी वल्लभाचार्य उत्तर भारत का भ्रमण कर रहे थे। वे जहां भी जाते, वहीं पर उन्हें श्रीकृष्ण के अंधे भक्त सूरदास की रसलीनता कविताई और स्वर-माधुर्य की मुखर चर्चा सुनाई देती। उनकी उत्सुकता भी सूर से मिलने के लिए निरंतर वृद्धि पाती गई। सूरदास ने भी आचार्य वल्लभ की चर्चा सुनी और उनके दर्शन पाने को लालायित हो उठे। एक दिन सूरदास के एक भक्त ने बताया कि दक्षिण भारत एवं काशी में मायावाद का खण्डन करने के कारण आचार्य वल्लभ को सभी महाप्रभु कहने लगे हैं। उन्होंने एक नया मार्ग भी प्रतिपादित किया है। सुनकर सूरदास की जिज्ञासा और भी बढ़ गई। फिर एक दिन पता चलने पर कि महाप्रभु वल्लभाचार्य गऊगाट पर पधारे हैं, एक सेवक के साथ वे तत्काल उनसे मिलने चल दिए। पास पहुंचकर सूर ने उन्हें दण्डवत प्रणाम किया और हाथ जोड़ कर उनके सामने चुपचाप बैठ गए। कई क्षणों तक मौन भाव से उन्हें देखते रहने के बाद आचार्य वल्लभ ने स्नेह से कहा- तुम्हीं हो सूर स्वामी। बड़ा नाम यश फैल रहा है तुम्हारा सूर स्वामी। सचमुच तुम भक्ति, प्रेम और कविता-गायन के सागर हो, हमें भी कुछ भागवत् महिमा सुनाओ। महाप्रभु की आज्ञा शिरोधार्य पर सूरदास गाने लगे :-

"हो हरि, सब पतितन कौ नायक।
को करि सके बराबरी मेरी, इतै मान को लायक।।"

सूरदास आचार्य वल्लभ के पास शिष्य बनकर बाद में उनकी आज्ञा से श्रीनाथ-मन्दिर में स्वरचित लीला पढ़ रचकर प्रतिदिन कीर्तन करने लगे। वे प्रतिदिन कीर्तन करते, फिर वापिस अपनी कुटिया पर लौट जाते। उनका शेष जीवन यहीं पर यही सब करते हुए व्यतीत हुआ। लगभग तैंतीस-चौंतीस वर्षो की आयु में उन्होंने श्रीनाथ जी के मन्दिर में कीर्तन-कार्य सम्भाला था और लगभग एक सौ पांच वर्ष की आयु तक वे नियमित रूप से यह सब करते रहे। जब उन्हें अपने जीवन का अन्त आ जाने का अहसास हुआ तो श्रीनाथ जी की मूर्ति को साष्ठांग प्रणाम कर, लाठी टेकते हुए अपनी कुटिया मे लौट आए। 'जयश्रीनाथ' कहते हुए वे कुटिया के सामने बने चबूतरे पर टेक लेटकर अपने प्रभु एवं गुरु का ध्यान करने लगे। उन्हें खोजते हुए जब गोस्वामी विटठलनाथ एवं अन्य लोग वहां पहुंचे, तो 'पुष्टिमार्ग के जहाज' सूरदास मूर्च्छित सी अवस्था में गा रहे थे। विटठलनाथ जी की तरफ संधे कण्ठ से गाते रहे -

"खंजन नैन रूप रस भाते।
अतिसै चारू, चपल, अनियारो पल पिंजरा न समाते।।
चलि-चलि जात निकट स्त्राहान के उलति फलटि तारू-फलित।
सूरदास अंजन गुन अटकै, न तरू अबहिं उड़ि जाति।।

सम्वत् 1660 वि. में भक्त प्रहार और कविवर सूरदास के प्राण पखेरू उड़कर उस जहाज पर फिर जो बैठें जहां से उनका उद्‌भव हुआ था। इस प्रकार स्पष्ट है कि कविवर सूर का जीवन एक अनवरत संघर्ष से भरता हुआ गतिशील जीवन रहा। जन्मान्ध होते हुए भी उन्होंनें कड़ी कुशल तत्परता से अपनी सुघड़ राह का निर्माण स्वयं किया और सभी के लिए अनवरत प्रेरणा का स्रोत बन गए। अपनी अन्तःदृष्टि से देखकर अपने काव्य के रूप में उन्होंने जो कुछ भी चितारा है, वह भक्तों का सर्वस्व तो है ही, काव्य-रसिकों, काव्य मर्मज्ञो एवं आमजनों के लिए भी शुभ मंगल का विद्यायक, प्राणवान, सजीव एवं प्रेरणादायक है।

3.3.1 सूरदास की रचनाएं

ऐसी मान्यता है कि कविवर सूरदास ने अपने जीवन काल में कुल मिलाकर सवा लाख से अधिक गेय पद रचे थे। सभी का सम्बन्ध प्रमुखतः बालकृष्ण भी लीलाओं से ही था। इतनी बड़ी संख्या में पद रचना वस्तुतः असीमता का संस्पर्श करने जैसा ही था। सागर को अनन्त असीम कहा गया है। स्यात उस अनन्त संख्या के कारण ही कविवर सूर-विरचित और संकलित पदों का नाम 'सूरसागर' उचित ही दिया गया है।

जो हो, कविवर सूरदास की इस प्रमुख रचना का जो स्वरूप आजकल उपलब्ध है, उसमें चार-पांच हजार के बीच पदों का संकलन हुआ स्वीकारा जाता है। उस संख्या को भी कम नहीं कहा जा सकता है। 'सूरसागर' को ही कविवर सूरदास की सर्वस्वीकृति प्रामाणिक रचना स्वीकार किया गया है। कवि ने उस काव्य की रचना श्रीमद्‌भागवत पुराण के दशम् स्कन्ध के आधार पर की है। किन्तु यह सर्वथा उस का अनुकरण या भावानुनवाद मात्र नहीं है। उससे सर्वथा भिन्न एवं नवीन है। कदम-कदम पर कवि ने नवीनता एवं मौलिकता का परिचय दिया है। इसमें श्रीकृष्ण के जन्म से लेकर मथुरा गमन तक की सभी घटनाओं का क्रम से वर्णन किया गया है। यद्यपि कथा कहना कवि का उद्देश्य एवं प्रयोजन नहीं हैं। मथुरा गमन के बाद उद्वव-सन्देश (भ्रमर-गीत) का भी कवि ने वर्णन किया है। अपनी मौलिक प्रतिभा एवं दार्शनिक मान्यताओं के आलोक में कवि ने इस अन्तिम प्रसंग को सर्वथा नवीन, मौलिक एवं अत्यधिक प्रभावी बना दिया है। समूचे 'सूरसागर' की रचना गेय मुक्तक पदों में की गई है, यद्यपि जन्म से लेकर बाल्य-कैशोर्य की प्रायः सभी घटनाओं का वर्णन रहने के कारण इसमें प्रबंधात्मकता या प्रबन्धाभास अवश्य विद्यमान है। इसी कारण शैली-शिल्प के स्तर पर उस रचना को हम 'प्रबंधात्मक प्रगीत मुक्तक' कहना अधिक समीचीन एवं युक्तिसंगत मानते हैं।

कवि ने अपनी इस रचना को कथा स्थितियों को ध्यान में रखते हुए कुल बारह स्कन्धों या भागों में विभाजित किया है। उनमें से दशम् स्कन्ध विशेष महत्वपूर्ण स्वीकारा गया है। हिन्दी साहित्य का विवेचनात्मक इतिहास' के लेखक डा. तिलकराज शर्मा के अनुसार- "इनके पदों की संख्या तीन हजार छः सौ बत्तीस (3,632) के लगभग है। ये पद न केवल कृष्ण भक्ति का गौरव है, बल्कि सूर की सृजन-प्रतिभा का भी अनुपम उदाहरण है। अनेक प्रकार की मौलिक कल्पनाएं भी यहीं देखी जा सकती हैं। अनेक लोक प्रचलित कथाओं को भी सूर ने अपने इस काल क्षेत्र में लहेजने का सफल प्रयास किया है। 'भ्रमरगीत' तो केवल सूर काव्य ही नहीं, समूचे हिन्दी काव्य की अमर निधि है। विरह-काव्यों में वह प्रमुख है ही, परोक्ष रूप से निगुर्णवाद ज्ञान मार्ग का खण्डन कर सगुण प्रेमभक्ति के महत्व को प्रतिपादित करने की दृष्टि से भी इसका बहुत अधिक महत्व है।" इन सभी मान्यताओं का प्रायः सब समर्थन करते हैं। 'सूरसागर' में कविवर सूरदास का मूल उद्देश्य कथा कहना न होकर कृष्ण जीवन के कविपय मार्मिक प्रसंगों का उद्‌घाटन करना ही है।

1. **'सूरसागर'** के अतिरिक्त कविवर सूर विरचित अन्य काव्यों की संख्या तेईस-चौबीस के लगभग स्वीकार की जाती है, परन्तु उनका न तो उल्लेख है और न उपलब्ध ही हैं। जो दो अन्य उपलब्ध रचनाएं हैं, उनकी प्रामाणकिता पर अभी तक प्रश्नचिह्न लगा हुआ है।

2. **'साहित्यलहरी'** का सम्बन्ध काव्य से न होकर उसे शासन से हैं। अर्थात् इस रचना में सूर-विरचित पदों के नाम पर जो कुछ संकलित है, उसमें अलंकार के लक्षण, राम स्वरूप निरूपण, नायिका-भेद आदि काव्य शास्त्रीय बातों का ही उल्लेख, वर्णन एवं रूपायण है।

अनेक विद्वान इसे अलग या स्वतंत्र रचना न मान 'सूरसागर' का ही एक स्वतंत्र प्रमाण मानते हैं। इस रचना में अनेक दृष्टकूट माने जाने वाले कठिन-कठोर पद भी संकलित किए गये है। कई विद्वान आलोचकों की मान्यता है कि कविवर सूरदास ने गोस्वामी विटठलनाथ द्वारा स्थापित 'अष्टछाप' के आठवें और सबसे छोटे कवि नन्ददास को काव्य शास्त्र की शिक्षा देने के लिए 'सूरसागर' के इस प्रभाग या स्वतंत्र 'साहित्य लहरी' नामक ग्रन्थ की रचना की थी।

3. **'साहित्य लहरी'** के कुछ पदों में सूरदास की वंशावली का उल्लेख भी किया है कि जो किसी अन्य सूरदास का माना जाता है। अतः इस प्रकार पद्य या पद भी प्रक्षिप्त ही स्वीकारे जाते हैं।

डॉ. मुन्शीराम शर्मा ने 'सुरसागर' और साहित्यलहरी, के समय समझे जाने वाले पदों का सोदाहरण तुलनात्मक अध्ययन करने के बाद कुछ इसी प्रकार का ही मत व्यक्त किया है। यहां एक ही भावाश्रित दो

उदाहरण देखे जो 'सूरसागर' और 'साहित्यलहरी' का मूल अंतर उजागर कर देते हैं। पहला उदाहरण 'सूरसागर' से और दूसरा –साहित्यलहरी से लिया गया है :–

"जब तैं सुन्दर वदन निहारो।
ता दिन तें मधुकर मन अटक्यो,
बहुत करि निकरेन निकारौ।।"
"जब तें है हरि रूप निहारो।
तब तें कहा कहों री सजनी लागत जग अंधियारो।।"

अन्य रचना का नाम है 'सूरसारावली।' इसमें तत्वत: 'सूरसागर'का सारतत्व संकलित किया गया है। इसकी पद संख्या 1103 मानी जाती है। कुछ विद्वान इन पदों को 'सूरसागर' की अनुक्रमणिका भी स्वीकार करते हैं। परन्तु वस्तु सत्य यह है कि अपनी समग्रता में यह रचना मात्र अनुक्रमणिका हीं नहीं है। जो प्रसंग 'सूरसागर' में नहीं आ पाये, या छोड़ दिये गये हैं, ऐसे कई प्रसंगों की सरल योजना इसमें देखी पढ़ी जा सकती है। अक्सर विद्वान इस 'सूरसारावली' को 'सूरसागर' के सर्जक कवि की छवि स्वीकार नहीं करते। यह वस्तुत: किसी की रचना है और क्या है, अभी तक यह अनुसंधान एवं अन्वेषण का विषय बना हुआ है। सो कविवर सूरदास की एक मात्र प्रामाणित रचना 'सूरसागर' ही स्वीकर की जाती है।

वस्तुत: कविवर सूरदास की अमर कीर्ति का आधार स्तम्भ भी यही रचना है। इसी रचना के कारण उन्हें साहित्याकाश का सूर्य कहा और माना जाता है। अन्त में यह स्वीकार करना ही होगा कि सूर के काव्य में तुलसी काव्य के समान व्यापकता एवं सर्वागिणता है... इनकी साधना मूलत: अन्तर्मुखी है, इसी कारण बहिरंग जीवन के तत्व वहाँ नहीं आ पाए। लोकपक्ष और उसके विविध रंग–रूपों, भावों प्रभावों आादि की वहां उपेक्षता भी इसी अन्तर्मुखता के कारण ही हुई है। वहां केवल माधुर्य की अन्त सलिला ही प्रवाहित है। वह रसिकता के भाव को जो प्रबल आश्रय प्रदान कर सकती है, पर संसारी मन को तुलसी के समान बहुमुखी आश्रय आधार देकर प्रभावित करने में सहाय नहीं है। जन–सामान्य में इसी कारण इन्हें यह लोकप्रियता सुलभ नहीं है जो तुलसी को प्राप्त है। जहां तक विशुद्व काव्यात्मकता का प्रश्न है, वहां सूर निश्चय ही अपहुंच हैं, हिन्दी साहित्य–गमन के सूर अर्थात् सूर्य ही है।"

3.3.2 सूरदास की काव्यगत विशेषताएँ

यह कहना अनुचित नहीं होगा कि सूरकाव्य ब्रजभाषा का शृंगार है। सूरदास केवल महान कृष्ण भक्त ही नहीं थे, बल्कि उच्चकोटि के कवि भी थे। यही कारण है कि अष्टछाप कवियों में उनका स्थान सर्वोपरि है। उनके काव्य सौदर्य का विवेचन इस प्रकार है –

- **आराध्या श्रीकृष्ण का स्वरूप**

सूरदास सगुण साकार तथा ब्रह्म के उपासक थे। यह दृष्टिकोण पुष्टिमार्ग के सर्वथा अनुकूल था। उनके विचारानुसार निर्गुण निराकार को समझना कोई सहज कार्य नहीं है। निर्गुण ब्रह्म की गति अविगत है तथा मन और वाणी से अगम और अगोचर है। इसलिए कवि मे पूर्ण विश्वास या परब्रह्म को ही अपना आराध्य माना।

"अविगत गति कछु कहत न आवै।
जौ गूंगे मीठे फल कौ रस अंतरगत ही भावै।
परम स्वाद सबुही सुनिरन्तर अमित तोष उपजावै।
मन–बानी को अगम अगोचर, सो जाने जो पावै।
रूप–रेख–गुन जाति–जुगाति–बिनु निरालम्ब किन धावै।
सब विधि अगम विचारहिं तातें 'सूर' सगुन लीला पड़ गावै।"

सूरदास के उपास्य भगवान कृष्ण भक्त-वत्सल हैं। वे अपने भक्तों का उद्धार करते हैं। कवि कहता है कि भगवान कृष्ण को छोड़कर उसका मन और कहीं सुख प्राप्त नहीं कर सकता हैं कृष्ण ही भक्तों की पूरी सुध लेते हैं और सुख-दुख में उनके साथ रहते हैं, इसलिए वे कहते है :-

"मेरो मन अनल कहां सुख पावै।
जैसे उड़ि जहाज को पंछी फिर जहाज पै आवै।
कमल नैन को छांड़ि महातम और देव की ध्यावै।
परम गंगा को छांड़ि पिपासौ, दूरमति कूप खनावै।
जिहिं मधुकर अंकुज रस चाख्यों, क्यों करील फल भावै।
सूरदास प्रभु कामधेनु तजि, छेरी कौन दुहावै।।"

कवि का कहना है कि जिस भक्त पर मुसीबत आती है, भगवान उसके पास नंगे पैर दौड़े चले आते है। सूरदास ने पुष्टिमार्ग में दीक्षा ली थी। उन्होंने रागानुमा भक्ति का प्रतिपादन करने के लिए सगुण भक्ति को अपनाया।

● भक्ति भावना

सूर का अध्ययन करने से यह पता चलता है कि सूरदास वल्लभाचार्य के संपर्क में आने से पहले दास्य भक्ति के पद गाया करते थे। 'सूरसागर' मे संकलित विनय के पदों में कवि की दास्य भक्ति देखी जा सकती है। कवि अपने आराध्य श्रीकृष्ण का स्मरण करता है और उनके समक्ष अपनी दीनता-हीनता का प्रतिपादन करता है। इसके साथ-साथ वह यह भी जानता है कि प्रभु उदार, पावन, दयालु तथा परम पवित्र है। इसलिए कवि बार-बार उनकी स्तुति करते हुए लिखता है -

"हमारे निर्धन को धन राम
चोर ने लेत, घटत नहिं कबहूं, आवत गाढ़ै काम।
जल नहीं डूबत, अगिनि न दाहत, ऐसो हरि नाम।
बैंकुठ नाम सकल सुखदाता, सूरदास सुख धाम।"

आगे चलकर सूरदास ने प्रभु कृष्ण की माधुर्य भाव से उपासना करनी आरम्भ कर दी। इसे हम शृंगार प्रेम की भक्ति भी कह सकते हैं। यह भक्ति के ही माध्यम है, लेकिन सूरदास का वियोग-संयोग की अपेक्षा अधिक उज्ज्वल और प्रबल है। उनकी मार्मिक विराहनुभूतियों में प्रेम की उत्कंठता देखी जा सकती है। इसके साथ-साथ कवि ने सख्य भक्ति भावना की भी व्यंजना की है।

● वात्सल्य-वर्णन

सूरदास ने वात्सल्य का विशद्, विस्तृत और स्वाभाविक वर्णन किया है। सांसारिक संबधों से दूर रहते हुए भी कवि ने वात्सल्य का जो स्वाभावित वर्णन किया है, वह अद्वितीय बन पड़ा है। लगता है कि पुरूष होते हुए भी सूरदास के पास माँ का कोमल हृदय था। कवि ने कृष्ण की बाल-सुलभ लीलाओं का जो वर्णन किया गया है, वह पाठक के हृदय में तत्काल ममता उत्पन्न कर देता है -

"सोभित कर नवनीति लिए।
घटनानि चलत रेनु तन मंडित, मुख दधि लेप किए।।
चारू कपोल, लोल लोचन, गोरोचन तिलक दिए।
लट लटकनि मनु मत्त मधुप गन मादक मधुंहि पिए।।
कहुला कंठ वज्र केहरी-नख राजत रूचिर हिए।
धनय सूर एकौ पल या सुख का सत कला जिए।"

किशोरावस्था में पहुंचकर कृष्ण की लीलाएं तथा उत्पाद बढ़ने लगते हैं। वे प्रतिदिन गोपियों के घर मक्खन चोरी करते है अथवा बर्तन तोड़ देते हैं। गोपियां तंग आकर किशोर कृष्ण को पकड़कर यशोदा माता के पास ले जाती है। वस्तुत: वे तो कृष्ण के दर्शन करना चाहती है। इधर यशोदा माता रोज की शिकायतों से तंग आकर कृष्ण को रस्सी से बांध देती हैं। कृष्ण की यह स्थिति देखकर गोपियों की आँखों में आंसू आ जाते हैं। यशोदा देखकर रोती हुई कहती हैं –

"कहन लगीं अब बढ़ि–बढ़ि कात।

ढोडा मेरी तुमहिं बंधायो, तनकोहिं माखन खात।"

इसी प्रकार बलराम कृष्ण को बार–बार चिढ़ाता है। दूसरे ग्वाल–वाले भी उसकी देखा–देखी बालक कृष्ण को तंग करते हैं। तब कृष्ण माँ से शिकायत करते हुए कहते हैं–

"मैया मोहि दाऊ बहुत खिझायौ

मों सो कहत मोल को लीनो, तोहि जासमुति कब जायो।"

इस प्रकार 'सूरसागर' में वात्सल्य वर्णन के मार्मिक चित्र देखे जा सकते हैं। इस संदर्भ में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा भी है– "जितने विस्तृत और विशद् रूप में बाल–लीला का आरम्भ हो जाता है, उतने विस्तृत रूप में और कवि ने नहीं किया। शैशव से लेकर कौमार्य अवस्था तक के क्रम में लगे हुए न जाने कितने चित्र मौजूद हैं। उनमें केवल बाहरी रूपों और चेष्टाओं का ही विस्तृत और सूक्ष्म वर्णन नहीं है बल्कि बालकों की अन्त: प्रकृति में भी पूरा प्रवेश किया है और अनके बाल्य भावों की सुन्दर स्वाभाविक व्यंजना की है।"

• संयोग शृंगार का वर्णन

सूरकाल में शृंगार का बड़ा ही मार्मिक वर्णन हुआ है। कवि ने शृंगार के संयोग तथा वियोग दोनों पक्षों पर पर्याप्त प्रकाश डाला है। सूर के शृंगार वर्णन के बारे में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल लिखते है– "हिन्दी साहित्य में शृंगार का रसराजत्व किसी ने पूर्ण रूप में दिखाया है तो केवल सूर ने..... शृंगार के संयोग तथा वियोग दोनों पक्षों का इतना प्रचुर विस्तार किसी और कवि में नहीं मिलता।"

बाल्यावस्था को पार करने के बाद कृष्ण किशोरावस्था को प्राप्त करने लगे है। वे गोपियों के साथ प्रेम लीलाएं करने लगते हैं। राधा–कृष्ण का प्रथम मिलन खेल–खेल में ही हो गया। एक दिन कृष्ण ब्रज की गली में निकले, वहां अचानक राधा के अद्वितीय सौंदर्य को देखकर हैरान रह गए। दोनों के हृदय में प्रेम भावना उत्पन्न हो गई –

"खेलन हरि निकले ब्रज खोरी।

औचक ही देखी तहै राधा, नैन बिसाल, भाल दिये रोरी।

नील बसन करिया कढ़ि पहिरे, कोनी पीढि रूलाति झलक झोरी।

संग लरिकनी चलि इति आवति, दिन–थोरी अति छवि तन गौरी।

सूर स्याम देखत ही रीझै, नैन मिलि परी ठगौरी।।"

सूरदास ने 'सूरसागर' में कृष्ण की चंचल क्रीड़ाएं, माखन चोरी, दान लीला, चीरहरण, रासलीला आदि के द्वारा देखी जा सकती हैं। कवि ने अनेक स्थलों पर रीति विहार के चित्र अंकित किए हैं जिन्हें देखकर लगता है कि सूरसागर रीतिकालीन साहित्य की एक पूर्ण भूमिका है।

• वियोग शृंगार वर्णन

सूरदास विप्रलभी शृंगार के लिए भी प्रसिद्व है। वस्तुत: भ्रमरगीत में वियोग शृंगार का ही अधिक वर्णन हुआ है। कृष्ण, राधा तथा गोपियों को छोड़कर मथुरा चले गऐ है। अत: वे कृष्ण के विरह में अत्यधिक

व्यथित तथा पीड़ित हैं। इसी प्रसंग को आधार बनाकर कवि ने वियोग शृंगार का बड़ा ही मार्मिक और हृदयग्राही वर्णन किया है। सूरकाव्य में वियोग शृंगार का वर्णन कृष्ण के मथुरा गमन के अवसर पर ही हुआ है। कृष्ण के मथुरा समाचार को जानकर गोपियों का हृदय कांप उठा। जो जहां खड़ी थी, वहीं रह गई, उनके चेहरे निस्तेज हो गए। वे दावाग्नि से दग्ध लताओं के समान प्रतीत हो रही थी। इस संदर्थ में कवि लिखता भी है :-

"रही जहां तो तहां सब ठाढ़ी।
हरि के चलत देखियत ऐसी मनहुं चित्र लिखित काढ़ी।
सूखे बदन स्रवत नैनन ते जल धारा उट काढ़ी।
कन्धानि बांह धरे चितवन दुम मनहुं बेति दव डाढ़ी।

अक्रूर ने गोपियों को लगभग निष्प्राण-सा कर दिया। कृष्ण को रथ पर चढ़ता देखकर यशोदा विलाप करती हुई पृथ्वी पर गिर पड़ी। पुन: मथुरा से उद्वव ने आकर गोपियों को जो निर्गुण का संदेश दिया, उससे तो गोपियों की विरह-व्यथा और बढ़ गई। गोपियों की तो यह आशा लगी थी कि कृष्ण मथुरा से शीघ्र लौट आएंगे। जब उद्वव ने गोपियों को निर्गुण का संदेश दिया तो वे और अधिक व्यथित हो उठीं। एक स्थल पर गोपियां अपनी विरह-व्यथा को व्यक्त करती हुई कहती भी हैं-

"ऊधो इनती जाम कहौ।
सब वल्लभी कहति हरि सों में दिन मधुपुरी रहयौ।
आज कल तुमहु देखत हो। तपन तरनि समचंद।
सुन्दर स्याम परम कोमल तनु, क्यों साहि है नंद-नंद।।
तुम तो परम साधु कोमल चित जानत हौं सब रीति।
सूर-स्याम को क्यौं बौलें व्रज बिन हौरे यह ईति।।"

स्वयं आकलन के प्रश्न

1. सूरदास का जन्म कब हुआ?
2. सूरदास का जन्म कहा हुआ?
3. सूरदास की किसी एक रचना का नाम बताओ?
4. सूरदास की मृत्यु कब हुई?

3.4 सारांश

अंत में सारांश रूप में हम कह सकते है कि सूरदास भक्तिकाल में श्रीकृष्ण भक्त कवियों में से श्रेष्ठ कवि माने जाते है। सूरदास ने अपने ग्रंथ 'सूरसागर' में भगवान श्री कृष्ण के बाल रूप का मनोहारी चित्रण किया है। कृष्ण के बाल रूप का चित्रण करने के लिए उन्हें वात्सल्य सम्राट की संज्ञा भी दी जाती है।

3.5 कठिन शब्दावली

चरन = चरण । **बन्धों** - बंदना करना। **रंक** = गरीब । **बहिरौ** = बहरा । **भूल्यौ** = भूलना। **बेगि** = अधिक।

3.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

1. 1478 ई.।
2. रुनकता।
3. सूर सागर।
4. 1583 ई.।

3.7 सन्दर्भित पुस्तक :

1. रामचन्द्र शुक्ल - भ्रमरगीत सार।

3.8 सात्रिक प्रश्न

1. सूरदास का जीवन परिचय बताईए।
2. सूरदास का साहित्यिक परिचय लिखिए।
3. सूरदास की विशेषताओं का चित्रण करें।

*****

इकाई–4
सूरदास : व्याख्या भाग

संरचना

4.1 भूमिका

4.2 उद्देश्य

4.3 सूरदास : व्याख्या भाग

स्वयं आकलन प्रश्न

4.4 सारांश

4.5 कठिन शब्दावली

4.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

4.7 संदर्भित पुस्तकें

4.8 सात्रिक प्रश्न

4.1 भूमिका :

सूरदास हिंदी साहित्य के प्रसिद्ध कवि है। उन्होंने भगवान श्री कृष्ण की विविध बाल लीलाओं का वर्णन किया है। इसलिए उनको वात्सल्य सम्राट कहा जाता है।

4.2 उद्देश्य

1. सूरदास के जीवन परिचय का बोध।
2. सुर की रचनाओं का ज्ञान।
3. सुर की रचनाओं में वर्णित विषय का ज्ञान।

4.3 सूरदास : व्याख्या भाग

पद 1

राग सारंग–

पहिले करि परनाम नंद सो समाचार सब दीजो।
औ वहां वृषभानु गोप सों जाय सकल सुधि लीजो।।
श्रीदामा आदिक सब ग्वालन मेरे हुतो भेटियो।
सुख–संदेश सुनाय हमारी गोपिन को दुख मेटियो।।
मंत्री एक बन बसत हमारो ताहि मिले सचु पाइयो।
सावधान है मेरे हूतो ताही माथ नवाइयो।।
सुन्दर परम किसोर बयक्रम चंचल नयन बिसाल।
कर मुरली सिर मोरपंख पीताम्बर उर बनमाल ।।
जनि डरियों तुम सघन बनन में ब्रजदेवी रखवार।
वृन्दावृन सो बसत निरंतर कबहुं न होत नियार।।
उद्धव प्रति सब कहीं स्यामजू अपन मन की प्रीति।
सूरदास किरपा करि पठए यहै सफल ब्रजरीति।।

प्रसंग : प्रस्तुत पद्यांश हमारी पाठ्य पुस्तक मध्यकालीन हिंदी कविता में संकलित आचार्य रामचंद शुक्ल द्वारा संपादित 'भ्रमरगीत सार में से लिया गया है। इस पद के रचयिता महाकवि सूरदास हैं।

सदर्भ : प्रस्तुत पद में भगवान श्री कृष्ण ने उद्धव को ब्रज जाने और गोपियों को अपना संदेश भेजने हेतु दिशा—निर्देश दिए हैं, का चित्रण किया है।

व्याख्याः कृष्ण उद्धव से कहते हैं, कि हे उद्धव तुम ब्रज जाओ, वहां जाकर मेरे नंद बाबा को प्रणाम करना और उनको हमारा हाल बताना। इसके पश्चात् तुम बरसाने में वृषभानु गोप के यहां जाना, उनका भी सारा हालचाल जानना इसके पश्चात् श्रीदामा आदि मेरे बालसखाओं से मिलना और उन्हें मेरो ओर से गले लगाना। गोपियों से मिलकर उन्हें हमारी कुशलता का संदेश देकर आनन्दित करना और उनके दुःख दूर करना। सारे सभी ब्रजवासियों से मिलना और मेरा संदेश देना कि कृष्ण तुम सब को याद करते हैं। हे उद्धव! वहां पर ब्रज में मेरी एक मंत्री वन में रहती है उनको भी मेरा सन्देश देकर उनके मन को भी शान्त करना। अथवा राधा भी उनका और उनके सन्देश का इन्तजार कर रही है। भगवान कृष्ण राधा की सुन्दरता का चित्रण करते हुए कह रहे है कि हे उद्धव! जब तुम उस मंत्री अथवा (राधा) से मिलोगे तो सावधान रहना और उसे मेरी ओर से माथा नवाना। अथवा सावधानी पूर्वक उनको मेरा संदेश देना। यह मंत्री अथवा (राधा) किशोरावस्था में है, उसके विशाल नेत्र बहुत संचल हैं, उसके हाथ में बांसुरी, सिर पर मोरपंख सजा होगा, पीले वस्त्र पहने होंगे और गले में बनमाला डाली होगी। श्रीकृष्ण उद्धव से कहते हैं कि हे उद्धव! ब्रज में घने वन है आप उन घने वनों से घबराना नहीं, वन देवी वन की रक्षक है। यह सदा वहीं पर रहती है, कभी वहां से दूर नहीं जाती।

कवि सूरदास कहते हैं कि इस प्रकार श्रीकृष्ण ने अपने मन की सारी बातें उद्धव से कह दी। कृपाल कृष्णा ने उद्धव को लोक—व्यवहार, शिष्टाचार आदि की शिक्षा देकर उसे ब्रज को भेज दिया।

विशेष

1. कृष्ण द्वारा उद्धव को ब्रज के लोक—व्यवहार, शिष्टाचार की परम्परा से अवगत कराया गया है।
2. श्रीकृष्ण कृष्ण का राधा के प्रति प्रेम का चित्रण हुआ है।
3. सरल, सहज एवं भावानुकूल ब्रज भाषा का प्रयोग हुआ है।
4. भाषा में तत्सम एवं तद्भव शब्दावली का चित्रण हुआ है।
5. अनुप्रास अलंकार का प्रयोग हुआ है।
6. संवाद शैली का प्रयोग हुआ हैं।

पद 2 राग सोरठ—

कहियो नन्द कटोर भए।
हम दोउ बॉरें डारि पर परे मानो थाती सौंपि गए।।
तनक तनक तैं पालि बड़े किए बहुते सुख दिखराए।
गोचारन को चलत हमारे पाछे कोसक पाए।।
ये बसुदेव देवकी हमों कहत आपने जाए।
बहुरि विधाता जसुमति जू के हमहि न गोद खिलाए।।
कौन काज यह राज, नगर को सब सुख सों सुख पाए।
सूरदास ब्रज समाधान करु आंजु काल्हि हम आए।।

प्रसंग : प्रस्तुत पद्याश हमारी पाठ्य पुस्तक मध्यकालीन हिंदी कविता में संकलित आचार्य रामचंद शुक्ल द्वारा संपादित 'भ्रमरगीत सार में से लिया गया है। इस पद के रचयिता महाकवि सूरदास हैं।

संदर्भ : प्रस्तुत पद में भगवान श्री कृष्ण ने उद्धव के माध्यम से अपने नंद बाबा को यह उलाहना देने को कहा है कि वह कठोर ह्रदय हो गए हैं वे कृष्ण एवं बलराम से प्रेम नहीं करते।

व्याख्या : कृष्ण उद्धव से कहते हैं– हे उद्धव ! मेरे नंदबाबा से कहना कि तुम इतने कठोर अथवा निर्दयी क्यों हो गए हैं? वे हम दोनों भाइयों को पराए समझते है अर्थात् हमें कंस के यहां ऐसे छोड़कर चले गए जैसे किसी की पराई अमानत छोड़कर जा रहे हैं। उन्हें हमारे से तनिक भी मोह नहीं रहा। अर्थात हम दोनों भाई उनके लिए पराये हो गये हैं। भगवान श्री कृष्ण ने उद्धव के माध्यम से अपने नंद बाबा को कहते हैं कि उन्हीं नन्द–बाबा ने हमें बचपन से पाल पोसकर इतना बड़ा किया है और हमें हर प्रकार के सुख दिए हैं। अर्थात् उन्होंने हम दोनों एकाएक कैसे भुला दिया? जब हम कही बहार से घर आते थे तब वे हमारी कुशलता जानने के लिए मील भर हमारे पीछे–पीछे चले आते थे अर्थात हमसे असीम प्यार कहते थे। मथुरा में सभी लोग हमें वासुदेव और देवकी की सन्तान कहते हैं। बचपन के दुःख–सुख नन्द–बाबा और माता यशोदा ही मेरे साथ रहे हैं। यही मेरे माता–पिता हैं। मैं तो प्रभु से यही प्रार्थना करता हूं कि अगले जन्म में भी मुझे माँ यशोदा की गोद में ही खेलने का अवसर मिले। भगवान श्री कृष्ण पश्चाताप करते हुए कहते है कि इस नगर में प्राप्त यह सारी मुख सामग्री मेरे किस काम की। अर्थात् ब्रज में प्राप्त जो सुख सुविधा मिली हैं वो मेरे किसी काम की नहीं यदि यहाँ पर ब्रज के लोग नहीं हैं अर्थात् ब्रज की सुख सुविधा मेरे लिए तुच्छ है। सूरदास कहते हैं कि कृष्ण ने उद्धव से कहा कि वह ब्रज जाकर माता यशोदा और नन्द बाबा को सांत्वना दे, समझाएं और बताएं कि दोनों भाई शीघ्र ब्रज आएंगे।

विशेष–

1. भगवान श्री कृष्ण का नंदबाबा एवं माता यशोदा के प्रति प्रेम का चित्रण किया है।
2. भाषा सरल, सहज एवं भावानुकूल हैं।
3. तत्सम एवं तद्भव शब्दावली का प्रयोग हुआ है।
4. प्रसाद एवं माधुर्य गुण का प्रयोग किया है।

पद 3 राग सारंग–

जाय कहो बूझी कुसतात।
जाके ज्ञान न होव सो माने कही तिहारी बात।।
कारो नाम, रूप पुनि कारो, कारे अंग सखा सब गात।
जो पै भले होत कहूँ कारे तो कत बदलि सुता लै जात।।
हमको जोग, भोग कुबजा को काके हिये समात?
सूरदास सेए जो पति कै पाले जिन्ह तेही पछतात।।

प्रसंग : प्रस्तुत पद्याश हमारी पाठ्य पुस्तक मध्यकालीन हिंदी कविता में संकलित आचार्य रामचंद शुक्ल द्वारा संपादित 'भ्रमरगीत सार' में से लिया गया है। इस पद के रचयिता महाकवि सूरदास हैं।

संदर्भ : प्रस्तुत पद में गोपियों ने उद्धव के माध्यम से कृष्ण को उलाहना देते हुए हैं कि जो व्यक्ति शक्ल से काले होते हैं उन व्यक्ति के ह्रदय में भी खोट होता है।

व्याख्या : गोपियां उद्धव से कहती है कि हें उद्धव! जाकर अपने मित्र कृष्ण से कह देना कि तुम हमारा कुशलक्षेम है। जहां तक कृष्ण द्वारा भेजे गए योग सन्देश को मानने का प्रश्न है वह तो हमारे वश का नहीं। योग आदि की बातों को तो कोई मूर्ख ही मान सकता है। गोपियां उद्धव और कृष्ण का मजाक उड़ाती हुई कहती हैं कि उद्धव तुम और तुम्हारे मित्र कृष्ण काले रंग के है। तुम्हारे मित्र का नाम ही कृष्ण अर्थात् काला है, रंग–रूप में भी काले हैं, साथी मित्र भी तुम्हारी तरह काले ही हैं। यदि काले लोग अच्छे होते तो पिता बासुदेव उन्हें यहां नन्द के पास छोड़कर उसके बदले उसकी गोरी बिटिया को क्यों ले जाते। बेटा देकर बेटी कौन ले जाता है।

गोपियां उद्धव से कहती है कि हे उद्धव हम तुम्हीं से पूछती हैं कि तुम सुंदर ग्वालिनों को योग की शिक्षा दे रहे हो और उधर कुरुप, कुबड़ी कुब्जा कृष्ण के साथ आनन्द कर रही है। योग तो उसे सिखाना चाहिए था, तुम हमें सिखा रहे हो। तुम्हारी यह योग विद्यां हमारे मन में नहीं समाएगी। गोपियां कहती हैं कि जिन नन्द और यशोदा ने कृष्ण को प्यार और विश्वास से पाला, उन्हीं से उन्होंने नाता तोड़ लिया।

विशेष–

1. सरल, सहज एवं भावानुकूल भाषा का प्रयोग।
2. तत्सम एवं तद्भव शब्दावली का प्रयोग है।
3. अनुप्रास अलंकार का प्रयोग है।

4 पद

कहों लो कीजै बहुत बड़ाई।
अतिहि अगाथ अपार अगोचर मनसा तहाँ न जाई।
जल बिनु तरंग, भीति बिनु चित्रन, बिन चित ही चतुराई।
अब ब्रज में अनरीति कछू यह ऊधो आनि चलाई।
रूप न रेख, बदन, बपु जाके संग ने सखा सहाई।
ता निर्गुन सों प्रीति निरंतर क्यों निब है, री माई?
मन चुभि रही माधुरी मूरति रोम–रोम अरुआई।
हौ बलि गई सूर प्रभु ताके जाके स्याम सदा सुखदाई।

प्रसंग : प्रस्तुत पद्यांश हमारी पाठ्य पुस्तक मध्यकालीन हिदी कविता में संकलित आचार्य रामचंद शुक्ल द्वारा संपादित 'भ्रमरगीत सार' में से लिया गया है। इस पद के रचयिता महाकवि सूरदास हैं।

संदर्भ : प्रस्तुत पद में गोपियां निर्गुण ब्रहा का उपहास करती हैं। वे कहती है कि निर्गुण ब्रह्म उनके लिए उपयुक्त नहीं है।

व्याख्या : गोपियां उपहास करती हुई कहती हैं कि हे उद्धव! आप धन्य हैं, आपकी जितनी प्रशंसा करे कम हैं। आप कहते हो कि तुम्हारा ब्रह्म अत्यधिक गम्भीर, असीम, इन्द्रियों की पकड़ में न आने वाला अदृश्य तत्व है, मन भी वहां तक नहीं पहंच सकता। तो हम पूछती हैं कि जब तुम्हारा ब्रह्म पकड़ से परे है उससे कोई कैसे प्यार कर सकता है। तुम तो बिना जल की लहर, बिना किसी आधार के हवा में चित्र अंकित कर रहे हो। तुम कहते हो कि बिन चित्त वाला तुम्हारा ब्रह्म सबसे चतुर है। यह सब आधारहीन, अनर्गल बातें हैं तथा हमारी समझ से परे हैं। हे उद्धव ब्रज में ऐसी अनोखी, अजीब बातें केवल तुमने ही कही हैं, तुमसे पहले किसी ने इनका जिक्र तक नहीं किया। तुम कहते हो कि ब्रहा रूपहीन, आकारहीन, मुख और शरीर से रहित है, उसका कोई सखा, मित्र नही। हमारे कृष्ण में तो यह सब कुछ है। तुम्हारे मित्र से हमारा प्रेम संभव है, परन्तु तुम्हारे निर्गुण से हम कैसे प्रेम करें जिसका कुछ अता–पता नहीं, रंग–रूप –आकार–गुण कुछ भी तो नहीं है। गोपियाँ विवशतापूर्वक कहती हैं कि हमारे मन में तो कृष्ण की मधुर मूर्ति बसी है और रोम–रोम में वही मूर्ति उलझी है अर्थात् हम ने अपने आप को पूर्ण रूप से भगवान श्री कृष्ण को समर्पित किया हैं। हम तो सदा के लिए कृष्ण न्योछावर है।

विशेष–

1. गोपियों का निर्गुण ब्रह्म को अस्वीकार करना।
2. ब्रज भाषा का प्रयोग हुआ है।
3. संवादात्मक शैली का प्रयोग।

पद 5 राग सारंग–

ऊधो ! ब्रज में पैंठ करी।
यह निर्गुण निर्मल गाठरी अब किन करहू खरी।।
नफा जानिकै ह्यां लै आए सबै बस्तु अकरी।
यह सौदा तुम ह्यां लै बेंचो जहाँ बड़ी नगरी।।
हम ग्वालिन, गोरस दधि बेंचै, लेहिं अबे सबरी।
सूर यहां कोउ गाहक नाही, देखियत गरे परी।।

प्रसंग : प्रस्तुत पद्यांश हमारी पाठ्य पुस्तक मध्यकालीन हिंदी कविता में संकलित आचार्य रामचंद शुक्ल द्वारा संपादित 'भ्रमरगीत सार' में से लिया गया है। इस पद के रचयिता महाकवि सूरदास हैं।

संदर्भ : प्रस्तुत पद में गोपियों ने उद्धव से अपने निर्गुण ब्रह्म ज्ञान रूपी गठरी को कहीं और जाकर बेचने को कहा है।

व्याख्याः गोपियों कहती हैं कि हे उद्धव! तुमने अपने निर्गुण ब्रह्म ज्ञान रूपी गठरी सामान बिक्री के लिए बाजार में तो लगा लिया है, यहां इसे खरीदेगा कौन? हे उद्धव! तुम्हारी यह निरर्थक, गुणरहित, बिना मूल्य की सामग्री यहां नहीं बिकेगी, तुम्हें इसकी कीमत नहीं मिलेगी। गोपियां कहती हैं कि हे उद्धव। तुम अधिक लाभ कमाने के लिए सीधी–साधी गोपियों को ठगने के लिए जो यह सामान लाए हो वो यहाँ नहीं बिकेगा। ब्रज में तो गरीब लग रहते है तुम्हारा यह सामान बहुत महंगा हैं हम इसे कैसे खरीद सकते हैं। हमारे किस काम का है। गोपियां उद्धव का उपहास करते हुए कहती हे उद्धव। तुम इतने ज्ञानी हो, क्या यह भी नहीं जानते कि तुम्हारे इस कीमती माल के ग्राहक गांवों में नहीं, बड़े – बड़े नगरों में मिलते हैं। तुम इसे वहीं ले जाओ। हे उद्धव! हम तो सीधी–साधी ग्वालिन हैं, हम तो दूध–दही की पहचान रखते है। यदि तुम्हारे पास गोरस, दूध–दही आदि है, तो दिखाओ। हम अभी सारा का सारा खरीद लेंगी। सूरदास जी कहते है कि गोपियों ने उद्धव से कहा कि यहां तुम्हारे निर्गुण का ग्राहक नहीं है, हमने तुम्हारा माल देखा जरूर है परन्तु इसे हमारे गले में मत मढ़ो।

विशेष :

1. गोपियां निर्गुण ज्ञान का उपहास उडाती हैं।
2. सरल, सहज एव भावानुकूल भाषा का प्रयोग।
3. अनुप्रास अलंकारों का प्रयोग।

स्वयं आकलन के प्रश्न

1. सूरदास का जन्म कब हुआ ?
2. सूरदास की किसी एक रचना का नाम बताओं ।
3. सूरदास की मृत्यु कब हुई।

4.4 साराश :

सारांश रूप में हम कह सकते है कि सूरदास ने अपने काव्य में भगवान कृष्ण के बाल स्वरुप को केंद्र बिंदु बनाया है।

4.5 कठिन शब्दावली

टेरना – त्यागकर। **सिंगी** – सॉग का बाजा। **पखानन** – पत्थरों, चट्टानों पर। **बानन** – बाणों से। **अहीरि** – ग्वालिनें। **जाहु–जाहु** – जाओ –जाओ। **कपट** – धोखा, छल। **चतुराई** – चालाकी। **बाँचत** – पढ़ते–पढ़ते। **बारह बाने** – खरे सोने।

4.6 आकलन प्रश्चो के उत्तर

1. 1540।
2. सूरसागर।
3. 1620

4.7 संदर्भित पुस्तक

1. रामचन्द्र शुक्ल – भ्रमरगीत सार।

4.8 सत्र के प्रश्न

1. सूरदास का जीवन परिचय बताओं।
2. सूरदास की काव्यगत विशेषताएँ लिखियें।

*****

इकाई–5
कबीरदास और सूरदास की काव्यगत विशेषता

संरचना

5.1 भूमिका
5.2 उद्देश्य
5.3 कबीरदास की काव्यगत विशेषता
स्वयं आकलन प्रश्न – 1
5.4 सूरदास की काव्यगत विशेषता
स्वयं आकलन प्रश्न – 2
5.5 सारांश
5.6 कठिन शब्दावली
5.7 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर
5.8 संदर्भित पुस्तकें
5.9 सात्रिक प्रश्न

5.1 भूमिका

हिन्दी साहित्य इतिहास में कबीरदास और सूरदास का सर्वोच्च स्थान है। कबीरदास ने समकालीन समाज में फैल रही रूढ़ियों पर आक्रमण किया है और समाज को एकता के सूत्र में बांधने की कोशिश की है वही दूसरी ओर सूरदास ने भगवान श्री कृष्ण के वचपन की विविध लीलाओं का वर्णन किया है। इसलिए इनको वात्सलय सम्राट कहा जाता है।

5.2 उद्देश्य

1. सूरदास के जीवन परिचय का बोध।
2. कबीरदास के जीवन परिचय का बोध।
3. कबीरदास के साहित्य की विशेषताओं का बोध।
4. सूरदास के साहित्य की विशेषताओं की जानकारी।
5. कबीरदास और सूरदास के साहित्य में वर्ण्य विषय का ज्ञान।

5.3 कबीर की काव्यगत विशेषताएं

कबीर मूलतः संत कवि थे। उनके काव्य का लक्ष्य–समाज सुधार है। इसलिए उन्होंने हमेशा मानव के कल्याण के लिए कार्य किया। पढ़े–लिखे न होने पर भी वे गुणवान थे। सत्संगी प्रवृत्ति होने के कारण वे देश–प्रदेश का भ्रमण करते थे। इनके काव्य की विशेषताएं इस प्रकार हैं :–

• निर्गुण तथा निराकार ईश्वर में आस्था

कबीरदास निर्गुण तथा निराकार ईश्वर में विश्वास रखते थे। वह ब्रह्मा को अनंत, अगम और अगोचर कहते हैं। उनके विचारानुसार निर्गुण ब्रह्म सृष्टि के कण–कण में बसता है। वह सदा हमारे हृदय में निवास करता है। जैसे कस्तूरी मृग की नाभि में रहती है परन्तु वह उसे जंगल में खोजता रहता है, इसी प्रकार ब्रह्म भी हमारे हृदय में विद्यमान है, परन्तु माया से ग्रस्त होने के कारण हम उसे जान नहीं पाते और बाहर खोजने लगते हैं। एक स्थल पर वह कहते भी हैं –

''कस्तूरी कुंडल बसे, मृग ढूंढै वन माहिं।
ऐसे घर में पीव है, दुनिया जानै नाहिं।।''

कबीर ने बह्म की साधना की। उसका साक्षात्कार भी किया। उन्होंने बार-बार दृढ़तापूर्वक कहा कि जीवन का लक्ष्य ब्रह्म के बारे में विचार करना है। परन्तु ब्रह्म विचार कोई सहज कार्य नहीं है। जिस पर गोबिन्द की कृपा होती है, वही इस प्रवृत्ति की ओर अग्रसर होता है। परन्तु ब्रह्मा क्या है? यह कहना बड़ा कठिन है। अत: कबीर ने उसको गूंगे का गूड़ कहा है। ब्रह्म के संबंध में वह अपने अद्वैतवादी विचार व्यक्त करते हुए कहते हैं-

''जल में कुम्भ, कुम्भ में जल है, बाहर भीतर पानी।
फूटा कुम्भ जल जलहि समाना, इति तत कहयो ज्ञानी।।''

• गुरु का महत्व

कबीरदास ने अपनी वाणी में गुरु को अत्यधिक महत्व प्रदान किया है। यह गुरु को परमात्मा से अधिक महत्व देते हैं। कारण यह है कि गुरु को परमात्मा से मिलता है। कवि के विचारानुसार सद्गुरु की महिमा असीम है। वह हमारा अत्यधिक उपकार करता है, हमें दिव्य नेत्रा देता है और ईश्वर के दर्शन कराता है। यदि संपूर्ण पृथ्वी को कागज़ बना लिया जाए, वन की लकड़ी को लेखनी और सातों समुद्रों को स्याही, तो भी गुरु के गुण नहीं लिखे जा सकते। एक स्थल पर वह कहते भी हैं -

''सतगुरु की महिमा अनंत, अनंत किया उपकार।
लोचन अनंत उघारिया, अनंत दिखावन हार।।
सब धरती कागद करूं, लेखनि सब बनशय।
सात समुंद्र की मसि करूं, गुरु गुण लिखा न जाय।।

कबीर का कहना है कि गुरु से प्राप्त ज्ञान के बिना सारी साधनाएं व्यर्थ है। गुरु ही शिष्य को सच्चा मार्ग दिखाता है। इसलिए कवि गोविन्द की अपेक्षा गुरु को अधिक महत्व देता है। यदि गुरु और गोविन्द दोनों सामने खड़े हों तो किसके चरण स्पर्श किए जाएं, कवि इसका निर्णय नहीं कर पाता। अंत में कवि गुरु ही गोविन्द की अपेक्षा अधिक महत्व देता हुआ कहता है -

''गुरु गोविन्द दोउ खड़े, काकै लागूं पाय।
बलिहारी गुरु आपने, जिन गोविन्द दियौ मिलाय ।''

• अवतारवाद का खण्डन

कबीर ने निर्गुण तथा निराकार ब्रह्म का प्रतिपादन किया और बहुदेववाद तथा अवतारवाद का खण्डन किया। वह मूर्ति पूजा पर विश्वास नहीं करते थे। यह तत्कालीन युग की मांग भी थी। उस समय के मुस्लिम शासक मूर्ति भंजक तथा एकेश्वरवादी थे। संभवत: इसलिए कबीरदास ने हिन्दू-मुस्लिम की एकता स्थापित करने के लिए जहां एक ओर बहुदेववाद और अवतारवाद का विरोध किया वहां दूसरी ओर एकेश्वरवाद का प्रतिपादन किया। वे ईश्वर को सभी देवताओं से उपर मानते थे -

''अक्षय पुरुष एक पेड़ हैं निरंजन वाकी।
डार त्रिरदेव शाखा भए, पात भया संसार।।''

परन्तु वैष्णव धर्म के प्रति कबीरदास की श्रद्धा और पूर्णसहानुभूति थी। उन्होंने स्पष्ट शब्दों में इनकी प्रशंसा की है और शाक्तों की अपेक्षा वैष्णवों को श्रेष्ठ माना है। परन्तु उन्होंने वैष्णव धर्म में व्याप्त बहुदेवों का खण्डन किया है और सच्चे वैष्णव आचरण की ओर उनका ध्यान दिलाया। यही कारण है कि कबीरदास वेशैं धारण तथा छाया तिलक को व्यर्थ मानते थे -

''बैसनो भया तो क्या भया, बूझा नहीं विवेक।
छाया तिलक बनाई करि दग्ध्या लोक अनेक।।''

• बाह्य आडंबरों का विरोध

कबीर ने हिन्दुओं के धार्मिक आडंबरों तथा पाखण्डों का खंडन करने वाले अनेक पद लिखे हैं। वे अपने भक्तों को यह संदेश देते हैं कि वे पाखंड से दूर रहकर आराध्य देव राम की भक्ति करें और गुरु की सेवा करें। परन्तु उनका राम निर्गुण, निराकार हैं। वह सगुण नहीं हैं वे कहते भी हैं :-

''पूजहू राम निरंजन देवा।
हरि का नाम न लेहि गंवारा फिर क्या सौचे बारम्बर।।''

इस दृष्टि से कबीरदास ने हिन्दुओं और मुसलमानों के बाह्य आडंबरों का डटकर सामना किया। एक ओर कबीर जी ने हिन्दुओं की मूर्ति पूजा, व्रत आदि का खण्डन किया तो दूसरी ओर मुसलमानों के रोजा, नमाज या हज की कटु आलोचना की। मूर्ति पूजा का विरोध करते हुए उन्होंने कहा-

''पत्थर पूजै हरि मिलै, तो मैं पूजूं पहार।
ताते वह चाकी भली, पीस खाय संसार।।''
इसी प्रकार से वे मुसलमानों को फटकारते हुए कहते हैं :-
''कांकर पत्थर जोरि के, मस्जिद लई बनाय।
ता चढ़ि मुल्ला बांग दे, का बहिरा हुआ खुदाय।।''

• जाति-पांति का विरोध

यहीं नहीं, कबीर ने उस भारतीय समाज की भी खबर ली जो वर्ण व्यवस्था के दलदल में फंसा हुआ था। तत्कालीन ब्राह्मण स्वयं को उच्च जाति का मानते थे और शूद्रों के साथ दुर्व्यवहार करते थे। कबीर ने मानव धर्म की स्थापना की तथा जाति-पांति और वर्ग भेद का विरोध किया। उनका विचार था कि संसार में व्याप्त वर्ग वेद मानव कल्याण के मार्ग में सबसे बड़ी रूकावट है। दूसरा, कबीर स्वयं निम्न जाति के थे और उन्होंने समाज में निम्न जाति के लोगों का अपमान होते देखा था। इसलिए उन्होंने वर्ण व्यवस्था का विरोध किया। एक स्थल पर वे कहते भी हैं -

''जाति-पांति पूछे नहिं कोई।
हरि को भजे सो हरि का कोई।।''

कबीर दास जी सभी मनुष्यों को ईश्वर की सन्तान बताते हुए कहते हैं कि भगवान की दृष्टि में कोई छोटा-बड़ा नहीं सब समान है। एक स्थल पर वह कहते भी हैं -

''एक बूंद एकै मलमूतर, एक चाम एक गूदा।
एक जाति थे सब उतपना, कौ बाम्हन कौ सूदा।।''

• नाम स्मरण पर बल

कबीर जी ने अपनी वाणी में नाम स्मरण पर विशेष बल दिया हैं। उनके विचारानुसार नाम-स्मरण से ही ईश्वर को पाया जा सकता है। कवि का कथन है कि लोग दुख में भगवान का स्मरण करते हैं परन्तु सुख में स्मरण नहीं करते। यदि सुख में भगवान का स्मरण कर लिया जाए तो दुख होगा ही नहीं। वह मन की एकाग्रता के साथ-साथ नाम स्मरण पर भी बल देते हैं। उनका कहना है कि जो साधक हाथ में माला फेरते हैं और मुख से राम नाम लेते हैं उनका मन तो दसों दिशाओं में भटकता रहता है। यह प्रभु-स्मरण नहीं कहा जा सकता। कवि यह भी कहता है जब तक शरीर रूपी दीपक में प्राण रूपी बत्ती बुझ नहीं जाती तब तक निडर होकर प्रभु के नाम का स्मरण करना चाहिए। जब आयु रूपी तेल घट जाएगा तो उस समय मानव को लंबी नींद सोना ही पड़ेगा-

''दुख में सुमिरन सब करैं, सुख में करै न कोय।
जो सुख में सुमिरन करै, तो दु:ख काहे का होय।।
कबीर निर्भय राम जपु, जब लगि दीवा बाति।
तेल घटै बाती बुझे, तब सोवो दिन गति।।''

• रहस्यानुभूति

कबीर हिन्दी साहित्य के महान रहस्यवादी कवि कहे जाते हैं। उनका रहस्यवाद उस ब्रह्म की जिज्ञासा का ही स्वरूप है। कवि ने विरहिणी आत्मा का स्वरूप बनाकर आत्मा तथा परमात्मा के संबंधों पर प्रकाश डाला है। आत्मा रूपी प्रेमिका परमात्मा रूपी प्रिय के लिए व्याकुल है। वह अपने प्रियतम से मिलना चाहती है, परन्तु सांसारिक मोह-माया के कारण मिल नहीं पाती। वह दिन-रात उसी को प्राप्त करने के लिए तड़पती रहती है। कारण यह है कि आत्मा को अज्ञान और अविद्या ने ढक रखा है। जब आत्मा पर से अज्ञान और अविद्या का पर्दा उतर जाता है, तब जीवात्मा परमात्मा से मिलकर एक हो जाती है। दोनों में कोई अंतर नहीं रहता। कबीरदास कहते हैं -

''जल में कुंभ, कुंभ में जल, बाहर भीतर पानी।
फुटा कुंभ जल जलहि समाना यतु तत कथौ गियानी।।
हेरत हेरत हे सखी, रह्मया कबीर हेराई।
बूंद समानी समुद्र में सो कत हेरी जाई।।''

कबीर के रहस्यवाद के बारे में डॉ. रामकुमार वर्मा लिखते हैं -''कबीर का रहस्यवाद अपनी विशेषता लिए हुए है। वह एक ओर तो हिन्दुओं के अद्वैतवाद के क्रोड में पोषित हैं और दूसरी ओर मुसलमानों के सूफी विद्वानों के सिद्धांतों को स्पर्श करते हैं। इसका विशेष कारण यही है कि कबीर हिन्दू और मुसलमान दोनों प्रकार के संतों के सत्संग में रहे हैं और वह प्रारम्भ से ही यह चाहते थे कि दोनों धर्म वाले आपस में दूध-पानी की तरह मिल जाएं।''

• सदाचार पर बल

कबीर ने अपनी वाणी में सहज, सरल तथा शुद्ध जीवन जीने पर बल दिया है। पहले बताया जा चुका है कि वे बाह्य आडम्बरों और पांखडों के कट्टर विरोधी थे। उन्होंने मन की पवित्रता और सदाचारी जीवन को अधिक महत्व दिया है। उन्होंने अपनी साखियों में बार-बार संदेश दिया कि हमें दूसरों के कल्याण के लिए ही कर्म करना चाहिए। वे सामाजिक, धार्मिक तथा आर्थिक धरातल पर साम्य की प्रतिष्ठि चाहते थे। यदि उन्होंने अपने काव्य में व्यंग्य का सहारा लेकर हिन्दुओं तथा मुसलमानों को फटकार लगाई है तो वह भी उनके कल्याण के लिए, इसलिए यह कहना उचित है कि कबीर उपदेशक पहले थे और कवि बाद में। कबीर के साहित्य में हमें सौंदर्य नहीं मिलता लेकिन एक महान् संदेश मिलता है। यह संदेश मानव जीवन के कल्याण से संबंधित है। वे कहते भी हैं -

''जो तो को कांटा बुबै, ताहि बोय तू फूल।
तोहि फूल को फूल हैं, वाको हैं तिरसूल।।
ऐसी बानी बोलिये, मन का आपा खोय।
औरन को सीतल करै, आपहुं सीतल होय।।''

इस संदर्भ में डॉ. रामकुमार वर्मा लिखते हैं -''कबीरदास का समाज सुधारकों में प्रथम स्थान है। उन्होंने व्यवहारिक ज्ञान को सुन्दर रूप दिया है। उनके उपदेशों में विश्वास है, शान्ति है तथा जीवन है।''

• भक्तिभावना और प्रेम-भावना

कबीर निगुर्ण-निराकार ईश्वर के सच्चे भक्त थे। अतः उनकी भक्ति निर्गुण ईश्वर की भक्ति है। कवि ने अहंकार, क्रोध आदि को त्यागकर ईश्वर का नाम स्मरण करने का उपदेश दिया। उनकी भक्ति-भावना में नाम-स्मरण, कीर्तन, श्रवण, दास्य भाव आदि सभी स्थितियां देखी जा सकती है। वे बार-बार कहते हैं-

''निर्गुण राम जपहुं रे भाई, अविगत की गति लखि न जाई।''

एक स्थल पर वह कहते हैं -

''पूजहु राम एक ही देवा।
सांचा नावंणु गुरु की सेवा।।
अंतरि मैल जो तीरथ हावै तिन बैकुण्ड न जांनां।
लोक पतीत कछू ना होवै नाहीं राम अचानां।।

इसके साथ-साथ कबीर जी ने प्रेमभावना पर भी विशेष बल दिया है। उनके विचारानुसार प्रेम के बिना ज्ञान का कोई महत्व नहीं है। अतः प्रेम जीवन का अनिवार्य तत्व है। परन्तु प्रेम पाना आसान नहीं है। कबीर का कहना है कि जिस हृदय में प्रेम का संचय नहीं है, वह हृदय नहीं, श्मशान है। सच्चा प्रेम त्याग और बलिदान मांगता है। वह कहता भी है -

''यह तो घर है प्रेम का, खाला का घर नाहिं।
सीस उतारै, भुंइ धरै, सौ पैठे घर माहिं।।''

• माया के प्रति सावधानता

कबीर ईश्वर-प्राप्ति के मार्ग पर माया को सबसे बड़ी बाधा मानते हैं और मनुष्य को माया से सावधान रहने की चेतावनी देते हैं। वे माया को महा ठगिनी कहते हैं, जो मीठी वाणी बोलकर सभी को फंसा लेती है। माया के जाल में फंसकर मानव ईश्वर को भूल जाता है और सांसारिक बंधनों में फंस जाता है। कबीर का विचार है कि जन्म-मरण थक जाते हैं, पर माया नहीं थकती। संसार में इस मीठी माया से हारते रहे। यहां तक कि इस चुड़ैल ने ब्रह्मा, विष्णु महेश को भी मोह लिया। कबीर माया के विभिन्न रूपों की निन्दा करते हैं। वह कहते भी हैं -

''एक कनक अरू कामिनीं जग में दोई फंदा।
इन्जौं जौन बंधावई, ताका मैं बंदा।।
कबीर माया पापणी, हरि सूं करै हराम।
मुखि कड़ियाली कुमति की, कहण न देई राम।।
मीठी-मीठी माया तजी न जाई।
अग्यानी पुरुष को भोलि भालि खाई।।''

• नारी भावना

इसके साथ-साथ कबीरदास ने नारी के प्रति अपने विचार व्यक्त किए हैं। वे नारी को माया का प्रतीक मानते हैं और उसे विष की पुड़िया, कांटों की झाड़ी तथा नागिन तक कह डालते हैं। उनका कहना है कि नारी की परछाई पड़ने से सांप भी अंधा हो जाता है फिर मनुष्य की क्या विसात है। नारी-निंद्रा के कारण कुछ आलोचकों ने कबीर जी का विरोध भी किया है, परन्तु कबीरदास ने इस प्रकार के दोहे उन नारियों के लिए लिखे हैं जो पर-पुरुषों को रिझाने में लगी रहती हैं। कबीर ने पतिव्रता नारी के निंदक नहीं थे। वह तो केवल चरित्रहीन नारियों के निंदक थे, वे कहते हैं :-

''नारी की झांई परत, अंधा होत भुजंग।
कबीरा तिनकी का गति, जो नित नारी के संग।।''

कबीर ने अपने जीवनानुभव से जो ज्ञान, विचार प्राप्त किया उसे अपने काव्य में प्रस्तुत किया। वही अनुभव इनका दर्शन कहलाया। कबीर ने सदैव समाज को सुधारने के लिए क्रांतिपूर्ण काव्य ओजपूर्ण वाणी में लिखे हैं। अत: वे कवि कम, समाज सुधारक ज्यादा है। डॉ. पीतांबर दत्त बड़थ्वाल के शब्दों में ये दार्शनिक न होकर आध्यात्मिक मनुष्य मात्र है।

स्वयं आकलन के प्रश्न–1

1. कबीरदास के काव्य की एक विशेषता बताओं।
2. कबीरदास किस युग के कवि है?
3. कबीरदास के गुरु का नाम बताओं।

5.4 सूरदास की काव्यगत विशेषता

● श्रृंगार वर्णन

सूरदास के काव्य में श्रृंगार का स्थान सर्वोपरि है। कवि ने श्रृंगार को रस राजत्व तक पहुंचाने का पूरा प्रयास किया है। इसका प्रमुख कारण यह है कि सूर के गुरु स्वामी वल्लभाचार्य ने भक्ति मार्ग में भगवान के प्रेममय स्वरूप को प्रतिष्ठित किया है। अत: सूर की वाणी भी प्रेमतत्व की पुष्टि करती हुई दिखाई देती है। इस सन्दर्भ में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने उचित ही लिखा है– "सूर के प्रेम की उत्पत्ति में रूप लिप्सा तथा साहचर्य दोनों का प्रयोग है। बाल क्रीड़ा के सखा सखी ही आगे चलकर यौवन क्रीड़ा के सखा-सखी हो जाते हैं।"

आचार्य शुक्ल का यह कथन सर्वथा उचित है। कृष्ण बाल्यावास्था से ही गोपियों के मध्य विचरण करते रहे। दूसरा उनकी सुन्दरता भी अद्वितीय थी। सूरदास ने राधा और कृष्ण के विशेष प्रेम की उत्पत्ति की पृष्ठभूमि मे रूप -आकर्षण को प्रमुख माना है। एक उदाहरण

"खेलत हरि निकसे ब्रज खोरी।
गये स्याम रवि–तुलना के तट, अंग लसति चंदन की खोरी।
औचक ही देखी तहं राधा, नैन विसाल, भाल दिये रोरी।
सूर श्याम देखत ही रीझे, नैन मैन मिलि परी हगौरी।"

सूर के काव्य में श्रृंगार रस की प्रधानता देखी जा सकती है। पहले बताया जा चुका है कि सूरदास के श्रृंगार रस के संयोग तथा वियोग दो पक्ष है। यद्यपि कवि ने इन दोनों पक्षों का वर्णन करने में अदभुत समानता प्राप्त की है, परन्तु श्रृंगार में कवि को अधिक समानता मिली है।

● संयोग वर्णन

आरम्भ में सूरदास दास्य भाव से ओत प्रोत पदों की रचना करते थे। परन्तु बाद में उन्होंने स्वामी वल्लभाचार्य के पुष्टि मार्ग में दीक्षा प्राप्त की। उनसे प्रेरणा प्राप्त करके के माधुर्य भाव के पदों की रचना करने लगे। कारण यह था कि पुष्टि मार्ग माधुर्य भक्ति का विशेष महत्व है। माधुर्य भाव की भक्ति के लिए रसिक शिरोमणि श्रीकृष्ण को ही उन्होंने अपना आलम्बन बनाया और श्रीकृष्ण तथा राधा की प्रेम लीलाओं का सुन्दर वर्णन किया। यूं तो कुछ विद्वानों ने संयोग श्रृंगार के अन्तर्गत राधा के प्रथम मिलन, दोनों के बीच प्रेम के विकास, उनके अनुपम सौंदर्य, प्रेमपूर्ण हास-परिहास, मान-मनुहार, दान-लीला, चीरहरण लीला और रास-लीला आदि का वर्णन किया है, परन्तु इतने विस्तार की ओर ध्यान न देकर हम यहां सूर काव्य के संयोग श्रृंगार का संक्षिप्त वर्णन करने का प्रयास करेंगे।

खेल–खेल में राधा कृष्ण में प्रेम भाव दोनों ओर समान रूप से उत्पन्न हुआ। राधा के अतिरिक्त कृष्ण ब्रज की गोपियों से भी प्रेम करते है। यही कारण है कि वृंदावन में कृष्ण और गोपियों का सम्पूर्ण जीवन प्रेम क्रीड़ाओं से परिपूर्ण है और प्रेम क्रीड़ाओं का सम्बन्ध संयोग पक्ष से है। प्रथम मिलन के पश्चात् राधा और कृष्ण में धीरे–धीरे प्रेम का विकास होने लगता है। वे अपने माता–पिता से अपने प्रिय पात्र का परिचय करवाकर निबधि मिलन का मार्ग खोज लेते है। राधा गाय का दूध निकलवाने के बहाने से कृष्ण से मिलती है। वह अपनी माता कीर्ति से दोहनी लेकर खरक की ओर चली जाती है। नंद बाबा भी कृष्ण के साथ वहां पहुंच जाते है। वे कृष्ण को राधा के साथ खेलने की आज्ञा देते हैं। राधा तो इसी अवसर की ताक में थी। उसने झट से कृष्ण का हाथ पकड़ लिया और कहा कि अब मैं तुम्हें बिल्कुल नहीं छोड़ूंगी।

एक बार राधा, कृष्ण से मिलने के लिए कोई बहाना खोजने लगी। वह अपनी मां कीर्ति से कहती है कि यमुना नदी से पानी भरकर लाते समय उसका मोतियों का हार कहीं गिर गया था। माता उसे सायंकाल में हार खोजने के लिए घर से बाहर भेज देती है। इस प्रकार राधा और श्रीकृष्ण को वृन्दावन के कुंजों में प्रेम करने का अवसर मिल गया है। संध्या के समय जब राधा घर लौटने लगी तो उसे अपनी चुनरी की गांठ खोलकर हार गले में डाल लिया। इस संदर्भ में सूरदास लिखते हैं:–

"राधा अतिहिं, चतुर प्रवीन।
कृष्ण को सुख दे चलि, हंासि, हंस–गति कटि छीन।
हार के मिस इहाँ, आई स्याममनि कै काज।
कयौ सब पूरन मनोरथ, मिलो श्री ब्रजराज।
गांठि आँचर खोरि कै, मोति सरी लीन्हों हाथ।"

सूरदास ने अपने काव्य में यह स्पष्ट किया है कि राधा तथा श्रीकृष्ण का प्रेम सौन्दर्य के आकर्षण से आरम्भ होता है। कवि ने दोनों के सौन्दर्य का बड़ा ही प्रभावशाली और मनोहारी वर्णन किया है। राधा के गौर वर्ण तथा उसकी सुन्दर कांति को देखकर ही कृष्ण उसके प्रति आकर्षित हुए थे। निम्न पद में कवि ने बाग के रूपक द्वारा राधा के समस्त अंगों का बड़ा ही सुन्दर वर्णन किया है:–

"अद्‌भुत एक अनुपम बाग
जुगल कम पर गज बर क्रीडत, तापर सिंह करत अनुराग।"

वे कृष्ण अन्तर्यामी है। इस बात को जानकर के अन्तर्ध्यान हो जाते हैं। राधा और गोपियां उन्हें खोजने लगती है:–

"तब नागरि जिय गर्व बढ़ायौ।
तो समान लिय औन नहीं कोऊ, गिरिधर मैं ही रस करि पायौ।।
केहि मारग मैं जाऊँ सखी री, मारग मोहिं विसरयौ।
ना जाने कित है गए मोहन, जात न जमादि परयौ।"

जब राधा और गोपियाँ पूर्ण समर्पण के बाद पश्चाताप करने लगती हैं तो वे वृक्ष की ओर से निकल आते हैं और फिर से रास–लीला करने लगते हैं। कवि ने दान–लीला के माध्यम से भी श्रीकृष्ण के राधा तथा गोपियों से दान मांगते समय छीना–झपटी करते थे और उनके अंगों का स्पर्श करते थे। गोपियों को भी श्रीकृष्ण के स्पर्श से काम–सुख प्राप्त होता था। इसलिए वे मार्ग में उनकी प्रतीक्षा करती रहती थी। कभी–कभी श्रीकृष्ण दही–मक्खन छीनने के बहाने से गोपियों के वक्ष–स्थल का स्पर्श करते हैं। इस संदर्भ में एक गोपी कृष्ण को कहती भी है:–

"ऐसै जाने बोलहु नंदलाला।
छांाहि देहु अंचरा मेरौ नीकै, जानत और सी बाला।
कार-बार मैं तुमहिं कहत हौं, परि हौ बहुरि जंजाला।
जीवन रूप देखि ललचाने, अबहीं तै ये ख्याला।
तरूनाई तनु आवन दीजै कत जिय होत बिहाला।
सूर स्याम उर तैं कर तारहु, टूटै मोतिनि-माला।।"

चीर हरण एक अन्य प्रसंग है जिसके माध्यम से कवि ने गोपियों तथा श्रीकृष्ण के आध्यात्मिक मिलन का मार्मिक वर्णन किया है।

वस्तुतः सूरदास ने राधा तथा श्रीकृष्ण के संयोग वर्णन के लिए मौलिक प्रसंगों की रचना की हैं। सूर का श्रृंगार वर्णन जीवन धर्म के साथ-साथ चलता रहता है। राधा और कृष्ण में प्रेम का उल्लास है और दोनों हास-परिहास में रूचि लेते है। दोनों में हर पल मिलन की इच्छा बनी रहती है। उनकी प्रेम-क्रीड़ाएं कभी भी शिथिल नहीं होती। यहां तक कि गाय को दोहने के समय भी दोनों एक-दूसरे के साथ हास-परिहास करना नहीं भूलते। कृष्ण जी दूध की एक धार दोहनी में डालते हैं तो दूसरी धार राधा के मुख पर चलाते हैं। इस प्रकार दूध को दोहने के समय दोनों में रति बढ़ने लगती है। कवि लिखता भी है-

"धेनु दुहत रति अति बाढ़ी।
एक धार दोहनी पहुंचावत एक धार जहं प्यारी बाढ़ी।

सूरदास ने मान-मनुहार का आश्रय देकर भी राधा कृष्ण के प्रेम को विकसित किया हैं। दोनों के बीच नोंक-झोंक चलती है। कभी राधा रूठकर मौन धारण कर लेती है, लेकिन यह मौन क्षणिक होता है। हम इसे विप्रलम्भ श्रृंगार नहीं कह सकते। शरद ऋतु की पूर्णिमा में जब रासलीला होती है तब राधा के मन में यह गर्व उत्पन्न हो जाता है कि वह गोपियों में सर्वाधिक सुन्दर है। कवि ने इसका सुन्दर वर्णन किया हैं। श्रीकृष्ण का प्रेम पाने के लिए गोपियां साल भर व्रत करती हैं। कृष्ण उस समय यमुना नदी के किनारे पहुंच जाते हैं और उन्हें तब वस्त्र देते है जब वे वस्त्रहीन होकर उनके सामने खड़ी होती हैं :-

"व्रत पूरन कियौ नंद कुमार। जुवतिनि के मेरे जंजार।
जप तप करि अब जनि तन गारो। तुम धरनि यै कंत तुम्हारो।"

राम लीला एक अन्य ऐसा प्रसंग है जिसके माध्यम से कवि ने राधा तथा गोपियों के साथ श्रीकृष्ण से संयोग श्रृंगार का बड़ा ही सुन्दर वर्णन किया है। शरद ऋतु की पूर्णिमा में चांदनी यमुना के तट पर चारों ओर छिटकी है। वृंदावन के कुंज में श्रीकृष्ण उतने ही रूप धारण कर लेते हैं जितनी वहां गोपियां हैं। ऐसे में प्रत्येक गोपी यह अनुभव करती है कि कृष्ण उसके साथ रासलीला कर रहे है। कवि लिखता है :-

"रस बस स्याम कीन्ही ग्वारि।
अधर रस अंचवत परस्पर संग सब ब्रजनारि।
काम आतुर भजी बाला, सवनि पुरारि आस।
इक इक ब्रजनारि इक इक आयु कियौ प्रकास।
कबहुं नृत्यत, कबहुं गावत, कबहु कोक विलास।
सूर के प्रभु रास नायक, करत सुख-दु:ख नाम।।"

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि कवि ने संयोग श्रृंगार का बड़ा ही मार्मिक चित्रण किया है। कवि ने राधा कृष्ण एवं गोपियों तथा प्रेमी-प्रेमिका के माध्यम से समस्त व्यापारों तथा क्रिया कलापों का सुन्दर वर्णन किया है। सूर का संयोग वर्णन एक क्षणिक घटना नहीं है बल्कि प्रेम, संगीतमय जीवन की एक गहरी धारा है, जिमसें अवगाहन करने वाले को दिव्य माधुर्य के अतिरिक्त और कुछ दिखाई नहीं पड़ता।

• वियोग श्रृंगार

वस्तुतः सम्पूर्ण भ्रमरगीत एक विप्रलम्ब श्रृंगार प्रधान रचना है। इसमें कवि ने विरह की समस्त दशाओं का सजीव वर्णन किया है। गोपियां कृष्ण के वियोग में दयनीय दशा को प्राप्त को जाती हैं। जो वस्तुएं कृष्ण की उपस्थिति में सुखदायक लगती थी, अब वहीं उन्हें दुखदायक लगती है। जब से कृष्ण ब्रज छोड़कर मथुरा गए हैं, तब से गोपियां निरंतर व्याकुल और व्यथित ही रहती हैं। कृष्ण और गोपियों का एक दूसरे से दूर रहना ही वियोग विप्रलम्भ श्रृंगार कहा जा सकता है।

• प्रकृति वर्णन

सूरदास का सम्पूर्ण काव्य श्रीकृष्ण से संबधित है। कवि ने कृष्ण को ब्रह्म का अवतार मानकर उनकी क्रीड़ाओं का वर्णन किया है। ब्रज कृष्ण की जन्म भूमि और क्रीड़ा स्थली है। वे ब्रज की प्रकृति में खेलकूद कर बड़े होते हैं। बाल्यावस्था से ही वे यमुना तट, वहां के लता कुंजों तथा कदम्ब वृक्षों की छाया में क्रीड़ाएं करने लगते हैं। कवि ने ब्रज के प्राकृतिक दृश्यों का ही अधिक वर्णन किया है। वे वृंदावन के महत्व का प्रतिपादन करते हुए लिखते भी हैं –

"जहां वृन्दावन आदि अजर, जहां कुंज–लता विस्तार।
तहं विहरत प्रिया– प्रीति दोऊ, निगम कुंज गुंजार।"

वृंदावन में ही कृष्ण ने गौचारण किया तथा राधा व गोपियों के साथ प्रेम क्रीड़ाएं की। उद्धव को ब्रज भेजते समय कृष्ण कहते भी हैं :–

"मित्र एक बनब सत हमारो, ताहि मिलैं सचु पावहौं।
करि–करि समाधाननिकी विधि मोकों माथौ नाइहौं।
डरपहुँ जति सहान कुंज मैं, हैं तहं के तरू भारी।
वृंदावन माहि रहति निरंहार करहुं न होति किनारौ"

इस प्रकार हम देखते है कि कवि का मन वृंदावन भूमि की प्राकृतिक छटा में ही रमा है। इसलिए सूरदास ने आलम्बन रूप में, मानवीकरण रूप में, अलांकारिक रूप में, उद्दीपन रूप में तथा भयंकर एवं कोमल रूप में ब्रज की प्रकृति का ही वर्णन किया है। प्रकृति के भयानक रूप का उदाहरण –

"महाशवत झहरावत दाशनल आयौ
घेरि चहूं ओर करि सोर, ऊधो बन धरनि आकाश चहुँयाम छायौ।।
बरन वन बांस यहश्त कुस कांस जति उड़त है भांस, अति प्रबल छयौ।
झपटि झपटन लपट फूल चटकि चटकि नवरत लटकी द्रुम–द्रुम फायौ।

• सामाजिक पक्ष

सूरदास एक लीलावादी कवि थे, अतः लोकमंगल या समाज कल्याण से उन्हें कोई सरोकार नहीं था। फिर भी अपने युग की सांस्कृतिक, सामाजिक तथा राजनीतिक परिस्थितियों से बेखबर नहीं थे। उन्होंने अपने भ्रमरगीत में अलवादियों, निर्गुण संतों का अद्वैत वादियों की अच्छी खबर ली। यही नहीं उन्होंने अपने तत्कालीन समाज में व्याप्त रूढ़ियों व कुरीतियों पर ही प्रहार किया है। कलियुग के प्रभाव का वर्णन करते समय उन्होंने जहां एक और वर्णाश्रम धर्म का धर्मपतन पर प्रकाश डाला है, वहीं दूसरी ओर धार्मिक उत्सवों और पर्वो की भी चर्चा की है। 'भ्रंमरगीत' में निर्गुणवादियों की खबर लेते हुए वे कहते हैं :–

"निर्गुन कौन देश को बासी?
मधुकर! हंसि समुझाय, सौह दै बझति सांच, न हांसी।
को है जनक, जननि को कहितयत कौन नारि, को दासी?

कैसी बरन भेस है कैसो केहि रूप में अभिलाषी।
पावेगो पुनि कियो अपनो जो रे कहैगो गानी।
सुनत मौन हवै रहयौ ठग्यौ सौ सूर सवै मति नासी।।"

• भाषा-शैली (कला पक्ष)

सूर के काल की भाषा ब्रजभाषा है। इसका कारण यह है कि सूर का जन्म स्थान, साधना क्षेत्र और उपासना क्षेत्र तीनों ही ब्रज प्रदेश के अन्तर्गत आते हैं। अत: यह स्वाभाविक था कि वे अपनी काव्य रचनाओं में ब्रज भाषा का प्रयोग करते। परन्तु सूरदास ने ब्रज भाषा को साहित्यिक माना जिसके फलस्वरूप लम्बे काल तक यह भाषा हिन्दी साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान बनाए रही। यद्यपि सूर से पहले भी ब्रजभाषा का काव्य के रूप में प्रयोग हुआ, परन्तु यह प्रयोग व्यवस्थित नहीं था। फिर भी सूरदास की भाषा उस काल विशेष में सर्वोपरि थी।

• शब्द योजना

सूर की काव्य भाषा की शब्द योजना अद्‌भुत और अनुपम हैं। इसमें कवि ने इच्छानुसार शब्दों का प्रयोग किया है साथ ही अर्थ गौरव की रक्षा भी की है। वास्तव में सूरदास शब्दों के चरित्र से पूर्णत: परिचित थे। उन्होंने तत्सम्, तदभव, देशज सभी प्रकार के शब्दों का सफल प्रयोग किया है। तत्सम् शब्दों के प्रयोग के फलस्वरूप यह भाषा साहित्यिक रूप प्राप्त कर पाई है। कवि ने तत्सम् शब्दों में पट, पीत, नागर, अम्बु, निधि, मीन, भुज, आभा, त्रास, त्रिभंग, चक्रवाक, कोख, भ्रमर आदि असंख्य शब्दों का प्रयोग किया है। परन्तु कहीं-कहीं वे तत्सम् शब्दों के साथ छेड़-छाड़ करते दिखाई देते हैं। एक उदाहरण -

"देखो भाई सुन्दरता का सागर।
बुधि-विवेक बल पार न पावत, मगन होत मत नागर।
तनु अति स्याम अगाध अंबु निधि, कटि पट पीत तरंग।
चितवन चलत अधिक उतपत, भंवर परति सब अंग।

• लोकोक्ति एवं मुहावरों का प्रयोग

सूरदास ने अपनी काव्य रचनाओं में मुहावरों तथा लोकोक्तियों का सुन्दर प्रयोग करके भ्रमरगीत का सजीव तथा प्रभावोत्पादक बना दिया है। वस्तुत: लोकोक्तियों और मुहावरों के प्रयोग से भाषा को अर्थ गौरव प्राप्त होता है और सूरदास इस तथ्य को भली प्रकार से जानते थे।

-कत तटपर गीता भारत हो निरै भूड़ के खेत।
-जैसे उड़ि जहाज को पंछी फिर जहाज यै आवै।
-वह मथुरा काजर को कोहरी जे आवें ते कारे।

• भावानुकूल भाषा

सूरदास के काव्य की भाषा भावानुकूल है। इनके प्रत्येक शब्द मन के भाव को पूरी सहजकता व स्पष्टता के साथ प्रकट करने में सक्षम है। गोपियों की विरह योजना, यशोदा का वात्सल्य श्रीकृष्ण की बाल-सुलभ जिज्ञासा आदि उनके काव्य में पूरी सहजकता के साथ प्रकट हुई है। उदाहरण के लिए गोपियों की विरहानुभूति को प्रकट करने वाली निम्न पंक्तियां है-

"ऊधौ लै चल लैं चल।
जहां से सुन्दर स्याम बिहारी, हमकौं तहं ले चल।
आवन आवन कहि गए ऊधौ, करि गए हमसौं छल।
हृदय की प्रीति स्याम जू जानत, कितिक पूरी गोकुल।

आपनु जाई मधुपुरी छाए, जहां हरे हिलि मिल।
सूरदास स्वामी मे बिछुरै, नैनानि नीर प्रबल।"

• संगीतात्मकता

सूर के गीतों में संगीत एवं अनुभूति पक्ष का उचित संतुलन बन पड़ा है। प्राय: गीतकारों में संगीत पक्ष का वैसा निर्वाह नहीं हो पाता जैसे अपेक्षा होती है। सूर के गीत संसार में संगीत को सम्यक महत्ता मिली है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल लिखते है:- "सूरसागर' में कोई राग या रागिनी छूटी न होगी इससे वह संगीत प्रेमियों के लिए बड़ा भारी खजाना है।" डॉ. मुन्शीराम शर्मा के अनुसार- "कहा जाता है कि सूर के गान ऐसे राग और रागिनियों में हैं, जिनमें से कुछ के तो लक्षण भी अब प्राप्त नहीं है।"

संस्कृतनिष्ठ तत्सम् शब्दावली को सूर ने ब्रजभाषा के सांचे में ढालकर उसमें संगीतात्मकता का पुट दे दिया है। 'शोभित' का 'सोभित' 'रेणु' को रेनु; कर देने से नाद सौदर्य को मोहक प्रभाव देखते ही बनता है। 'घुटुरून' शब्द से तालमेल स्थापित करते हुए दन्त्य वर्णो में आधिक्य और सानुनासिकता के समावेश से गेयत्व का माधुर्य निखर उठा है।

सूर ने राग रागिनियों का चयन गीतों की भावभूमि को ध्यान में रखकर किया है। 'मल्हार' वर्षा ऋतु का राग है। विरह वर्णन में सूर ने 'राग मल्हार' का उपयोग किया तो उसकी भावभूमि में हम वर्षा ऋतु को स्थित पाते हैं यथा-

"बदरिया बधन विरहिनी आई।
मारू रौर ररत चातक पिक चढ़ि नग टेर सुनाई।
दामिनि कर कखाल गहै, अरू सायाक बूंद बनाइ।।"

इस प्रकार सूर की गीति रचना का संगीत पक्ष काफी सबल है। उनमें तन्मयता और रसविभोर कर देने की क्षमता है। इतना होते हुए भी संगीतात्मकता कवित्व की सहायता ही करती है, उस पर कहीं भी अधिकार नहीं प्रदर्शित करती है। सूर का संगीत मुरली प्रसंग में भी भाव विभोर करने वाला है।

• पात्रानुकूल भाषा

सूरदास का अधिकांश काव्य श्रीकृष्ण के जीवन चरित पर आधारित है और उसमें कवि ने पात्र योजना के माध्यम से अधिकांश घटनाओं का चित्रण किया है। अत: उन्होंने पात्रों के स्वभाव, वातावरण, देशकाल आदि के अनुरूप भी काव्य भाषा का प्रयोग किया है। 'भ्रमरगीत' में गांव की अनपढ़ ग्वालिनों, गोपियों के कथन में वक्रता तो है, परन्तु वह वक्रता उनके स्वभाव व वातावरण के ही अनुरूप ढली है। निम्नपंक्तियों में स्वभाव व रूचि के अनुसार उद्धव पर व्यंग्य करती गोपियाँ है-

"ऊधौ बानी कौन ढरैगौ, तोसौं उत्तर कौन करैगौ।
या पाती के देखत ही अब, जल सावन कौ नैनल ढरैगौ।
विरह अगिनि तन जरत निसा-दिन, करहिं छुवत तुहा जौग जरैगौ।
नैन हमारे सजता हैं तारे, निरखत ही तेरो ज्ञान गरैगौ।

अत: कहा जा सकता है कि सूरदास की काव्य भाषा की रूचि परिस्थिति, मनोदशा, उनके स्वभाव आदि के अनुरूप है।

• अलंकारिक भाषा का प्रयोग

सूरदास की काव्य भाषा अलंकार से सुसज्जित है। कवि ने अपने काव्य में वस्तु विन्यास के अभाव को अलंकार योजना द्वारा पूरा कर दिया है। विशेषकर भ्रमरगीत में वागवैदग्ध्य का पुट है, इसलिए उसमें वचन वक्रता लाने के लिए अलंकारों का उचित प्रयोग किया है निम्न पंक्तियां उत्प्रेक्षा रूपक की है-

"देखियत चहुं दिसि है धन धौरे।
मानो मत मदन के हा थिपुन बलकरि बंधन तोरे।
स्यास सुलभ तन चुअत गण्डमड बरसत थोरे-थोरे।
एकत न यौन महावत हूं यै मुरत न अंकुम मोरे।"

• शब्द शक्ति और गुण

सूरदास की काव्य भाषा में तीनों शब्द शक्तियों का सफल प्रयोग देखा जा सकता है। जहां कहीं कवि भावपूर्ण स्थलों पर सहज, सरल और सुबोध भाषा का प्रयोग करता है, वहां अभिधा शब्द-शक्ति का समावेश हो जाता है।

इसी प्रकार कवि ने वचन वक्रता लाने के लिए अनेक स्थलों पर लक्षणा शब्द शक्ति का प्रयोग किया है और कुछ स्थलों पर व्यंजना शब्द शक्ति का भी प्रयोग किया है।

भ्रमरगीत में राधा-कृष्ण तथा गोपियों और कृष्ण के वियोग श्रृंगार का मार्मिक वर्णन हुआ है। इस दृष्टि से भ्रमरगीत में माधुर्य तथा प्रसाद गुणों का अधिक प्राधान्य है। परन्तु कुछ स्थलों पर ओज गुणो का समावेश हुआ है:-

क) बिनु गोपाल बैरिन भईं हुजैं।
तब वै लता लगति तन सीतल, अब भई विषम ज्वाल की पुजै।
वृथा बहति जमुना, खब बोलत, वृथा कमल-फूलानि अलि गुजैं।
पवन, पान, घनसार सजीवन, दधि सुत किरनि भानु भई भुजै।।"

ख) प्रसाद गुण-
"चरन कमल बंदो हरि-राई।
जारी कृपा पंगु गिरि लंघैं, अंधे को सब कुछ दरसाइ।
बहिरौ सुनौ गूंग पुनि बोले, रंक चले सिरछत्रा धराव।
सूरदास स्वामी करूनामय, बार-बार बंदौ तिहिं पाई।

ग) ओज गुण-
"सुनौ हौ वीर, मुष्टिक चानूर सबै, हमहिं नृप पास नहिं जान देहौ।
धरि रात्रौं हमें नहीं बूझे तम्हें, जगत मैं कहां उपहास लेहौ।
सबै यहै कैहै थली मत तुम पैहें, नंद के कुंवर दोऊ मल्ल मारे।
यहै जस लेहुगे, ज्ञान नहीं देहुगे, खोजहीं परे अब तुम हमारे।"

• शैलीगत विविधता

सूरदास ने भ्रमरगीत में विभिन्न प्रकार की शैलियों का प्रयोग किया है। वे प्रायः उद्बोधन शैली, संबोधन शैली, व्यंग्य शैली, उपालंभ शैली, वर्णनात्मक शैली तथा मनो-विश्लेषणात्मक शैली का प्रयोग करने में सिद्धहस्त हैं। यहां कुछ ऐसे उदाहरण दिए जा रहे हैं, जिनमें कवि ने विभिन्न प्रकार की शैलियों का प्रयोग किया है

क) व्यंग्य शैली
विलग जनु मानहु, ऊधौ प्यारे।
वह मथुरा काजर की कोठरि, जै आरहि, ते कारे।

ख) विवरणात्मक शैली

हम तो नंद घोष की वासी।

नाम गोपाल, जाति कुल गोपहि, गोप-गुपाल उपासी।

ग) संबोधन शैली

पथिक ! संदेशो कहियो जाय।

आवेंगे हम दोनों भइया, मैया जानि अकुलाप।

घ) मनो-विशलेषणात्मक शैली

मेरे मन इतनी सूल रही।

जे कतियां छतियां लिखि राखि, जे नंद लाल कही।

स्वयं आकलन के प्रश्न-2

1. सूरदास की भाषा की विशेषता बताओं।
2. सूरदास की एक काव्यगत विशेषता लिखिएं।

5.5 सारांश

इस प्रकार हम देखते हैं कि सूरदास ने भाववयी ब्रज भाषा का प्रयोग करके सरस काव्य की सृष्टि की है। भ्रमरगीत में शृंगार रस के वियोग पक्ष का बड़ा ही मार्मिक वर्णन हुआ है। परन्तु कुछ पद वात्सल्य रस के भी हैं।

5.6 कठिन शब्दावली

मृग- हिरन। **ढूंढै**-ढूढ़ना। **कुम्भ**- घटा। **पुजहु**-पूजा करना। **सांचा**-सच। **बिछुरै**-बिछुडना। **नागरि**-नगर में रहना। **खेलत**-खेलना।

5.7 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

स्वयं आकलन प्रश्न-1 के उत्तर

1. गुरु का महत्त्व।
2. भक्तिकाल की निर्गुण काव्य धारा।
3. रामानन्द।

स्वयं आकलन प्रश्न-2 के उत्तर

1. भावानुकूलता, संगीतात्मकता।
2. श्रीकृष्ण का चरित-चित्रण, प्रेम की प्रधानता।

5.8 सन्दर्भित पुस्तकें

1. हजारी प्रसाद द्विवेदी-सूर साहित्य।
2. हजारी प्रसाद द्विवेदी-कबीर।

5.9 सात्रिक प्रश्न

1. कबीरदास की साहित्यिक विशेषता बताओं।
2. सूरदास की साहित्यिक विशेषताओं का चित्रण करों।

*****

इकाई–6
तुलसीदास का जीवन परिचय

संरचना

6.1 भूमिका
6.2 उद्देश्य
6.3 तुलसीदास का जीवन एवं साहित्यिक परिचय
6.3.1 तुलसीदास की रचनाएं
6.3.2 साहित्यिक विशेषताएं
स्वयं आकलन प्रश्न
6.4 सारांश
6.5 कठिन शब्दावली
6.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर
6.7 संदर्भित पुस्तकें
6.8 सात्रिक प्रश्न

6.1 भूमिका

महाकवि तुलसीदास का जीवन–वृत्त पूर्णरूप से विधित नहीं है। उनके जन्म् – संवत् जन्म–स्थान, परिवार आदि को लेकर विद्वानों में मतभेद हैं। मतभेद का कारण एक तो तुलसी साहित्य का इस विषय में मौन रह जाना है, दूसरे विद्वानों का मोह और पूर्वाग्रह रहा है। जिसके तहत कुछ विद्वानों ने सामान्य सतही सूत्रों के आधर पर या तो उन्हें अपने क्षेत्र का सिद्ध करने का प्रयास किया है अथवा प्राप्त तथ्यों को मोड़–तोरोड़ अपने विश्वासों के अनुकूल बना लिया है। कदाचित यही कारण है कि तुलसीदास पर अनेकानेक उत्कृष्ट पुस्तकों के प्रकाशन के बाद भी उनका सर्वमान्य जीवन–वृत्त प्रकाश में नहीं आ पाया है।

6.2 उद्देश्य

1. तुलसीदास के जीवन का बोध।
2. तुलसीदास की रचनाओं की जानकारी।
3. तुलसीदास के साहित्य की विशेषताओं की जानकारी।
4. तुलसीदास की कविताओं में वर्णित विषय का बोध।
5. तुलसीदास के राम की जानकारी

6.3 तुलसीदास का जीवन परिचय

गोस्वामी तुलसीदास की जीवनी से सम्बद्ध सूचनाएं बहुत कम मिलती है। इन्होंने अपने बचपन के कष्टों, भयंकर गरीबी, अन्न के लिए द्वार–द्वार भटककर की जाने वाली भिक्षा वृत्ति का उल्लेख अवश्य किया है। जनश्रुति के आधर पर गोस्वामी तुलसीदास का जन्म संवत् 1589 सन् 1532 और मृत्यु संवत् 1680 सन् 1623 ई. में हुई मानी जाती है। इनके जन्म स्थल के विषय में सोरों, राजापुर और अयोध्या स्थलों की चर्चा होती है। इनकी मृत्यु संवत् 1680 में श्रावण कृष्ण तृतीया शनिवार को काशी में अस्सी घाट पर हुई थी।

• जन्म स्थान

जन्म संवत् की तरह तुलसीदास के जन्म-स्थान को लेकर विद्वानों में मतभेद है। कुछ विद्वानों ने उनके जन्म-स्थान के रूप में राजापुर का बांदा उल्लेख किया हैं तो कुछ न सोरों एटा को और कुछ ने गोंडा जिला के सरयू-घाघरा के संगम स्थल पसका या बसका के पास अवस्थित राजापुर ग्राम को तुलसीदास की जन्मभूमि के रूप में मान्यता दी है। इन तीनों स्थानों में से किसे गोस्वामी तुलसीदास का जन्म स्थान माना जाए, इसका निर्णय बड़ा कठिन है। 'मूल गोसांई-चरित' तुलसी-चरित' और 'घट रामायन' में राजापुर बांदा को ही तुलसीदास का जन्म-स्थान बताया गया है और इसे ही पंडित रामगुलाम द्विवेदी, महेशदत्त शुक्ल, रामदत्त भारद्वाज जैसे विद्वानों ने राजापुर को तुलसीदास की जन्म भूमि मानने से इन्कार कर दिया है पर जैसा कि डॉ. माता प्रसाद गुप्त ने स्वीकार किया है कि अब तक के प्राप्त साक्ष्यों के अनुसार अन्य समस्त स्थानों की तुलना में राजापुर बांदा के तुलसीदास के जन्म की संभावना अधिक है। जिन लोगों ने यह कह कर कि यदि तुलसीदास की जन्मभूमि राजापुर होती तो वे वहां कदापि नहीं जाते जहां उनके माता-पिता ने उन्हें कुटिल कीट की तरह त्याग दिया था अथवा तुलसीदास की मान्यता रहीं है- 'तुलसी तहां न जाइये, जहां जन्म कर ठाव, गुन अवगुन जाने नहीं धरै पुरानी नाव''।। किन्तु इस तर्क में कोई दम नहीं है। मातृभूमि का आकर्षण हर व्यक्ति में होता है, तभी तो 'घट रामायन' के प्रणेता हाथरस निवासी तुलसी साहब भी, जिन्होंने अपने आपको तुलसीदास का अवतार बताया है, अपने पूर्वजन्म के स्थान के रूप में राजापुर का उल्लेख करते हैं-

''राजापुर जमुना के तीरा। तहँ तुलसी का भया सदीरा।।
विधि बुदेलखंड वोहि देसा। चित्रकोट बीच दस कोसा।।''

इस संदर्भ में इतना स्पष्ट है कि अब से लगभग डेढ सौ वर्ष पूर्व भी राजापुर को तुलसीदास की जन्म-भूमि होने का गौरव प्राप्त था, और फिर जिन विद्वानों ने राजापुर को तुलसीदास का जन्म स्थान नहीं स्वीकार किया है वे भी किसी न किसी रूप में तुलसीदास का संबंध बांदा जिले के राजापुर से जोड़ते हैं। राजापुर में अभी भी गोस्वामी जी की कुटी विद्यमान है और उनके द्वारा बनवाये गए मंदिर आज भी मूकभाव से राजापुर में उनकी उपस्थिति का साक्ष्य प्रस्तुत करते हैं।

• जाति, वंश और माता-पिता

तुलसीदास का जन्म चाहे जिस संवत् और स्थान पर हुआ हो, पर इतना सुनिश्चित है कि वे जाति के सखरिया ब्राह्माण थे। यद्यपि इस विषय में भी विद्वानों का मतभेद है। मिश्रबन्धुओं जैसे विद्वानों ने उन्हें काव्यकुब्ज माना है तो प्रफांसिस बूचनन ने उन्हें काशी का सारस्वत ब्राह्मण बताया है। किन्तु विद्वानों को यह तर्क ग्राह्य नहीं हो सका है। अधिकांश विद्वान उन्हें सरयूपारीय मानते हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, विश्वनाथ प्रसाद मिश्र जैसे विद्वानों ने उन्हें सखरिया ब्राह्मण स्वीकार कर लिया हैं।

जनश्रुति के अनुसार तुलसीदास की माता का नाम हुलसी तथा पिता का नाम आत्माराम दुबे था। अन्त साक्ष्य के आधर पर उनकी माता का नाम हुलसी तो सुनिश्चित है। किन्तु उनके पिता के नाम की पुष्टि नहीं हो पाती। संभवत: तुलसीदास अपने पिता पक्ष से उदासीन थे। 'कवितावली' और 'विनय-पत्रिाका' के अनेक पदों से पता चलता है कि उनके माता-पिता ने उन्हें बचपन में ही त्याग दिया था। एक जनश्रुति के अनुसार उनका जन्म अभुक्तमूल नक्षत्र में हुआ था। 'मुहुर्त चिन्तामणि' में मूल आदि की आठ घड़ी और ज्येष्ठा के अन्त की तेरह घड़ी को अभुक्त मूल नक्षत्र कहा गया है।

मान्यता है कि इस नक्षत्र में उत्पन्न शिशु पिताघाती होता है। ऐसे शिशु को या तो परित्याग कर देना चाहिए अथवा ऐसा प्रयास करना चाहिए कि पिता शिशु के मुख को आठ वर्ष तक न देख पाये। इस कारण ही तुलसीदास के माता-पिता उन्हें जन्मते ही त्याग दिया था। 'मूल-गोसांई-चरित' में इनके परित्याग का दूसरा कारण दिया गया है। उनके अनुसार जब इनका जन्म हुआ था तो उस समय इनका डील-डौल पांच वर्ष के

बालक के सामान था और इनके मुख में बत्तीसों दांत विद्यमान थे। जन्मते ही इन्होंने राम–नाम का उच्चारण किया था। इस कारण इनके माता–पिता ने इन्हें राक्षस समझकर, इनका परित्याग कर दिया था। कारण चाहे जो भी रहा हो, पर बालक तुलसीदास का परित्याग निश्चित हुआ था। तुलसी–साहित्य में भले ही उनके पिता के रूप में कहीं आत्माराम का उल्लेख नहीं हुआ हो, पर तुलसी–विषयक अब तक जितनी भी सामग्री प्राप्त हुई है, सभी में उनके पिता का नाम आत्माराम ही बताया गया है और उन्हें पराशर गोत्रोत्पन्न पति औजा का दुबे कहा गया है।

• बाल्यकाल

बचपन में ही माता–पिता के द्वारा परित्यक्त हो जाने के कारण उनका बाल्यकाल बड़ा ही दुखदायी रहा। उन्हें पेट भरने के लिए दर–दर की ठोकरें खानी पड़ी। न जाने किस–किसके सामने उन्हें हाथ फैलाना पड़ा और न जाने किस–किससे कुअन्न को ग्रहण करना पड़ा। कभी–कभी तो किसी ने भोजन की बात तो दूर रही उनके मुख में राख तक डाली। यहां तक कि उन्होंने अपने प्राणों से भी प्रिय आत्मसम्मान के विपरित दुष्टों तक के सामने अपनी दीनता का निवेदन किया, पर किसी ने उनकी बात तक नहीं सुनी। 'कवितावली', 'दोहावली' और 'विनय पत्रिाका' की अनेक पंक्तियों में उनकी दीन दशा और जीविका के लिए किए गए संघर्ष की करूण कहानी की झाँकी मिलती है।

''मातु पिता जग जाय तज्यो बिध्हिू न लिखी कछु थाल भलाई।
नीच, निरादार–भाजन, कादर, कूकर टूकन लागि ललाई।
राम–सुभाउ सुन्यों तुलसी, प्रभु सो कह्यों बारक पेट खलाई।
स्वारथ को परमारथ को रघुनाथ सो साहब खोरि न लाई।''

जनश्रुति के अनुसार परित्यक्त तुलसीदास का पालन–पोषण उनकी माता हुलसी की दासी मुनिया ने किया था। पांच वर्ष बाद जब मुनिया भी दिवंगत हो गई तो किसी प्रकार से इनकी भेंट सूकर क्षेत्रा के रामानन्द सम्प्रदाय के साधु नरहरिदास से हो गई। तुलसी की निरीह दशा पर उनका मन पसीज गया और उन्होंने इन्हें अपनी शरण में ले लिया। उन्होंने ही इनका उप–नयन और विद्यारम्भ संस्कार कराया तथा इनका नाम रामबोला से बदलकर तुलसी कर दिया। उन्होंने बालक तुलसीदास की प्रतिज्ञा को पहचाना और जहां तक सम्भव हो सका उसे मुखरित करने का प्रयास किया। इनको लेकर वे काशी आए और इन्हें अपने मित्रा काशी के प्रसिद्ध विद्वान शेष सनातन के पास अध्ययन के लिए छोड़ दिया। गुरुभृत्य के रूप में रहकर यहीं पर उन्होंने नाना पुराण निगमागम आदि का अध्ययन किया। जनश्रुति के आधर पर सोरों समर्थकों ने इन्हें नन्ददास का भाई बताकर सनाढ्य ब्राह्मण सिद्ध करने का दुराग्रह किया था।

• नाम तथा उपाधि

तुलसीदास आज 'गोस्वामी तुलसीदास' के नाम से जाना जाता है। इसमें 'गोस्वामी' उनकी उपाधि है और 'तुलसीदास' नाम है। तुलसीदास के बचपन का नाम 'रामबोला' था। उनके इस नाम से उस जनश्रुति और बेनीमाधव दास के 'मूल गोसाँई–चरित' से उस विवरण को बल मिलता है। जिसमें कहा गया है कि जन्मते ही तुलसीदास ने 'रामनाम' का उच्चारण किया था। इस सत्यता पर यों भी विश्वास किया जा सकता है। कि कभी–कभी माता–पिता अथवा सगे सम्बंधी बच्चों की विशेष आदतों, गुणों अथवा अंगों की सुगढ़ता–अगढ़ता के आधार पर नामकरण कर दिया करते हैं। कारण चाहे जो भी रहा हो पर बचपन में तुलसीदास इसी नाम से सम्बोधित होते रहे और उन्होंने अपने इस नाम का उल्लेख अनेक पंक्तियों में किया है –

''राम को गुलाम, नाम राम बोला,
राख्यों राम काम यहै नाम दै हौं कबहु कहत हौं।''

बाद में उनके इस नाम को बदलकर नरहरिदास ने तुलसी कर दिया था जो बाद में विरक्त हो जाने पर तुलसीदास हो गया–

''नाम तुलसी, यै भोड़े भाग सों कहायो दास,
किए अंगीकार ऐसे बड़े दगाबाज को।''

• वैवाहिक जीवन और गृह–परित्याग

तुलसीदास के विवाह के विषय में अभी तक सर्वमान्य तथ्य रहा है कि उनका विवाह हुआ था। किन्तु जब से अयोध्या के श्रीयुक्त श्रीकान्त शरण जी ने अपनी पुस्तक 'श्री तुलसी चरित विमर्श' में जिन छः तर्कों के परिप्रेक्ष्य में यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि गोस्वामी जी अविवाहित थे तब से कुछ विद्वानों में तुलसी–विवाह की चर्चाएं आरम्भ हो गई है। यद्यपि जिन तर्कों के आधर पर तुलसी को अविवाहित सिद्ध करने का प्रयास किया गया है वे इतने हल्के और महत्वहीन है कि तुलसी–विवाह को लेकर प्रचलित प्रबल जनश्रुति और प्राप्त अन्त साक्ष्यों के सामने ठहर नहीं पाते।

'मूल गोसांई–चरित' के अनुसार काशी में पन्द्रह वर्षों तक अध्ययन करने के बाद जब तुलसीदास अपनी तीर्थ यात्रा के क्रम में चित्रकूट पहुंचे तो वहां उनकी भेंट महेश निवासी दीनबन्धु पाठक से हुई। कहा जाता है कि दीबन्धु तुलसीदास की वक्तव्य प्रतिभा पर मुग्ध हो उठे और जब उन्हें पता चला कि ये अविवाहित है तो उन्होंने इनके साथ अपनी पुत्री रत्नावली का विवाह कर दिया और ये राजापुर में रहकर गृहस्थ जीवन व्यतीत करने लगे। यहीं पर उन्हें तारक नामक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका अल्पायु में ही देहांत हो गया।

जनश्रुति है कि एक बार तुलसी बिना बताए रत्नावली के मायके जा पहुंचे। रत्नावली को क्षोभ हुआ। उन्होंने फटकारा और कहा –''मेरे इस हाड़–मांस के शरीर में जैसी आपकी प्रीति हैं कहीं वैसी प्रीति श्रीराम में होती तो आपका यह जीवन सार्थक हो जाता'' कहते हैं कि रत्नावली की यह बात तुलसीदास को चुभ गई और वे वहीं से विरक्त होकर निकल पड़े।

• काशी–प्रवास

रामचरितमानस की रचना के बाद तुलसीदास ने काशी को ही अपना स्थायी निवास बना दिया। उन्हें काशी से गहरा लगाव था। यहीं पर वे सकल शास्त्रों में निष्णात हुए थे। यहीं पर उन्हें पहले 'प्रेत' का और बाद में 'हनुमान' का दर्शन हुआ था। जिस के कारण बाद में चलकर उन्हें चित्रकूट में राम का दर्शन सुलभ हो सकता और यहीं पर हनुमान ने अपनी बाहु पीड़ा का निवारण किया था।

काशी में तुलसीदास को यातना भी सहन करनी पड़ी। दुष्टों ने तो हर स्थिति में उनका अहित चाहा यही नहीं उन पर प्राणघाती आक्रमण भी किया। किन्तु उनका बाल बाँका न हो सका। जब राम ही उन पर कृपालु हों तो फिर भला उनका कोई अहित कैसे कर सकता था?

''जोयै कृपा रघुपति कृपालु की बैर और के कहां सरै?
होई न बांको वार भगत को जो कोउ कोटि उपाय करै।''

• अंतिम दिन

तुलसीदास के अंतिम समय चैत्र सुदी 2 संवत् 1669 से ज्येष्ठ संवत् 1671 के बीच काशी 'मीन की सनीचरी' के प्रभाव में आ गई थी। यह स्थिति काशी और तुलसीदास दोनों के लिए घातक रही। एक ओर पूरा नगर ही महामारी की चपेट में आकर श्मशान बन गया था तो दूसरी ओर तुलसीदास बाँह की अपार पीड़ा से कराह रहे थे। आठ वर्ष की इस लम्बी महामारी की मार से लोगों का धैर्य टूट चुका था। शहर छोड़कर लोग भागने लगे थे। वाराणसी की इस दुर्दशा का 'कवितावली' में बड़ा ही सजीव चित्रण हुआ है–

संकर–सहर सर, नरनारि बारिचर,
विकल सकल महामारी माँजा भई है।
उछरत उतरात हहरात मरि जात,
भभरि भगात, जल थल मीचु मई है।।
देव न दयालु, महिपाल न कृपालुचित,
वारानासी बाढ़ति अनीति नित नई है।
पाहि रघुराज, पाहि कपिराज रामदूत,
राम हू की बिगरी तुहीं सुधरि लई है।।

कहते हैं कि तुलसीदास ने अपने तथा वाराणसी के कष्ट–निदान के लिए पवन पुत्र हुनमान को ललकारा था। 'हनुमान बाहुक' के सभी चवालीस छन्द इनकी इसी ललकार के सुफल है। 'खायो हुतो तुलसी कुरोग राढ़ राकसनि, केसरी किसोर राखे वीर बरियाई है' – इन पंक्तियों के साक्ष्य पर कहा जा सकता है कि वानर वीर ने उनकी पुकार सुनकर उन्हें पीड़ा मुक्त किया ही, पूरे वाराणसी को भी महामारी की मार से बचा लिया। तुलसीदास रोगमुक्त तो हो गए, पर उनका जीर्ण शरीर टूट चुका था। वे इसे और अधिक दिनों तक ढोना नहीं चाह रहे थे। वे रामधाम के आकांक्षी बन गए थे। उनके कल्पना–लोक में जब उनकी 'विनय पत्रिका' रामदरबार में स्वीकृत हो गई तो उन्होंने स्वस्थ चित से संवत् 1680 विक्रमी में श्रावण कृष्ण तृतीय को अपने इस पंचभौतिक शरीर का परित्याग कर दिया। उनकी मृत्यु तिथि के संदर्भ में निम्न दोहा कापफी प्रचलित है –

''संवत् सोहर सै असी, असी गंग के तीर।
श्रावण श्यामा तीज सनि, तुलसी तज्यो शरीर।।

प्रारम्भ में तुलसीदास की मृत्यु तिथि के रूप में 'श्रावण शुक्ल सप्तमी' को मान्यता प्राप्त थी और इसी दिन उनकी जयन्ती मनाने का प्रचलन हुआ और आज भी प्रचलित है। जब 'मूल गोसांई–चरित' तथा अन्य ग्रन्थों में श्रावण शुक्ल सप्तमी' के स्थान पर 'श्रावण श्यामा तीज सनि' पाठ मिल गया तो अब इसे ही तुलसीदास की मृत्यु–तिथि की मान्यता प्राप्त हो गई है। इसकी पुष्टि एक तो इस अर्थ में होती है कि तुलसीदास के मित्र टोडर के वंशज आज भी इसी तिथि पर गोस्वामी जी के वार्षिक श्राद्ध के उपलक्ष्य में ब्राह्मणों को सीधा भोज्य–सामग्री देते हैं, दूसरे चिन्तामणि भट्ट ने 'भावार्थ दीपिका' संवत् 1976 विक्रमी में श्रीधर स्वामी के भागवत की टीका पर आधारित है। इसकी प्रति नागरी प्रचारिणी सभा काशी में उपलब्ध है।

6.3.1 तुलसीदास की रचनाएं

अब तक तुलसीदास के नाम से अनेक पुस्तकें प्राप्त हो चुकी हैं। नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्टों के अनुसार ऐसी पुस्तकों की संख्या 36 है। गोस्वामी तुलसीदास का जीवन–चरित में तुलसीदास की 22 पुस्तकों की सूची दी है जिनमें से 'रामचरितमानस', रामाज्ञा प्रश्न', राम लाला नहछू, वैराग्य संदीपनी, जानकी, मंगल, पार्वती मंगल, कृष्ण गीतावली और 'हनुमान बाहुक' की पुष्टि बेनी माधव दास के 'मूल गोसांई –चरित' से हो जाती है। शेष नौ पुस्तकों की प्रामाणिकता को लेकर विद्वानों में संदेह है।

- **वैराग्य संदीपनी**

यह दोहा–चौपाई की लघु रचना है इसके तीन प्रकाशों में कुल 62 छन्द है। पहले प्रकाश में संत – स्वभाव, दूसरे में संत–महिमा, और तीसरे में शान्ति का वर्णन हुआ है ग्रन्थ का आरम्भ मंगलाचरण से किया गया है।

• बरवै रामायण

बरवै रामायण लघु आकार की एक सशक्त रचना है। 69 बरवै के इस काव्य को सात काण्डों में विभक्त किया गया है। इसके पद मैत्री से अनुमान होता है कि इसकी रचना प्रबन्धात्मक नहीं है, स्फुट है। ये बरवै इतने मधुर और मनोहर है कि पाठकों के मन को बरबस आकृष्ट कर लेते है। बरवै में वर्णित राम और जानकी का रूप-वर्णन तो और आकर्षक है। मान्यता है कि गोस्वामी जी ने बरवै लिखने का निर्णय अपने मित्र अब्दुर्रहीम खानेखाना के आग्रह पर किया था। खानेखाना का यह छन्द बड़ा प्रिय था। इसी में उन्होंने अपना नायिका-भेद लिखा है। 'बरवै' की भावभूति मूलतः श्रृंगार की है।

• पार्वती मंगल

पार्वती मंगल में शिव-पार्वती के विवाह का वर्णन किया गया है। 148 सोहर तथा 16 हरिगीतिका छन्दों में रचित यह रचना संवत् 1643 वि. में लिखी गई है। इस संवत् का अनुमान पंडित सुधाकर द्विवेदी ने 'जप संवत फागुन सुदी पांचें गुरू दिनु। अस्विनि मंगल सुनि सुख छिनु-छिनु' के आधार पर किया है कि तुलसीदास को लोकरीति और रिवाज की कितनी गहरी जानकारी थी।

• जानकी मंगल

'पार्वती मंगल' की शैली में लिखित 192 सोहर तथा 25 छन्दों की दूसरी महत्त्वपूर्ण रचना है जिसमें कवि ने राम-जानकी के विवाह और विवाह के समय संपादित रीति-रिवाजों का बड़ा मनोहारी वर्णन किया है। धनुष-यज्ञ से आरम्भ होकर यह काव्य राम-विवाह के बाद समाप्त हो जाता है। 'मानस' से इसकी भिन्नता इस अर्थ में है कि इसमें न तो राम-सीता का पूर्वानुराग दिखाया गया है, न लक्ष्मण के क्रोध के बाद राम धनुष तोड़ने उठे हैं और न धनुष-भंग के बाद परशुराम जी आते हैं। यहां धनुष-भंग करने के लिए राम तब उठते है जब जनक उनके बल पर सन्देह करते हैं।

• दोहावली

तुलसीदास के बड़े ग्रन्थों में दोहावली एक मुक्तक रचना है जिसमें 550 दोहे तथा 24 सोरठे संकलित है। इन दोहों का विषय भगवत भक्ति, भगवन्नाम धर्मोपदेश नीति और लोक व्यवहार से सम्बंधित है। इसमें संकलित दोहों और सोरठों को देखने से अनुमान होता है कि दोहावली स्वतंत्र रचना न होकर कवि की चयनित रचनाओं का संकलन है। इसमें दोहों में आधे से अधिक दोहे 'रामचरितमानस' के हैं। शेष दोहे या तो 'रामाज्ञा प्रश्न' से चयनित है अथवा- वैराग्य संदीपनी' से। ये दोहे आकर्षक होने के साथ हमारे जीवन की जटिलताओं को कम करते हैं तथा मनुष्य मात्र को मानवीय कमजोरियों से ऊपर उठने का सन्देश देते हैं।

• कवितावली

कवितावली में कवि ने अपने आराध्य राम की कीर्ति का वर्णन चारण शैली में किया है। पूरा काव्य सात काव्यों में विभक्त है। पर इसमें कथात्मकता का अभाव है। इस कारण अनुमान होता है कि इसकी रचना फुटकर रूप में हुई है और बाद में इसे क्रमानुसार संकलित कर लिया गया है। शब्द-योजना, वाक्य-योजना और दृश्य-योजना की दृष्टि से कवितावली की भूमि निश्चय ही तुलसीदास की अन्य रचनाओं से भिन्न है। शब्दों के चयन के बाद और परिवेश का पूरा ध्यान रखा गया है। परिणामतः कवि के दृश्य स्वाभाविक वातावरण का निर्माण करने में सक्षम सिद्ध हुए हैं। किन्तु 'कवितावली' का सर्वाधिक आकर्षण युग जीवन का है। रुद्रबीसी, मीन की सनीचरी और काशी में फैली महामारी का वर्णन जहाँ उनके युगीन यथार्थ को वाणी देते हैं वहीं इस बात का प्रमाण उपस्थित करते हैं कि कवि अपने वर्तमान परिवेश के प्रति कितना जागरूक और सतर्क हैं। उसे पता है, कुव्यवस्था के कारण पूरा जन-जीवन अस्तव्यस्त हो चुका है। किसानों की खेती नहीं हो पा रही है, भिखारियों को भीख नहीं मिल रही है, बणिकों का व्यापार ठप्प पड़ा है और नौकरों को नौकरी नहीं मिल पा रही है, जीविका के लिए लोग दर-दर की ठोकरे खा रहे हैं।

• गीतावली

गीतावली में भी 'कवितावली' की तरह सात काण्डों में राम-जीवन की झांकी उपस्थिति की गई है। विविध राग-रागिनियों में रचित इस रचना का फलक इतना विस्तृत और बहुआयामी है कि इसे दूसरा 'रामचरितमानस' कहा जा सकता है। रचना सौष्ठव, ललित कल्पना और भाव-विन्यास तथा जीवन की गहरी पकड़ के कारण निश्चय ही 'गीतावली' कवि की महान् रचना है। इसके प्रारम्भ में बाल-लीलाओं, मध्य में वनवासी राम की गतिविध्यिों तथा अन्त में राजा राम की कठिनाइयों तथा उन परिस्थितियों का सजीव चित्रण हुआ है।

• कृष्ण गीतावली

'कृष्ण गीतावली' कृष्ण-चरित पर आधरित 61 पदों की एक लघु रचना है। तुलसीदास प्रखर रामभक्त होने के बादभी अधिक सहिष्णु थे। उन्हें धार्मिक असहिष्णुता दूर तक भी स्पर्श नहीं कर पाई थी। उनके मन में शिव की तरह कृष्ण के प्रति अपार श्रद्धा का परिणाम उनकी 'कृष्ण गीतावली' है। गेय शैली की सीमित आकार की इस रचना में तुलसीदास ने कृष्ण लीला से संबंधित प्रायः सभी महत्वपूर्ण संदर्भों को स्पर्श करना चाहा है। कृष्ण-लीला के लालित्य को उभारने में भले ही यहाँ तुलसीदास को सूरदास की तरह सफलता न मिली हो पर यह रचना उनके कृष्ण-प्रेम और ब्रजभाषा के ऊपर उनके असामान्य अधिकार का साक्ष्य उपस्थित करती है।

• विनयपत्रिका

विनयपत्रिका तुलसीदास की अन्तिम रचना है, जिसमें समय-समय पर लिखित 279 पद संकलित है। इन पदों के माध्यम से उन्होंने अपने प्रभु का ध्यान उन कष्टों की ओर आकृष्ट किया है जिनके कारण उनका जीवन दूभर हो गया था। प्रभु को प्रसन्न करने के लिए पहले व उन देवी-देवताओं की स्तुति करते हैं जिनका प्रभु के दरबार में प्रवेश है तथा जो उनकी 'विनयपत्रिका' को स्वीकृत कराने में सक्ष्म हैं। फिर बाद में वे अपने उद्धार के लिए 'विनयपत्रिका' राम-दरबार में प्रस्तुत करते हैं, जिसे सभासदों के कहने पर राम स्वीकार कर लेते हैं।

''मारूति-मन रूचि, भरत की लखि, लखन कही है।
कलि-कालहुँ नाथ नाम सौं प्रतीति प्रीति एक किंकर की निबही है।
सकल सभा सुनि ले उठी, जानी रीति रही है।
कृपा गरीबनिवाज की, देखत गरीब को साहब बाँह गही है।।
बिहंसि राम कह्यो सत्य है, सुधि मैं हूँ लही है।
मुडित माथ नावत बनी तुलसी अनाथ की, परी रघुनाथ सही है।।''

वैसे तो यह पत्रिका तुलसीदास की निजी पत्रिका है फिर भी यह उन सभी रामभक्तों की पत्रिका है जो मर्यादित जीवन जीते हैं और जिन्होंने कभी असत्य के सामने सिर नहीं झुकाया है। लोकप्रियता की दृष्टि से यह कवि की दूसरी महत्वपूर्ण रचना है। पर किलष्ट भावों, संगठित पद रचना और संस्कृतनिष्ठ शब्दावली के कारण इसका प्रवेश आम पाठकों में नहीं हो गया है। यह विज्ञ और संस्कृत-पाठकों तक ही सीमित रह गई है। फिर भी इसे विनयपत्रिका का दोष नहीं कहा जा सकता क्योंकि यह एक महाराज को लिखी गई पत्रिका है। इसमें उच्च कोटी की शब्दयोजना और भावयोजना के साथ अति विनम्रता का होना आवश्यक था।

• रामचरितमानस

राचरिमानस तुलसी-साहित्य में ही नहीं पूरे हिन्दी साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान है। इसी के कारण तुलसीदास को प्रचुर ख्याति मिल सकी हैं। डॉ. ग्रियर्सन के अनुसार यह हिन्दुओं का बाइविल है। इसका महत्व इसी

से आंका जा सकता है कि शायद ही कोई ऐसा हिन्दू परिवार हो जहाँ रामचरितमानस की एक प्रति न हो। इसकी सोच हर एक हिन्दू की सोच है। इसमें चित्रित जीवन के आदर्श और मूल्य ही एक हिन्दू के आदर्श जीवन मूल्य होते है। हिन्दू संस्कृति में जो कुछ अच्छा है वह रामचरितमानस में उपलब्ध है। इसकी सूक्तियां, इसके दोहे और इसकी चौपाइयों में आम जीवन को अधिक प्रभावित किया है। ये प्रायः लोगों की बोलचाल की भाषा में उद्त होती रहती है।

तुलसीदास की प्रथम काव्यकृति होने के बाद भी यह इतनी प्रौढ़ तथा सुगठित है। कि इसे पहली रचना मानने में संदेह होने लगता है। एक उत्कृष्ट काव्य के लिए जितने गुण अनिवार्य हो सकते हैं उन सभी का इसमें समाहार है। कवि ने बड़े ही कौशल से विष्णु के अवतार राम के सम्पूर्ण जीवन-चरित को चार प्रमुख श्रोता-वक्ताओं के माध्यम से प्रस्तुत किया है। पूरी कथा में चरित्र इस प्रकार प्रस्तुत किए गए हैं कि वे हमारे सामने कोई न कोई आदर्श उपस्थित करते हैं और हम उन आदर्शों के कारण उन्हें पूजने लगते हैं।

6.3.2 तुलसीदास की काव्यगत विशेषताएं

• राम का स्वरूप

तुलसीदास के काव्य में राम का स्वरूप वाल्मीकि के राम से सर्वाधिक भिन्न है उनका राम ब्रह्म का अवतार है। तुलसीदास उसे मर्यादा पुरूषोतम कहकर संबोधित करते हैं। वे शील, शक्ति तथा सौंदर्य के समन्वित रूप हैं। अवतारी पुरुष होने के कारण दया के सागर, भक्त वत्सल, महादानी, विनयशील हैं। भक्तों के लिए वे सुलभ हैं। देवी-देवता भी उनके चरणें की वंदना करते है। पृथ्वी को दुष्टों के भार से मुक्त करने के लिए तथा संतजनों का उद्धार करने के लिए उन्होंने अवतार लिया। रामचरितमानस में राम-भक्ति को ही विशेष महत्व दिया गया है। उन्होंने राम को सगुण साकार और मानव रूप माना है। भले ही उन्होंने निर्गुण तथा निराकार ब्रह्म की चर्चा की है, परंतु उनके आराध्य तो केवल श्रीराम ही हैं।

• भक्ति भावना

तुलसीदास की भक्ति भावना दास्य भाव की है। परन्तु मानस में भक्ति के अनेक भाव देखे जा सकते हैं। सीता में यदि माधुर्य भाव की भक्ति है तो सुग्रीव में सख्य भाव की है। दशरथ तथा कौशल्या में वात्सल्य भाव की भक्ति देखी जा सकती है परन्तु वैराग्य संदीपिनी में तुलसीदास ने शांत भाव की भक्ति का प्रतिपादन किया है। परंतु कवि ने दास्य भाव की भक्ति को प्रमुखता प्रदान की हैं क्योंकि इस भाव की भक्ति के कारण ही भक्त भगवान से जुड़ा है। राममय होते ही भक्त निर्भय और निष्पाप बन जाता है। तुलसीदास भक्त और भगवान में सेवक और सेव्य भाव को ही स्वीकार करते हैं।

स्वयं आकलन के प्रश्न

1. तुलसीदास का जन्म कब हुआ।
2. तुलसीदास का जन्म कहा हुआ?
3. तुलसी के माता एवं पिता का क्या नाम था?
4. तुलसी की शादी किससे हुई?
5. रामचरित मानस की रचना किसने की?

6.4 सारांश

अतः कहा जा सकता है कि तुलसीदास स्वभाव से कवि थे, परन्तु कविता लिखने का संस्कार उन्हें हनुमान से मिला था और कहा भी गया है कि उनके कवि पर हनुमान की छाया थी। हनुमान ने ही उन्हें राम का दर्शन कराया था और उन्होंने ही उन्हें रामकथा लिखने के लिए प्रेरित किया था। रामकथा और रामचरित का महात्म्य ही ऐसा है कि उसका हर आस्वादक कवि बन जाता है और जो उसमें अच्छी तरह डूब जाते हैं। तुलसीदास ऐसे ही कवि थे। उनकी कविता उनके अन्तश्चेतन का सफल है।

6.5 कठिन शब्दावली

मातु–माताजी। **तज्यो**–त्यागना। **कह्यो**–कहना। **राख्यो**–रखना। **यहै**–यह। **खोरि**–कडवी बात। **अंगीकार**– स्वीकार करना।

6.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

1. 1511 ।
2. सोरो ।
3. पिजा जी आत्माराम एवं माताजी हुलसी बाई।
4. रत्नावली।
5. तुलसीदास।

6.7 सन्दर्भित पुस्तक

1. रामचन्द्र शुक्ल–गोस्वामी तुलसीदास।

6.8 सात्रिक प्रश्न

1. तुलसीदास का जीवन परिचय लिखिए।
2. तुलसीदास का साहित्यिक परिचय बताओं।
3. तुलसीदास के काव्य की विशेषता लिखिएं।

*****

इकाई–7
तुलसीदास : व्याख्या भाग

संरचना

7.1 भूमिका
7.2 उद्देश्य
7.3 तुलसीदास : व्याख्या भाग
 स्वयं आकलन प्रश्न
7.4 सारांश
7.5 कठिन शब्दावली
7.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर
7.7 संदर्भित पुस्तकें
7.8 सात्रिक प्रश्न

7.1 भूमिका

तुलसीदास हिंदी साहित्य के प्रसिद्ध कवि है। उन्होंने भगवान श्री राम की विविध बाल लीलाओं का वर्णन किया है।

7.2 उद्देश्य

1. तुलसीदास के जीवन परिचय का बोध।
2. तुलसीदास की रचनाओं का ज्ञान।
3. तुलसीदास की रचनाओं में वर्णित विषय का ज्ञान।

7.3 तुलसीदास : व्यख्या भाग

1. सवैया

अवधेस के द्वारें सकारें गई सुत गोद कै लै भूपति निकसे।
अवलोकि हों सोच बिमोचनको ठगि–सी रही, जे न ठगे धिक–से।।
तुलसी मन–रंजन रजित–अंजन नैन सुखंजन जातक से।
सजनी ससिमें समसील उभैं नवनीत सरोरूह से विकसे ।।

प्रसंग : प्रस्तुत पद्यांश हमारी पाठ्य पुस्तक 'मध्यकालीन हिदी कविता' में संकलित तुलसीदास द्वारा रचित कविता 'कवितावलीः से लिया गया है।

संदर्भ : प्रस्तुत सबैये में तुलसीदास ने अपने आराध्य भगवान श्रीराम के बालरूप के रूप सौंदर्य का वर्णन किया है।

व्याख्या : प्रस्तुत सबैये में एक सखी दूसरी सखी को संबोधित करते हुए कह रही है कि हे सखी ! मैं सुबह अयोध्या के स्वामी दशरथ के भवन द्वार पर गई उसे समय राजा दशरथ अपने पुत्र श्रीरामचंद्र को अपनी गोद में लेकर भवन से बाहर निकल रहे थे। मैं तो शौक से मुक्त करने वाले उन रामचंद्र के सौंदर्य का अवलोकन कर चकित रह गई उसे अमित सौंदर्य को देखकर जो चकित ना हो उन्हें धिक्कार है। खंजन शावक के सदृश मां को लुभाने वाले काजल लगे उनके नेत्र उसे समय ऐसे प्रतीत हो रहे थे मानो चंद्रमा में दो नवीन सामान सौंदर्य वाली नीलकमल विकसित हए हैं।

विशेष–

1. कवि तुलसीदास ने एकनिष्ठ भक्ति का चित्रण किया।
2. सहज एवं भावानुकूल अवधी भाषा का प्रयोग है।
3. अनुप्रास अलंकार का प्रयोग हुआ है।

पद 2

धूत कहाँ अवधूत कहौ, राजपूत कही, जोलहा कही कोऊ।
काहूकी बेटीसों बेटा न ब्याहब, काहूकी जाति बिगार न सोऊ ।।
तुलसी सरनाम गुलामु है रामको, जाको रुचै सो कहै कछु ओऊ।
माँगि कै खैबो, मसीतको सोइबो, लैबोको एकु न देबेको दोऊ।।

प्रसंग :

प्रस्तुत पद्यांश हमारी पाठ्य पुस्तक 'मध्यकालीन हिंदी कविता' में संकलित तुलसीदास द्वारा रचित कविता 'कवितावली' से लिया गया है।

सदर्भ : प्रस्तुत पद मे तुलसीदास ने अपने आराध्य भगवान श्रीराम के प्रति अपने ह्रदय में अनन्य भक्ति भाव का सजीव चित्रण किया है।

व्याख्या: प्रस्तुत पद में तुलसीदास ने अपने आराध्य भगवान श्रीराम के प्रति अपने ह्रदय में अनन्य भक्ति भाव का सजीव चित्रण करते हुए है कि चाहे मुझे मुर्ख कहो या अवधूत योगी कहो; चाहे राजपूत वंश का कहो या जुलाहा कहो मुझे इन नामों से कोई फर्क नहीं पड़ता। मुझे किसी की बेटी से अपना बेटा नहीं व्याहना है कि जिससे किसी की जाति में बिगाड़ पैदा हो। अर्थात् मुझे किसी से अपना कोई स्वार्थ पूरा नहीं कराना है। कवि तुलसीदास कहते है कि मैं तो पूरे संसार के स्वामी भगवान श्रीराम के दास के रूप में प्रसिद्ध हूँ। इसलिए मेरे बारे में जिसे जो भी कहना रुचता हो बड़े शौक से वह कहे। मुझे कोई फर्क नहीं पड़ता मैं तो माँगकर खाता हूँ। मदिर में जाकर सो जाता हूँ। मुझे दुनिया से न कुछ लेना है और न कुछ देना है। मैं अपनी ही धुन में मस्त हूँ।

विशेष :

1. तुलसीदास की भगवान राम के प्रति अनन्य भक्ति–भावना का चित्रण।
2. सरल, सहज एवं भावानुकूल भाषा का प्रयोग।
3. तत्सम व तद्भव शब्दों का प्रयोग।

पद 3

सून्य भीतिपर चित्र, रंग नहिं, तनु बिनु लिखा चितेरे।
धिये मिटड न मरड भीति, दुख पाइअ एहि तनु हेरे।।
रबिकर–नीर बसै अति दारुन मकर रूप तेहि माहीं।
बदन–हीन सो ग्रसै चराचर, पान करन जे जाहीं ।।
कोऊ कह सत्य, झूठ कह कोऊ, जुगल प्रबल कोउ मानै।
तुलसीदास, परिहरै तीन भम, सो आपन पहिचानै।।

प्रसंग : प्रस्तुत पद्याश हमारी पाठय पुस्तक 'मध्यकालीन हिंदी कविता' संकलित तुलसीदास द्वारा रचित कविता 'कवितावती; से लिया गया है।

संदर्भ : प्रस्तुत पद में तुलसीदास ने तुलसीदास जी ने संसार की विचित्र रचना का चित्रण किया है।

व्याख्या : प्रस्तुत पद में तुलसीदास ने संसार की रचना पर हैरानी जताते हुए कहते हैं कि हे प्रभु, हे केशव। मैं क्या कहूँ, कुछ कहा नहीं जाता, अर्थात आपके द्वारा की गई संसार की रचना मेरी समझ में ही नहीं आती। इसे रचना के संदर्भ में क्या कह सकता हूँ? अर्थात् कुछ नहीं कह सकता। है प्रभु! तुम्हारी इस सृष्टि की रचना बड़ी विचित्र है, इसे देखकर मन ही मन हैरान होता हूँ, मनुष्य इस रचना पर मुग्ध होता है परन्तु इसका वर्णन करना संभव नहीं है। तुलसीदास आगे कहते हैं कि है प्रभु ! आपके द्वारा सृष्टि रचना अत्यधिक अद्भुत है, असाधारण है। इसका आधार शून्य है। यह किसी ठोस पदार्थ से नहीं बना। इस संसार में विविध प्रकार के चित्र बनाए गये है जिसका कोई रंग नहीं है। इसको बनाने में किसी कलम का प्रयोग नहीं किया गया। कवि कह रहा है की बिना रंगों और कलम के अदृश्य चित्रकार (प्रभु) ने इस चित्र को बनाया है। प्रभु के द्वारा रचित सृष्टि हमारे मस्तिष्क में धीरे–धीरे प्रभावित करती है। मनुष्य इस माया में पड़ जाता है।

कवि कहता है कि साधारण चित्रों की तरह इसे धोकर मिटाया नहीं जा सकता अर्थात साधारण चित्रों को मिटाने से मृत्यु भय नहीं होता, वे निर्जीव होते है, परन्तु सष्टि के अदृश्य चित्रकार के द्वारा बनाए गये चित्र नष्ट होने से भय और पीड़ा रहती है। अर्थात् साधारण चित्र एक कलाकृति होती है इसलिए सुखदायक रहता है परन्तु यह सृष्टि–चित्र दुःखों से भरा होने के कारण दुखदायी है। इसे देखकर दुःख होता है।

कवि तुलसीदास कहते है कि सृष्टि के चित्र में सूर्य की रश्मियों से निर्मित एक मगरमच्छ इसमें रहता है अर्थात् मृगतृष्णा इसमें रहती है जो सूर्य किरणों से उत्पन्न भ्रम है जिसमें सूर्यकिरणें जल सी दिखती हैं। इस कृत्रिम जल में एक मगरमच्छ रहता है जो मुँह रहित होने पर भी उन सब प्राणियों को खा जाता है जो इस किरण–समूह निर्मित भ्रमपूर्ण जल को पीने आते हैं। यह मगरम मुँह रहित अर्थात् निराकर काल है जो मोहमाया का पान करने वालों को ग्रस लेता है, निगल जाता है।

गोस्वामी तुलसीदास कहते हैं कि सृष्टि का सत्य रूप क्या है? यह किसी को पता नहीं है। कोई सत्य मानता है, कोई असत्य मानता है। तुलसीदास जी कहते हैं कि इन तीनो भ्रम को त्यागकर दास्य भक्तिभाव के द्वारा ईश्वर तक पहुँचना चाहता हूं।

विशेष :

1. तुलसीदास ने सृष्टि की अद्भुतता रचना का चित्रण किया है।
2. सरल, सहज व्रजभाषा का प्रयोग।
3. तत्सम व तद्रव शब्दों का प्रयोग।

पद 5

ऐसो को उदार जग माही।
बिनु सेवा जो द्रवै दीन पर, राम सरिस कोउ नाहीं।।
जो गति जोग विराग जतन करि नहिं पावत मुनि ग्यानी।
सो गति देत गीध सबरी कहुँ प्रभु न बहुत जिय जानी ।।
जो संपति दस सीस अरप करि रावन सिव पहँ लीन्हीं।
सो संपदा विभीषन कहँ अति सकुच–सहित हरि दीन्हीं।।
तुलसिदास सब भांति सकल सुख जो चाहसि मन मेरो।
तौ भजु राम, काम सब पूरन करै कृपानिधि तेरी।।

प्रसंगः प्रस्तुत पद्यांश हमारी पाठ्य पुस्तक 'मध्यकालीन हिंदी कविता में संकलित तुलसीदास द्वारा रचित कविता 'कवितावली' से लिया गया है।

संदर्भ : प्रस्तुत पद में तुलसीदास ने कृपानिधान, अत्यन्त दयालु तथा उदार प्रभु श्रीराम की वन्दना की है।

व्याख्या : तुलसीदास जी कहते हैं कि श्रीराम के समान इस संसार में दूसरा कोई उदार नहीं है। श्रीराम इतने उदार हैं कि वे बिना सेवा किए ही दीन–दु:खियों पर द्रवित हो जाते हैं। अर्थात वे गरीबों, दीन–दुखियों की दशा को देखकर करुणामय होते है, इसलिए श्रीराम के समान दयालु संसार में दूसरा कोई नहीं है। तुलसीदास जी कहते हैं कि जो मोक्ष, मुनि और ज्ञानी लोग योग, विराग और भक्ति के अन्य उपाय करके प्राप्त नहीं कर सकते, वही मोक्ष प्रभु श्रीराम ने अपने भक्त जटायु, शबरी आदि को बड़ी सरलता से प्रदान कर दिया। कवि कहते है कि जिस सम्पति को रावण ने शिव्जी को अपने दस सिर अर्पित करके अर्थात् कठोर तप करके प्राप्त की थी, वही सम्पति प्रभु श्रीराम ने विभीषण को अत्यन्त संकोच करते हुए अर्थात् तुच्छ भेंट समझकर दे दी थी।

तुलसीदास अपने मन को संबोधित करते हुए कहते हैं कि हे मेरे मन! यदि तू हर प्रकार का सुख प्राप्त करना चाहता है तो प्रभु श्रीराम का भजन कर। प्रभु श्रीराम कृपा के सागर हैं। वे तेरे सभी कार्यों को पूर्ण कर दैंगे।

विशेष :

1. तुलसीदास ने प्रभु श्रीराम को उदार, कृपानिधि का चित्रण किया है।
2. तुलसीदास की भक्ति–भावना का चित्रण।
3. सरल, सहज ब्रज भाषा का प्रयोग।

स्वय आकलन के प्रश्न

1. तुलसीदास का जन्म कब हुआ ?
2. तुलसीदास की पत्नी का नाम लिखों।
3. रामचरितमानस की रचना किसने की ?

7.4 साराश

साराश रूप में हम कह सकते है कि तुलसीदास ने अपने काव्य में भगवन श्रीराम के बाल स्वरुप को केंद्र बिंदु बनाया है ।

7.5 कठिन शब्दावली

नसानी = नष्ट या खराब होना। **नसैहीं** = नष्ट होने दूंगा। **डसैहीं** = डंसने दूँगा। **उर** = ह्रदय । **कर** = हाथ। **सुचि** = शुद्ध । **कसैहों** = कसूँगा। मधुकर भ्रमर। **बसैहीं** = बसाऊँगा। **कंचन** = सोना। **सून्य** – शून्य। **भीति** – दीवार । **भीति** – भय, हेरे देखकर। **रविकर नीर** – सूर्य किरणों का समूह। **मकर** = मगरमच्छ । **तनु हेरे** – शरीर की ओर देखकर। **चराचर** – चेतन और जड़। **जुगल** – युगल, दोनो। **परिहरे** = त्यागकर, छोड़कर। **आपन** = अपने को। **द्रवे** = करुणा, दयाल होना। **दीन** – गरीब। **सरिस** – समान। **गति** – मुक्ति। **योग**– जोग। **बिराग** = वैराग्य ।

7.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

1. 1511 ।
2. रत्नावली ।
3. तुलसीदास ।

7.7 संदर्भित पुस्तक

1. राम चन्द्र शुक्ल – गोस्वामी तुलसीदास।

7.8 सात्रिक प्रश्न

1. तुलसीदास के काव्य की विशेषताएं लिखों ।
2. तुलसीदास की रचनाओं का परिचय बताओं ।

*****

इकाई–8
मीरांबाई का जीवन परिचय

संरचना

8.1 भूमिका
8.2 उद्देश्य
8.3 मीरांबाई का जीवन एवं साहित्यिक परिचय
8.3.1 मीरांबाई की रचनाएं
8.3.2 मीरांबाई की साहित्यिक विशेषताएं
स्वयं आकलन प्रश्न
8.4 सारांश
8.5 कठिन शब्दावली
8.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर
8.7 संदर्भित पुस्तक
8.8 सात्रिक प्रश्न

8.1 भूमिका

मीराबाई भक्तिकाल की कृष्ण भक्त कवियों में से एक भक्त कवियत्री है। उन्होंने भगवान श्रीकृष्ण को अपना आराध्य मानक साहितय की रचना की है।

8.2 उद्देश्य

1. मीरांबाई के व्यक्तित्व का बोध।
2. मीरांबाई के साहित्य का ज्ञान।
3. मीरांबाई की काव्यगत विशेषताओं का बोध।

8.3 मीराँबाई का जीवन परिचय

मीराँबाई का जन्म लगभग संवत् 1560 में हुआ है। परन्तु इनके जन्म के विषय में मतभेद पाया जाता है। मिश्र बन्धुओं ने मीरां का जन्म सवंत् 1593 माना है । जिसका आचार्य रामचन्द्र ने भी अनुसरण किया है। श्री नरोतम दास स्वामी के अनुसार मीराँ का जन्म संवत् 1555 और 1561 के बीच माना जा सकता है। इस प्रकार 1560 संवत् ही समाचीन प्रतीत होता है। मृत्यु संवत् 1630 मीरांबाई का जन्म स्थान चौकड़ी नामक गांव राजस्थान में हुआ।

• मीराँ के माता–पिता

राव दूदाजी की दो रानियों से पांच पुत्र और एक पुत्री हुई। उनके चतुर्थ पुत्र रत्नसिंह थे। मीराँ इन्हीं रत्नसिंह की पुत्री थी। मीराँ की माता के नाम के विषय में इतिहास मौन है। जयपुर के प्रसिद्ध विद्वान स्वर्गीय पुरोहित हरि नारायणजी के अनुसार 'मीराँबाई की माता का नाम बीरकुंबरि और नाना का नाम सुलतानसिंह था। ये जाति के झाला राजपूत थे और गोगूंदा गांव में ब्याहे थे।

• मीराँ का बाल्य–काल का विवाह

जैसा कि कह आए है, मीराँ राव दूदा जी की की पौत्री थी। राव दूदाजी परम धर्मात्मा व्यक्ति थे एवं वे भगवान चतुर्भुज के उपासक थे। उन्होंने मेड़ता में भगवान चतुर्भुज का एक मन्दिर भी बनवाया था जो

मेड़तिया रौठौड़ो के आराध्य है। भगत पितामह के कारण मीराँ के परिवार में धार्मिक भावनाओं का प्राधान्य स्वाभाविक ही था। यद्यपि मीराँ के शैशव काल के विषय में लोकानुश्रुतियों एवं भक्तों के अतिरंजनापूर्ण उल्लेखों के अतिरिक्त और कोई प्रामाणिक विवरण उपलब्ध नहीं होता, तथापि एक बात प्रायः अशक्य प्रतीत होती है कि मीराँ में भागवत् प्रेम के संस्कार बचपन से ही विद्यमान थे। उन्हें शैशव से ही श्री गिरिधरलाल ही इष्ट था। मीराँ को बचपन से ही कृष्ण भक्ति की ओर प्रेरित करने वाली दो घटनाओं का प्रायः उल्लेख किया जाता है। एक बार किसी बरात को देखकर मीराँ ने सहज भोलेपन से अपनी माँ से पूछा- माँ, मेरा वर कौन है? अपनी अबोध कन्या के इस अप्रत्याशित प्रश्न से अवाक् हुई माँ ने तब गिरिधरलाल की मूर्ति की ओर संकेत कर दिया। तभी से मीराँ ने मन ही मन गिरिधरलाल को अपना आराध्य मान लिया। ऐसी ही घटना उन्हें बाल्यावस्था में किसी साधु द्वारा कृष्ण की मूर्ति प्राप्त होने तथा उससे उनका सहज अनुराग हो जाने विषयक है। कृष्ण प्रेम का वही अंकुर आगे चलकर विराहाश्रुओं से सिंचित हो प्रागढ़ प्रेम-वल्लरी में परिणत हो गया। श्याम प्रेम का यह रंग मीराँ के मन पर कितना गहरा छा गया था- यह उनके इस पद से ही प्रकट है, जिसमें उन्होंने स्वप्न में गोपाल के साथ हुए अपने परिणय की कथा यों कही है:-

"माई री म्हाँने सुपने में परण गया गोपाल।
राती पीरी चूनर पहरी, मंहदी पान रसाल।
कांई करां और संग भंवर, म्हांने जग जंजाल।
मीराँ प्रभु गिरिधर न लाल सूं, करी सगाई हाल।

18 वर्ष की वय में मीराँ विवाह की वेदी पर बैठा दी गई। उसका विवाह मेवाड़ के प्रसिद्ध वीर राणा सांगा के पुत्र भोजराज के साथ बड़े समारोह के साथ सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर सैंकड़ों घोड़े, ऊंट, रथ, सुखपाल सहित प्रचुर धन द्रव्य दहेज में दिया गया। साथ ही, मीराँ के विद्या-गुरु गदाधरजी भी मीराँ के साथ चितौड़ गए। जिन्हें वहां एक बड़ी जागीर मीराँ ने निकाल दी थी। इनके वंशज गजाधर कहलाते है तथा मेड़तिया राठौड़ो के हिवानो- बदनोर और रूपाहोली में इनका विशेष मान है। उस समय शैशव से ही अपने गिरधर में अनुरक्त मीराँ के भावुक एवं कल्पनाशील मन ने यदि गिरिधर की मूर्ति भी नित्य पूजा के लिए अपने साथ ससुराल ले चलने का आग्रह किया तो कुछ अस्वाभाविक नहीं था। कुछ भक्तों ने इस घटना की आदर्श मूलक व्याख्या करने का प्रयास किया है। किन्तु इसमें तथ्य इतना ही है कि बचपन का वह कृष्णानुराग विवाह के उपरान्त भी बना रहा एवं आयु तथा जीवन की क्रूर प्रताड़नाओं के साथ वह उत्तरोत्तर पुष्ट एवं प्रगाढ़ होता चला गया।

• मीराँ के पति

मीराँ का विवाह किसके साथ हुआ इस प्रश्न को लेकर भी अनेक भ्रान्तियाँ खड़ी हो गई है। राजस्थान के प्रसिद्ध इतिहासकार एवं अन्वेषक कर्नल जेम्सटाड का अन्धानुकरण करते हुए कुछ विद्वानों ने उनका विवाह राणा कुभा से होना माना है, जो सर्वथा भ्रान्त और निराधार है। वस्तुतः मीराँ का विवाह राणा सांगा के पुत्र 'भोजराज' से ही हुआ था, जिसकी पुष्टि संत-परम्परा के उल्लेखों, साहित्यिक साक्ष्यों, ऐतिहासिक शोधों व ख्यालों के प्रमाण आदि विविध स्रोतों से होती है। उदाहरणतः संत हरिदास के पद की ये पंक्तियां द्रष्टव्य है :-

"एक राणी गढ़ चितौड़ की।
मेड़तणी निज भगति कु भावै, भोजराइजी का जोड़ा की।"

इस प्रकार रामदास लालस-कृत 'भीम प्रकाश' की हस्तलिखित पोथी, जो संवत 1856 में लिखी गई थी, के विवरण से भी इसकी पुष्टि होती है :-

"भोजराज जेठो अभंग, कुंवर पदे मृत कीध।
मेड़तणी मीरां महल, प्रेमी भगत प्रसीध।।

• मीराँ के गुरु

मीराँबाई के गुरु कौन थे? इस प्रश्न पर मतभेद हैं क्योंकि मीराँ के पदों से रैदास उनके गुरु जान पड़ते है किन्तु मीराँ और उनके समय में बहुत अन्तर है वैसे भी मीराँ सगुणोत्पादक थी जबकि रैदास निर्गुणोपासक है। हां यह हो सकता है मीराँ रैदास से प्रभावित हुई और उन्हें गुरु मान लिया। कुछ लोगों ने रैदास से स्वनदीक्षा की कल्पना भी की है।

• मीराँ की भक्ति

मीराँबाई गिरिधर को ही अपना ईश और पति मानती थी। मीराँ कहती हैं कि मेरा सच्चा पति तो गिरधर नागर है उसने स्वपन में मेरा वरण कर लिया है। मुझे गुरु गोविन्द की आन है मै और का पूजन नहीं करूंगी।

यह मतभेद बढ़ता ही गया। मीराँ की सास और नंनद ने मीराँ से साधुओं की संगत करने से मना किया। योगिनी का वाना उतारकर राजसी वस्त्र पहनने का आग्रह किया –

"भाभी बोलो बात बिचारी।
साधो की संगति दुख भारी, मानो बात हमारी।
छापातिलक ग्लहार उतारो, पहिरो हार हजारी।
रतन जड़ित आभूषण पहिरो, भोगो भोग अपारी।
मीरां जी थे चलो महल में, थां न सोगन म्हौरी।"
"कुल जो दाग लगै छै भाभी, निन्दा हो रही भारी,
साधो रे संग बन–बन भटके, लाज गयई सारी।
बड़ा घरां में जन्म लिया है, नाचो दै दै तारी।।"

मीराँ ने अपने अराध्य श्रीकृष्ण का निर्गुण और सगुण दोनों ही प्रतीकों के माध्यम से विशद् चित्रण किया है। उनके प्रियतम श्रीकृष्ण एक पक्के योगी है और योगी को प्राप्त करना बहुत कठिन है। उसे प्राप्त करने के लिए मीराँ योगिनी बन गई है और उसे ढूंढती हुई वृन्दावन और द्वारिका तक भ्रमण करती है। उसे पाने के लिए संयम, जप–तप, भजन ध्यान सदाचार त्याग, वैराग्य आदि को अपनाती है, जिससे उसका योगी उसे मिल सके। मीराँ श्रीकृष्ण को ही अपना पति मानती है यह उसका दृढ़ संकल्प है।

"मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई।
जाके सिर मोर मुकुट मेरो पति सोई।

सारी उम्र कृष्ण की भक्ति करती रही तथा कृष्ण के चरणों में समर्पित हो गई।

8.3.1 मीराँबाई की रचनाएं

मीराँ का जीवन तो उलझा हुआ है ही, उसका कृतित्व भी उतना ही उलझा हुआ है। मीराँ की कितनी व कौन–कौन सी रचनाएं हैं– यह प्रश्न भी कम विवादास्पद है। इस विवाद का कारण यह है कि मीराँ की किसी भी रचना की कोई स्वहस्तलिखित प्रति उपलब्ध नहीं हैं और न ही उनके समकालीन किसी अन्य व्यक्ति द्वारा संग्रहित उनकी रचनाओं की कोई प्रति मिली है। यहां कि कि मीराँ की पदावली की भी, जो मीराँ की एकमात्र असंदिग्ध एवं विश्वसनीय रचना मानी जाती है, कोई प्रामाणिक हस्तलिखित प्रति अद्यावधि प्राप्त नहीं हुई है, जिसमें मीराँ के पदों के विशुद्ध पाठ–निर्धारण की समस्या अभी तक बनी हुई है एवं जिसके अभाव में मीराँ के पदों की भाषा एवं उनमें अभिव्यक्त भाव–धारा के सम्बन्ध में अनेक विवाद उठ खड़े हुए है तथा अनेक भ्रांन्तियों की अनायास अवांछित पोषण मिला गया है।

सामान्यत: मीराँ द्वारा रचित मानी जाने वाली रचनाओं को, जो पूर्ण या अपूर्ण रूप से प्राप्त है, तीन भागों में वर्गीकृत किया जा सकता है–

1. **टीका ग्रन्थ**
2. **प्रबन्धात्मक रचनाएँ**
3. **स्फुट पद व अन्य मुक्तक ।**

1. टीका–ग्रन्थ

टीका–ग्रंथ के अन्तर्गत 'गीत गोविन्द की टीका' को मीराँ रचित माना जाता है, परन्तु इसका कोई विश्वस्त प्रमाण नहीं है। इस मान्यता का आधार मुन्शी देवी प्रसाद जी कृत 'महिला मृदुवाणी' में हुआ वह उल्लेख है, जिसके अनुसार महाराजा मानसिंह जी जोधपुर के राजकीय ग्रन्थासार 'पुस्तक प्रकाश' में मीराँ–रचित 'गीत गोविन्द की टीका' का होना बताया जाता है। परन्तु इसकी कोई भी पूर्ण या अपूर्ण हस्तलिखित अथवा प्रकाशित प्रति अभी तक नहीं मिली है। अत: यह मान्यता निराधार ही प्रतीत होती है। जैसा कि स्वामीजी ने लिखा है– 'सम्भवत: महाराणा कुंभा की लिखित टीका मीराँ की मान ली गई है। महाराणा कुंभा ने गीत गोविन्द पर रसिक प्रिया टीका लिखी थी, जैसा कि चितौड़ स्थित कीर्ति–स्तम्भ की प्रशस्ति में उल्लेख है–

"येनाकरि मुरारि संगति रस प्रस्यन्दिनी नन्दिनी।
वृतिव्याकृतिचातुरीभिरलुता श्रीगीतगोविन्द के।।"

अत: मीराँ एवं कुंभा के विषय में प्रचलित भ्रम के कारण (कर्नल टॉड मीराँ को राणा कुंभा की पत्नी मानने की भूल कर बैठा था) कदाचित किसी ने कुंभा को भी मीराँ से जोड़ दिया हो।

2. प्रबन्धात्मक रचनाएँ

मीराँ द्वारा रचित मानी जाने वाली प्रबन्धात्मक रचनाएँ निम्नलिखित है :–

1. **नरसीजी को मायरो (या माहेरो)**
2. **सतभानु रूसण।**
3. **रूक्मणी मंगल।**
4. **नरसी मेहता नी हुंडी।**
5. **चरीत (चरित्र)**

1. नरसीजी को मायरो

यह रचना 'नरसी रो माहेरो' नाम से भी मिलती है तथा मीराँ–रचित मानी जाती है। इसका सर्वप्रथम उल्लेख मुन्शी देवीप्रसाद कृत 'महिला–मृदृवाणी' में मिलता है। विद्वानों में इस कृति के मीराँ–रचित होने में मतभेद है। वस्तुत: आलोच्य कृति की उपलब्ध प्रतियों का परीक्षण करने तथा इसमे संग्रहीत विविध पदों की गुजराती कवि प्रेमानन्द कृत कुंवरबाईनु मामेरू के पदों से तुलना करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि यह बाद की रचना है। मीराँ रचित माने जाने वाले इस 'माहेरो' पर प्रेमानन्द की पंक्तियां की छाप पड़ी है।

2. सतभानु रूशणु

यह अस्सी चरणों की एक संक्षिप्त रचना है, जो सर्वप्रथम किसी हस्तलिखित पोथी के आधार पर बृहत् काव्य दोहान में प्रकाशित हुई थीं एवं इसे ही श्री ब्रजरत्न दास ने 'मीराँ–माधुरी' में मीराँ की रचनाओं के अन्तर्गत स्माविष्ट कर लिया था। परन्तु इसके मीराँ–रचित होने में संदेह हैं। वस्तुत: भाषा के आधार पर यह मीराँ के बाद की रचना प्रतीत होती है? इसके मीराँ रचित होने की भ्रांति कदाचित निम्न उल्लेख के कारण हो गई :–

"मीरां ने स्वामी रे भोल पधारिया रे लोल,
रनत भायाजीनां जीवन कीधा धन्य जो।।"

जैसा कि डॉ0 प्रभात ने लिखा है, जहां 'मीराँ नो स्वामी' रचयिता की छाप न होकर केवल कृष्णवाची है।

प्रबन्धात्मक रचनाओं के अन्तर्गत, नरसि महताचि हुंइि एवं 'रूक्मणी मंगल' आदि को भी मीराँ-रचित माना जाता है। परन्तु पुष्ट प्रमाणों के अभाव में इन कृतियों की प्रामाणिकता संदिग्ध है।

3. स्फुत-पद

वस्तुतः मीराँ की प्रामाणिक एवं विश्वसनीय रचनाएँ उनके स्फुत पद ही है, यद्यपि उनमें भी पद पर्याप्त संख्या में मिल गए हैं। कुछ ने जैसा कि हम कह आए हैं, अपने सम्प्रदाय विशेष को महत्व प्रदान करने की दृष्टि से तथा कुछ ने अन्य कारणों से अनेक स्व-रचित अथवा अन्य रचित पदों पर मीरां नाम की छाप लगाकर इनमें मिला लिया है, जिसके फलस्वरूप मीराँ द्वारा रचित मूल पदों को इन प्रक्षिप्त पदों से अलग करना, बड़ा कठिन हो गया है, ऐसी स्थिति में, मीरां की पदावली को एक प्रामाणिक एवं सुसम्पादित संस्करण की महती आवश्यकता है, जिसके बिना मीराँ के पदों की भाषा के स्वरूप का प्रश्न भी अनभिज्ञ ही रहेगा। इसके लिए विभिन्न परम्पराओं की उपलब्ध प्रतियों का, जिनके साथ मौखिक परम्पराएं भी जुड़ी हुई है, परीक्षण कर पाठालोचन की मान्य पद्धति के आधार पर मीराँ पदावली के सम्पादन की दिशा में प्रयास किया जाना चाहिए। तथापि, यह कार्य सम्पन्न होने तक मीराँ की मूल पदावली तथा उसके प्रामाणिक स्वरूप के विषय में कुछ आधारभूत सिद्धांत तो निश्चित किए ही जा सकते हैं हमारी समझ में उनमें दो मुख्य है, जिनको आधार मानकर ही मीरां को पदावली का विश्वसनीय एवं प्रामाणित स्वरूप निश्चित किया जा सकता है :-

1. मीराँ सगुणोपासिका थी।
2. मीराँ ने अपनी मूल पद रचना अपनी मातृगिरा तत्कालीन राजस्थानी (मारवाड़ी) में ही की थी।

इन दो तथ्यों को स्वीकार किए बिना मीरां पदावली का पाठालोचन चाहे कितना ही वैज्ञानिक विधि से क्यों न किया जाए, कभी निर्दोष एवं निविर्वाद नहीं हो सकता। प्रथम तथ्य पर हमने 'मीराँ की उपासना पद्धति' के अन्तर्गत तथा दूसरे पर 'मीराँ की भाषा' परिच्छेद के अन्तर्गत सविस्तार विचार किया है। मीरां ने पदों की प्रामाणिकता पर विचार करते समय इन दोनों आधारभूत तथ्यों को ध्यान में रखना होगा, जिनकी उपेक्षा कह हम कभी मीराँ के साथ न्याय नहीं कर सकते। पाठालोचन वस्तुतः एक साधन मात्र है। कवि की मूल वाणी तक पहुंचने का यह साध्य नहीं है। इसे साध्य मानकर तथा 'वैज्ञानिकता के नाम पर अन्य सब तत्वों परम्पराओं आदि की उपेक्षा कर किसी ग्रन्थ का सम्पादन करने से भावों की समाधि पर विद्वता के स्तूप ही खड़े होगें। जिसका ज्वलन्त उदाहरण डॉ. माता प्रसाद गुप्त द्वारा सम्पादित पृथ्वीराजरासउ हैं जिसमें स्वीकृत पाठके कारण अनेक स्थलों पर अर्थ भ्रातियां हुई है। अतः मीराँ की पदावली का सम्पादन करते समय हमें पाठालोचन की इस तथाकथित 'नवीनतम वैज्ञानिक प्रणाली' को ही पाठ निर्णय की एक मात्र कसौटी नहीं बना लेनी चाहिए।

4. मीराँ की पदावली

मीराँ ने अपनी हृदयगत अनुभूतियों को प्रेम पदों के द्वारा व्यक्त किया है। ये गेय पद लोक जीवन में बिखरे हुए हैं। मीरां की पदावली सबसे अधिक लोक प्रिय हैं। मीरां की पदावली का सम्पादन कुछ प्रमुख विद्वानों ने किया है। जिनमें ब्रजरत्नदास, नरोत्तम स्वामी, ललिता प्रसाद शुक्ल और परशुराम चतुर्वेदी प्रमुख है।

मीराँ स्मृति ग्रंथ में सुकुल जी ने हस्तलिखित प्रतियों के आधार पर मीराँ की पदावली प्रस्तुत की है। सुकुल जिन्होंने दो प्रतियों के आधार पर मीर स्मृति ग्रन्थ में मीराँ की पदावली दी है। परन्तु खेद है कि उसका उन्होंने कोई प्रमाण नहीं दिया। उनकी भाषा बिलकुल भ्रष्ट है। उसमें व्याकरण संबंधी भदी भूलों की भरमार है। इस प्रकारकी अनेक पदावलियां मिलती है। परन्तु कसौटी पर कसने पर ये खरी नहीं उतर पाती हैं। कुछ ऐसे संकलन भी देखे गये है जिनके पद भाषा और भाव की दृष्टि से मीरां के तो मेनारिया ने लिखा है कि 'मालूम पड़ता है, राजस्थानी भाषा से अनिभिज्ञ किसी व्यक्ति ने यह सारा जाल रचा है।

मीराँ की पदावली के सम्पादन में परशुराम चतुर्वेदी, नरोत्तम स्वामी और ब्रजरत्नदास की सम्मानित पुस्तकें बहुत महत्वूर्ण है। मीरां के फुटकर पदों की संख्या 200 और उसमें भी विद्वानों में बहुत मतभेद है। कुछ विद्वानों ने मीराँ के पदों की संख्या 250 तक होना बतलाया है। पुरोहित हरनारायण जी ने मीरा के पदों का संकलन किया है और उनकी राय है मीराँ के पदों की संख्या करीब 500 है। मीराँ सुधा–

सिन्धु में पदों की संख्या 2312 बतलाई गई है। इस प्रकार मीरां के पदों की निश्चित संख्या कितनी है यह बताना एक कठिन कार्य है।

मीराँ के पदों की सत्यता का पता लगाने के लिए अभी तक छान–बीन की बहुत आवश्यकता है। मीराँ के नाम को जोड़कर विभिन्न पद लोक साहित्य में प्रचालित हो गये है। कुछ विद्वान ऐसा सोचते है कि लोक प्रचलित पदों का ही संकलन कर लेना चाहिए पर वास्तव में इतना ही कर लेना काफी नहीं है। मीराँ के पदों के साथ ही साथ प्रक्षिप्त पदों की छान–बिन भी शोध का विषय हैं।

8.3.2 मीराँबाई की काव्यगत विशेषताएँ :

मीराँबाई एक भक्तिकाल की रचनाकार है उसकी भक्ति, विरह भावना हिन्दी के भक्ति काल का अनूठा संगम है। इसकी काव्यगत विशेषताएँ निम्नलिखित है।

- **प्रेम साधना**

प्रेम केवल एक शब्द का यह कैसा वृहत ग्रन्थ है। एक ही आंसू का कितना विशाल सागर हैं। ओह् एक ही दृष्टि में सांतवां स्वर्ग दिखाई दे रहा है। एक ही आंसू ने कैसा बन्दर उठा दिया है एक ही स्पर्श में यह विद्युत। एक क्षण में लाखों युग। इस महान प्रेम को आशावादी कहें या सर्वनाशात्मक? अहा ! इसी में तो आनन्द और वेदना का केन्द्रीकरण हुआ है। प्रेम शब्द कितना महत्वपूर्ण और रहस्यमय है। समस्त विश्व के कार्यो का संचालन प्रेम के माध्यम से ही होता है। प्रेम ही ईश्वर है, और ईश्वर ही प्रेम।

मीराँ के पदों में प्रेम की संयोग ओर वियोग दोनों की अवस्थाओं का सुन्दर चित्रण हुआ है। मीराँ के पदों में उनके हृदय की अनुभतियां सजीव हो उठी है। डॉ0 उदरनारायण तिवारी ने लिखा है। 'मीरां कृष्ण प्रेम की वह अलौकिक मन्दाकिनी है जिसकी प्रतिभा सामान्य मानव भावों के गंदले नालों से उमड़ायी हुई किसी भक्तिमान भारिता कन्दलिता सरिता में पाना नितान्त असम्भव है।

- **मीराँ के पदों में संयोग वर्णन**

मीराँ अपने बचपन से ही राव दूदा की निरीक्षणता में रही। राव दूदा से उन्होंने ईश्वर प्रेम का सबक सीखा। मीराँ ने बचपन से ही गिरधर नागर से प्रेम किया था। यह प्रेम केवल इस जन्म का नहीं, पूर्व संस्कारों का है। मीराँ अपने पदों में गिरधर का स्मरण करते हुए साथ ही उन्हें प्रीत पुरातन का भी स्मरण दिखाती है।

–मीराँ कूं प्रभु दरसण दज्यिा, पूरब जन्म को कोल–

–बड़े घर तालों लागा रीं, पुरबला पुन जगवां री–

–पूर्व जनम की प्रीति पुरानी, सो क्यूं छोड़ी जाय–

–मैं तो दासी थारां जनम जन्मी की ये साहब सुगण–

स्वयं आकलन के प्रश्न

1. मीरांबाई का जन्म कब हुआ?
2. मीरांबाई का जन्म कहा हुआ?
3. मीरांबांई की एक रचना का नाम लिखों।

8.4 सारांश

इस प्रकार मीराँ अपने पदों द्वारा इस भावना को व्यक्त कर देती है कि उनका और कृष्ण का सम्बन्ध केवल इस जन्म का ही नहीं है, वे जन्म-जन्मानतरों के बन्धन में बंधे हुए है।

8.5 कठिन शब्दावली

तनक = थोड़ा। **णाच्य** = नाचूगी। **दससण** = दर्शन करना। **कीथा** = किधर। **पहिरो** = पहर। **चुनर** = चुनरी।

8.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

1. 1498 ।
2. कुड़की गांव राजस्थान।
3. नरसी जी का मायरा।

8.7 सन्दर्भित पुस्तक

1. भगवान दास त्रिपाठी - मीरा का काव्य।

8.8 सात्रिक प्रश्न

1. मीरा का जीवन परिचय लिखों।
2. मीराबांई की रचनाओं का संक्षिप्त परिचय लिखों।

*****

इकाई—9
मीरांबाई : व्याख्या भाग

संरचना

9.1 भूमिका
9.2 उद्देश्य
9.3 मीरांबाई : व्याख्या भाग
स्वयं आकलन प्रश्न
9.4 सारांश
9.5 कठिन शब्दावली
9.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर
9.7 संदर्भित पुस्तकें
9.8 सात्रिक प्रश्न

9.1 भूमिका

हिंदी साहित्य की कृष्ण काव्य धारा में मीरां बाई का सर्वोच्च स्थान है। उन्होंने भगवान कृष्ण को अपना अराध्य बनाया है।

9.2 उद्देश्य

1. मीरांबाई के जीवन परिचय का बोध ।
2. मीरांबाई की रचनाओं का ज्ञान ।
3. मीरांबाई की रचनाओं में वर्णित विषय का ज्ञान ।

9.3. मीरांबाई : व्याख्या भाग

पद 1

1. **तनक हरि चितवों म्हारी ओर।**
हम चितवाँ थे चितवो णा हरि, हिवड़ों बड़ो कटोर।
म्हारी आसा चितवणि यारी, और णा दूजा दोर।
ऊभ्याँ ठाढी अरज करूँ हूँ करतों करतों भोर।
मीरा रे प्रभु हरि अविनासी, देस्यूँ प्राण अँकोर ।।

प्रसंग : प्रस्तुत पद्यांश हमारी पाठ्य पुस्तक 'मध्यकालीन हिदी कविता' में संकलित कवयित्री मीरांबाई द्वारा रचित पद में से लिया गया है।

संदर्भ : प्रस्तुत पद में कवयित्री मीरांबाई ने भगवान श्रीकृष्ण के प्रति अपनी अन्नय प्रेमभक्ति भावना का परिचय देते हुए भगवान श्रीकृष्ण को कठोर होने का उपालंभ दिया है।

व्याख्या : प्रस्तुत पद में कवयित्री मीराबाई श्रीकृष्ण को सबोधित करते हुए कहती है कि हे कृष्ण! जरा मेरी ओर भी तो देखो। मैं न जाने कब से टकटकी लगाए तुम्हारी ओर देख रही हूँ परन्तु तुम हो कि मेरी ओर देख ही नहीं रहे। अपनी इस भक्तिन की तुम उपेक्षा कर रहे हो। सचमुच तुम्हारा हृदय बहुत कठोर है, तुम्हें मुझ पर दया भी नहीं आती। कवयित्री मीरांबाई आगे कहती है कि है कृष्ण! मेरे हृदय की तो एक ही आशा है अर्थात

एक ही लालसा है कि मैं तुम्हारी स्नेह दृष्टि को पा लू। मैं तो केवल तुम्हारे प्रेम के सहारे ही जी रही हूँ। मेरी दौड़ तो तुम तक ही है, मैं और किसी के आगे हाथ नहीं पसार सकती। और किसी से प्रेम की आशा नहीं कर सकती। मीरांबाई आगे कहती है कि है कृष्ण। मैं तो न जाने कब से तुम्हारे आगे प्रार्थना करती हुई तुम्हारे दर्शन की अभिलाषा लिए खड़ी हूँ। अब तो प्रातः होने वाली है, मुझ पर दया करो और दर्शन दे दो। मीरा कहती है कि उसके प्रभु भगवान ही कृष्ण हैं जो अनश्वर हैं, अमर हैं। यह तो उनके चरणों में प्राण न्योछावर करने को भी तत्पर है।

विशेष :

1. भगवान श्रीकृष्ण के प्रति मीरा की अनन्य प्रेमाभक्ति का चित्रण।
2. सरल, सहज राजस्थानी मिश्रित ब्रजभाषा का प्रयोग।
3. अनुप्रास अलंकार का प्रयोग हुआ है।
4. गीतिशैली छंद का प्रयोग हुआ है।

2 पद

म्हाँ गिरधर आगाँ णाच्या री।
णाच णाच म्हों रसिक रिझावों, प्रीत पुरातणा जाँच्या री।
स्याम प्रीति री बाँध घूघरयाँ मोहन म्हारो साँच्याँ री।
लोक लाज कुलरा मरजादाँ जगमां णेक ण राख्या री।
प्रीतम पल छण णा बिसरावां, मीरों हरि रंग राच्याँ री।।

प्रसंग : प्रस्तुत पद्याश हमारी पाठ्य पुस्तक 'मध्यकालीन हिंदी कविता' में संकलित कवयित्री मीरांबाई द्वारा रचित पद में से लिया गया है।

संदर्भ : प्रस्तुत पद में कवयित्री मीरांबाई ने भगवान श्रीकृष्ण के प्रति अपनी अन्नय प्रेमभक्ति भावना का वर्णन किया है।

व्याख्या : प्रस्तुत पद में कवयित्री मीरांबाई ने भगवान श्रीकृष्ण के प्रति अपनी अन्नय प्रेमभक्ति भावना का वर्णन करते हुए कहती हैं कि मैं तो अपने प्रभु श्रीकृष्ण के समक्ष नाच–नाच कर उन्हें प्रसन्न करूंगी। मैं भगवान कृष्ण के प्रति अपने प्रेम की परख करूँगी। मीराबाई कहती है कि मैंने अपने प्रभु को रिझाने के लिए पैरों में घूँघरू बाँधे हुए हैं। मैं अपने प्रियतम प्रभु कृष्ण के प्रति सच्चा प्रेम करती हूँ। उनके प्रेम में किसी प्रकार का कोई छल–कपट नहीं है। मीरां कहती है कि अपने प्रियतम कृष्ण के प्रेम में लोक–लाज और कुल की मर्यादा को छोड़ चुकी हूँ। अर्थात मुझे संसार में किसी की भी कोई परवाह नहीं है। मीरा आगे कहती है कि मैं तो हर पल अपने प्रभु की छवि का ही ध्यान करती रहती हूँ जो कि मुझे पलभर के लिए भी नहीं भूलती। अर्थात् दिन रात उनकी भक्ति करती हूँ। मेरे मन रूपी मन्दिर में अपने प्रियतम भगवान श्रीकृष्ण को छवि हमेशा विराजमान रहती है। मैं तो उन्हीं के प्रेम के रंग में रंग गई हूँ। मैंने अपना सर्वस्व अपने प्रियतम के चरणों में अर्पित कर दिया है।

विशेष:

1. प्रस्तुत पद मे मीराबाई ने अपने प्रभु कृष्ण के प्रति अपनी अनन्य भक्ति–भावना का वर्णन किया है।
2. सरल, सहज राजस्थानी मिश्रित ब्रजभाषा का प्रयोग।
3. अनुप्रास अलंकारों का प्रयोग।
4. गीति शैली का प्रयोग।

3 पद

म्हारा री गिरधर गोपाल दूसरा णा कूयां।
दूसरा णां कूयां सधां सकल लोक जूंयां।
भाया छांड्यां, बंधा छांडयां, छांडयां संगा सूयां!
साधा ढग बैठ–बैठ, लोक ताज बूया।
भगत देख्या राजी हयानां, जगत देख्यां रूयां।
असवां जल सींच–सींच प्रेम बेल बूयां।
दध मध घृत काढ़ लयां डार दवा छुयां।
राजा विषरो प्याला भेज्यां, पीय मगण हूयां।
मीरां री लगण लग्यां होणा हो जो हूयां ।।

प्रसंग : प्रस्तुत पद्यांश हमारी पाठ्य पुस्तक 'मध्यकालीन हिदी कविता' में संकलित कवयित्री मीरांबाई द्वारा रचित पद में से लिया गया है।

संदर्भ : प्रस्तुत पद में मीरांबाई की भगवान श्रीकृष्ण के प्रति एकनिष्ठ कृष्ण भक्तिभावना का चित्रण किया है।

व्याख्या : प्रस्तुत पद में मीरांबाई कहती है कि मेरे सब कुछ तो गिरिधर गोपाल ही हैं। मैं उनके अतिरिक्त संसार में किसी को भी अपना नहीं मानती। वे अर्थात् मैने अपना सम्पूर्ण संसार को छोड़कर एकमात्र भगवान श्रीकृष्ण को अपना बनाया है अर्थात् उनके सिवाय संसार में मेरा कोई अपना नहीं है। मैंने उन्हें ही अपना एकमात्र स्वामी के रूप में स्वीकार किया है। मीरां कहते है कि उनके लिए मैंनें अपने भाई–बन्धु, संगे–सम्बन्धी सभी का त्याग कर दिया है। मीरां कहती है कि भगवान श्रीकृष्ण को प्राप्त करने के लिए मैं साधुओं की संगति करने लगी जिससे मेरे मन की लोक–लाज भी समाप्त हो गई है। अर्थात ईश्वर की भक्ति करने लगी। मीरां कहती है कि अपने प्रभु कृष्ण के भक्तों को देखकर मेरा ह्रदय प्रसन्नता से भर जाता है। लेकिन इस संसार के व्यवहार को देखकर मन में अत्यन्त दुःख का आभास होता है। मीराबाई कहती हैं कि मैंने अपनी प्रेम लता को अपने आँसुओं से सींच कर बढ़ाया है। अर्थात् वह अपने प्रियतम के वियोग में निरन्तर रोती रहती हैं और उनको याद करके अपने प्रेम को सुदृढ किया है। मीरांबाई कहती हैं कि मैंने दही को मथकर घी निकाला है और व्यर्थ छाछ को त्याग दिया है। अर्थात् मैंने अपने प्रभु कृष्ण के प्रति समर्पित कर दिया है। मीरां पुनः कहती हैं कि राणा ने मुझे मारने के लिए विष का प्याला भेजा था। मैंने अपने प्रियतम के प्रेम में मग्न होकर उसका भी पान कर लिया। मेरी लग्न तो एकमात्र प्रभु कृपा से लग गई है। अब मुझे किसी की कोई परवाह नहीं है। जो होना होगा हो जाएगा। मैं तो हमेशा अपने प्रियतम के रंग में रंगी हुई आनन्दित रहती हूँ।

विशेष–

1. मीरां की अनन्य भक्ति–भावना का वर्णन।
2. सरल, सहज राजस्थानी मिश्रित ब्रजभाषा का प्रयोग।
3. अनुप्रास, रूपक, अलंकारों का प्रयोग।
4. श्रृंगार रस का चित्रण।
5. गीति शैली का प्रयोग।

पद 4

मीराँ मगन भई हरि के गुण काय ।। टेक ।।
साँप पिटरा राणा भेज्यो, मीराँ हाथ दियो जाय ।

न्हाय धोय जब देखण लागी, सालिगराम गई पाय ।
जहर का प्याला राणा भेज्या, अमृत दीन्ह बनाय ।
हाथ धोय जब पीवण लागी, हो गई अमर अँचाय ।
सूल सेज राणा ने भेजी, दीज्यो मीरां सुलाय ।
सांझ भई मीराँ सोवण लागी, मानो फूल बिछाय ।
मीरों के प्रभु सदा सहाई राखे बिघन हटाय।
भजन भाव में मस्त डोलती गिरधर पर बलि जाय ।।

प्रसंग : प्रस्तुत पद्यांश हमारी पाठय पुस्तक 'मध्यकालीन हिंदी कविता' में संकलित कवयित्री मीरांबाई रचित पद में से लिया गया है।

संदर्भ : प्रस्तुत पद में मीरांबाई की भगवान श्रीकृष्ण के प्रति अनन्य कृष्ण भक्ति का वर्णन किया है।

व्याख्या : प्रस्तुत पद में मीरांबाई कहती है कि वह तो अपने कृष्ण के गुणगान में लीन रहती है। राणा जी ने पिटारी में सांप भेजा और सेवकों ने उसे मीरा के हाथ में दे दिया। स्नान आदि से निवृत्त होकर जब मैंने उसे खोलकर देखा तो वहाँ सांप की जगह शालिग्राम की मूर्ति थी। मीरांबाई आगे कहती है कि राणा ने मुझे मारने के लिए जहर का प्याला भेजा परन्तु कृष्ण ने उसे अमृत बना दिया। जब में हाथ धीकर पीने लगी तो वह अमृत बन गया। राणा ने मेरे सोने के लिए कांटों की सेज भेजी। संध्या के पश्चात् जब में उस पर सोने लगी तो कांटों के स्थान पर वह फूलों की सेज बन गई। मीरांबाई कहती है। कि प्रभु कृष्ण सदा ही उसके सहायक रहते हैं जो उसकी सारी बाधाओं को समाप्त कर देते है। अर्थात् जिस पर भगवान श्रीकृष्ण की कृपा हो उसका कोई कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता। मीरा कहती है कि मैं तो दिनरात भगवान श्रीकृष्ण का भजन करती हूँ। मेरा सम्पूर्ण जीवन अपने गिरिधर पर न्योछावर हैं।

विशेष :

1. मीरां ने कृष्ण के भक्त वात्सल्य के रूप का चित्रण किया है।
2. सरल, सहज राजस्थानी मिश्रित ब्रजभाषा का प्रयोग हुआ है।
3. अनुप्रास, रूपक, उत्प्रेक्षा अलंकारों का प्रयोग हुआ है।

पद 5

को विरहिणी को दुख जॉणै हो। । टेक ।।
जा घट विरहा सोड लखिहै, कै कोई हरिजन मानै हो।
रोगी अंतर वैद बसत है, वैद ही ओखद जॉणै हो।
विरह करद उरि अंती मांही, हरि विणि सब सुख कॉणै हो।
दुगधा आरण फिरे दुखारी, सुरत बसी सत मॉंनै हो।
चात्रण स्वाति बूंद मन मांही, पोल उकलॉणै हो।
सब जग कूड़ो कंटक दुनिया, दरघ न कोई पिछाणै हो।
मीरां के पति रमैया, दूजो नहिं कोई छॉणै हो।।

प्रसंग: प्रस्तुत पद्यांश हमारी पाठ्य पुस्तक 'मध्यकालीन हिंदी कविता' में संकलित कवयित्री मीराबाई द्वारा रचित पद में से लिया गया है।

संदर्भ : प्रस्तुत पद में मीरांबाई की भगवान श्रीकृष्ण के विरह की मार्मिकता का चित्रण किया है।

व्याख्या : प्रस्तुत पद में मीरांबाई अपने विरह की पीडा को प्रकट करती हई कहती है कि उसके विरह का दुख कोई नहीं समझ सकता। इसे तो कोई विरही ही समझ सकता है अर्थात् जिस व्यक्ति ने प्रेम किया हो वह व्यक्ति ही प्रेम में विरह की पीड़ा को समझ सकता है। मीरां कहती है कि रोगी के मन में ही वैद्य रहता है अर्थात् मेरे हृदय में ही मेरे रोगों का उपचार करने में सक्षम भगवान श्रीकृष्ण रहते हैं, फिर वैद्य के पास ही तो औषधि होती है। अर्थात् मेरे वैद्य कृष्ण है उन्हीं के पास मेरे दुख का इलाज है। मीरां आगे कहती है कि मेरे हृदय में विरह की कटारी निरन्तर चलती रहती है और कृष्ण को पाए बिना वह हृदय की पीड़ा कम न होगी। मीरांबाई कहती है कि जिस प्रकार दुधारू गाय को वन में चरने के लिए छोड़ दी जाती है लेकिन वह अपने बछड़े का ध्यान रखती है और जिसके कारण यह आराम से घास भी नहीं चर पाती, उसी तरह मैं भी सारे सुख–साधनों के रहते अपने कृष्ण के अभाव में दुखी रहती हूँ। मीरा अपने प्रेम की तुलना करते हए कहती है कि जिस प्रकार पपीहा निरन्तर स्वाति के बूंद की रट लगाये रहता है और उसे न पाने पर हर पल व्याकुल रहता है, अर्थात उसे प्राप्त करने के लिए उसका इंतजार करता है। कृष्ण बिना मेरा भी यही हाल है। अर्थात् कृष्ण बिना यह सारा संसार मेरे लिए बड़ा दुखदायी है। यह किसी के विरह की पीड़ा नहीं पहचानता। मीरा कहती है कि संसार में श्रीकृष्ण को अपना पति मान लिया है अब इस संसार में दूसरा कोई नहीं है। अर्थात् यही मेरे रक्षक हैं।

विशेष :

1. मीरा की प्रेमाभक्ति का चित्रण है।
2. सरल, सहज राजस्थानी मिश्रित ब्रजभाषा का प्रयोग।
3. गीतिशैली का प्रयोग।

पद 6

प्रभु सो मिलण कैसे होय।
पाँच पहर धन्धे में बीते, तीन पहर रहे सोय।
माणष जनम, अमोलक पायो, सौते डारयों खोय ।
मीरां के प्रभु गिरधर भजीये होनी होय सो होय ।।
माणष – मनुष्य। अमोलक – बहुमूल्य ।

प्रसंग : प्रस्तुत पद्यांश हमारी पाठ्य पुस्तक 'मध्यकालीन हिंदी कविता' में संकलित कवयित्री मीरांबाई रचित पद में से लिया गया है।

संदर्भ : प्रस्तुत पद में मीरांबाई की भगवान श्रीकृष्ण से मिलन कैसे हो सकता है? इसका चित्रण किया है।

व्याख्या : प्रस्तुत पद में मीरांबाई की भगवान श्रीकृष्ण से मिलने पर विचार करती है कि इस संसार में रहने वाले प्राणियों का प्रभु से मिलन किस प्रकार हो सकता है? वह कहती है कि मनुष्य का ईश्वर से मिलन नही हो सकता क्योंकि संसार के समस्त प्राणी के दिन के पाँच प्रहर काम–धंधा करने में व्यतीत करते है और बाकी के तीन प्रहर सोने में बीत जाते हैं। अर्थात उनके पास ईश्वर की भक्ति करने का समय ही नहीं है। अर्थात् मनुष्य का प्रभु से मिलन कैसे हो सकता है? मीरां कहती है कि हमने जो मूल्य मानव जीवन प्राप्त किया है, उसे तो हम सोते हुए ही खो रहे हैं। मीरांबाई आगे कहती है कि मनुष्य को प्रभु से मिलने का एक ही मार्ग है भजन करना।

विशेष :

1. प्रस्तुत पद में भजन के महत्व को समझाया गया है।
2. राजस्थानी मिश्रित ब्रजभाषा का प्रयोग हुआ है।

3. अनुप्रास अलंकार का प्रयोग हुआ है।

4. गीति शैली का प्रयोग हुआ है।

स्वय आंकलन के प्रश्न

1. मीरां का जन्म कब हुआ?
2. मीरां के पिताजी का नाम लिखिएँ।
3. मीरां की मृत्यु कब हुई।

9.4 सारांश

सारांश रूप में हम कह सकते है कि मीरांबाई हिंदी साहित्य में सम्प्रदाय निरपेक्ष के रूप में जाने जाते हैं। उन्होंने भगवान श्री कृष्ण पर अपना सब कुछ समर्पित किया है और श्री कृष्ण को अपना आराध्य बनाया है।

9.5 कठिन शब्दावली

तनक – तनिक, थोड़ी सी। **चितवाँ** – निगाह करो, देखो। **म्हारी** – मेरी। **हिवड़ो** – ह्रदय। **उभ्यों ठाढ़ी** – आशा में खड़ी। **भोर** – प्रातः । **देस्यूँ** – दूँगी। **म्हीं** = में। **आगाँ** – सामने। **णाच्या**– नाचूँगी। **रिनावों** – प्रसन्न करना, रिझाना। **जॉच्या** – परखना। **कुलरा** – कुल की। **मरजादाँ** – मर्यादा। **णेकण** – थोड़ी बहुत भी नहीं। **बिसरावाँ**– भुलाऊँगी। **म्हारों** – हमारा। **कूयों** – कोई। **सकल** – सारा। **सूयाँ** – सम्बन्धी । **सायाँ** – साधु। **खूयाँ** – खो दिया है। **रूयों** – रोई हूँ। **पीवण** – पीना। **बियन** – बाधा। **घट** – ह्रदय में। **औखद कॉणे** – अधूरा, व्यर्थ। **आरण** – अरण्य, वन में । **करद** – छरी, खंजर। **अरण्य** – वन में। **सुतमाने** – मन में बछड़े का ध्यान।

9.6 आकलन प्रश्नों के उत्तर

1. 1498 ।
2. राजा रतन सिह।
3. 1546।

9.7 संदर्भित पुस्तक

1. भगवान दास त्रिपाठी–मीरा का काव्य।

9.8 सत्र के प्रश्न

1. मीरां के काव्य की भाषा को स्पष्ट करें ।
2. मीरां के काव्य की विशेषताएं लिखियें।
3. मीरां का जीवन परिचय लिखों।

*****

इकाई–10
तुलसीदास और मीरांबाई की काव्यगत विशेषता

संरचना

10.1 भूमिका
10.2 उद्देश्य
10.3 तुलसीदास की काव्यगत विशेषता
 स्वयं आकलन प्रश्न
10.4 मीरांबाई की काव्यगत विशेषता
 स्वयं आकलन प्रश्न
10.5 सारांश
10.6 कठिन शब्दावली
10.7 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर
10.8 संदर्भित पुस्तकें
10.9 सात्रिक प्रश्न

10.3 तुलसीदास की काव्यगत विशेषताएं

- **भक्ति भावना**

तुलसीदास के काव्य में दास्य भक्ति भावना का चित्रण हुआ है। तुलसीदास भक्त और भगवान के बीच सेवक और सेव्य के भावन को स्वीकारते है ये कहते है कि:–

''सेवक–सेव्य भाव बिनु भव न तरिए उरगरि।''

दास्य भाव को छोड़कर भक्ति का कोई अन्य रूप मान्य नहीं है। यही कारण है कि विनयपत्रिका में उन्होंने अपनी दीनता को प्रकट किया है। इसे हम वैधी भक्ति भी कह सकते है। तुलसी के भक्ति पद्धति वेदशास्त्र तथ पुराण द्वारा समर्थित है। राम भक्ति के लिए भक्तों ने राम का नाम ऐसा जहाज है जो उन्हें संसार रूपी सागर से पार लगाता है, इसलिए कवि कहता भी है–

''राम नाम जपु राम नाम जपु, राम नाम जपु जीहा।
राम नाम नव मेह को मन हठि कोई पपीहा।।''

- **समन्वय भावना**

तुलसी का सम्पूर्ण काव्य समन्वय भावना की विराट चेष्टा है। यही कारण है कि उनके काव्य को मानवतावादी काव्य भी कहा गया है। उनके काव्य में निर्गुण और सगुण का ज्ञान, भक्ति और कर्म का, ब्राह्मण और शूद्र का वेदशास्त्र और व्यवहार का, परिवार और समाज का, विभिन्न दार्शनिक विचारधाराओं का तथा भोग और त्याग का समन्वय देखा जा सकता है। इस दृष्टि से तुलसी काव्य परम्परा मानवतावाद की स्थापना करने का प्रयास करती है। भले ही राम उनके लिए परम आराध्य हों, परंतु ये कवि अन्य देवी–देवताओं की भी स्तुति करते दिखाई देते हैं। स्वयं भगवान राम ने सेतुबंध के अवसर पर भगवान शिव की उपासना की। अपने इसी उदार दृष्टिकोण के कारण राम काव्य तत्कालीन लोगों में काफी लोकप्रिय हो गया।

• **चरित्र-चित्रण**

तुलसीदास के काव्य में राम कथा के विभिन्न पात्रों का चरित्र-चित्रण किया गया है। कवि ने श्रीराम को मर्यादा पुरुषोत्तम, शील, शक्ति के सौंदर्य का समन्वित रूप, ब्रह्म के अवतार, दुष्टों का दहन करने वाले, भक्त वत्सल तथा रक्षक के रूप में चित्रित किया है। कवि ने श्रीराम की नरलीला का जो वर्णन किया है वह बहुत ही सुन्दर, मनोवैज्ञानिक व प्रभावशाली बन पड़ा है। श्रीराम के बाल सौंदर्य का वर्णन करते हुए कवि लिखता भी है-

''सर चारिक चारू बनाई कसें कटि, पानि सरासन सायकु लै।
बन खेलत राम पिफरै मृगया, तुलसी छवि सो बरनै मिमि कै।।
अवलोकि अलौकिक रूप-मृगि चौकी चकै चितवै चित दै।
न डगै न भगै जिन जानि सिलीमुख पंचध्रे रति नायक है।''

इसी प्रकार कवि ने लक्ष्मण, भरत, सीता, गुरु वशिष्ठ, हनुमान, सुग्रीव, विभीषण, रावण आदि सभी पात्रों का मनोवैज्ञानिक चरित्र-चित्रण किया है। ये सभी पात्र सामान्य ज्ञान को न केवल प्रभावित करते हैं, बल्कि प्रेरित भी करते हैं। कवि इन पात्रों द्वारा समाज को सुदृढ़ बनाना चाहता है। रामकाव्य के विभिन्न पात्र आदर्श राजा, आदर्श पति, आदर्श पत्नी, आदर्श भाई, आदर्श सेवक, आदर्श स्वामी के रूप में चित्रित किए गए हैं। ये सभी पात्र सजीव और संवेदनशील दिखाई देते हैं। यही कारण है कि तुलसी के रामकाव्य को पढ़कर पाठक सत् मार्ग पर चलने की प्रतिज्ञा करता है।

• **प्रकृति-वर्णन**

तुलसीदास ने प्रकृति-वर्णन में भी विशेष रूचि ली है। उन्होंने संस्कृत कवियों के समान प्रकृति का सूक्ष्म निरीक्षण किया। उनका विचार था कि दृश्य चित्रण में अर्थग्रहण के साथ-साथ बिम्ब ग्रहण भी आवश्यक है। इसलिए उन्होंने प्रकृति को सियाराममय जानकर उनके प्रति अपने गूढ़ अनुराग को अभिव्यक्त किया है। राम-वन गमन प्रसंग में तो प्राय: सभी रामभक्त कवियों ने प्रकृति के विभिन्न रूपों का चित्रण किया है। यही कारण है कि राम काव्य में प्रकृति के आलम्बन रूप, उद्दीपन, उपदेशिका, इति रूप आदि का अधिक चित्रण हुआ है। प्रकृति के सूक्ष्म निरीक्षण का एक उदाहरण देखिए -

• **राम के स्वरूप का चित्रण**

तुलसीदास ने अपने काव्य का मुख्य केन्द्र बिन्दु भगवान श्री राम के आदर्श चरित्र को बनाया। उन्होंने भगवान श्रीराम के चरित्र पर 'रामचरित मानस' की रचना की है।

''जल जुत विमल सिलनि इलकत नभ वन प्रतिबिम्ब तरंग।
मानहुं जग रचना विचित्रा बिलसति विरात अंग अंग।।''

सम्पूर्ण रामचरितमानस प्रकृति सुन्दरी का क्रीड़ा स्थल है। इस काव्य में कवि ने स्थान-स्थान पर वन, पर्वत, नदी, षट्ऋतु आदि का मनोहारी चित्रण किया है। अनेक स्थलों पर कवि प्रकृति के संश्लिष्ट चित्र प्रस्तुत करता है। अयोध्या काण्ड का कामदगिरि वर्णन, अरण्यकाण्ड का पंचवटी वर्णन तथा पम्मा सरोवर कापफी आकर्षक बन पड़े हैं। इसी प्रकार किष्किंधा काण्ड का वर्षा वर्णन तथा लंका काण्ड का चन्द्र वर्णन भी काफी प्रभावशाली एवं आकर्षक बन पड़े हैं।

• **लोकमंगल की भावना**

तुलसीदास की भक्ति-भावना, लोक संग्रह अथवा लोक-कल्याण की भावना पर टिकी है। कवि समाज को अनुशासित तथा व्यवस्थित देखना चाहता था। इसलिए उन्होंने अपने अराध्य राजा श्रीराम को आदर्श राजा और आदर्श पति के रूप में चित्रित किया। उन्होंने जो बार-बार लोक कल्याण की चर्चा की है, उसके पीछे

उनकी लोक-मंगल की भावना ही निहित है, लोक मंगल के लिए सर्वत्र समन्वय की स्थापना करने का प्रयास किया है। इस संदर्भ में कवि ने राम राज्य की भी चर्चा की है। राम ने रावण पर आक्रमण तो किया परन्तु उन्होंने पर भूमि को हस्तगत नहीं किया। वे लंका का राज्य विभीषण को सौंपकर स्वयं अयोध्या लौट आते हैं। राम के इस आचरण के पीछे, लोकमंगल की भावना, देखी जा सकती हैं।

यह कारण है कि आज भी भक्तजन अपना कल्याण तथा दु:खों से छुटकारा पाने के लिए रामकथा का परायण करते हैं और यथा संभव अपने जीवन को मर्यादित होकर व्यतीत करने का प्रयास करते हैं। यह भी सच्चाई है कि अनुशासन, मर्यादा, आदर्श की स्थापना के बिना लोक-कल्याण संभव ही नहीं है।

• युगीन समस्याओं का वर्णन –

तुलसीदास तत्कालीन समस्याओं के प्रति जागरूक थे। उस समय हिन्दू समाज निर्गुण तथा सगुण की उपासना पद्धतियों में उलझा हुआ था। दूसरी ओर संत और सूफी निर्गुण उपासना पर बल दे रहे थे। मुस्लिम शासकों के अत्याचारों के कारण हिन्दू समाज संत्रस्त हो चुका था। ऐसे समय में तुलसीदास ने रामभक्ति का प्रतिपादन करते हुए हिन्दू समाज की रक्षा की। यही नहीं उन्होंने निर्गुण तथा सगुण के समन्वय पर बल दिया। एक स्थल पर वे लिखते भी हैं –

"सगुनहिं अगुनहिं नहिं कछु भेदा। गावहिं मुनि पुरान बुध्वेदा
अगुन पुरुष अलख अज जोई। भगत प्रेम बस सगुन सो होई।।"

कवि ने रामचरितमानस के उतरकाण्ड में अप्रत्यक्ष रूप से मुगल बादशाहों के अत्याचारों की ओर संकेत किया है। प्राय: राजा लोग चाटुकारों को राजदरबार में सम्मान देते थे और साधरण जनता की धन-सम्पति लूटी जा रही थी। बेरोजगारी निरंतर बढ़ती जा रही थी, न किसान के लिए खेती थी, न भिखारी के लिए भीख मिलती थी। गोस्वामी तुलसीदास ने कवितावली में इस समस्या को उठाते हुए लिखा भी है –

"खेती न किसान को, भिखारी को न भीख बलि।
बनिक को न बनिज, चाकर को न चाकरी।
जीविका विहीन लोग सीध्मान सोच बस।
कहैं एक एकन सौं कहाँ जाई, काकरी?

तुलसीदास का समय अकबर और जहाँगीर का समय था, जिसके बारे में इतिहासकारों ने बढ़-चढ़कर लिखा है लेकिन अकबर की उदारता और जहाँगीर का न्याय मात्र दिखावा था। ये दोनों बादशाह दण्ड नीति से ही शासन चला रहे थे और दण्ड के रूप अनेक थे। इनमें साम्राज्य लिप्सा की भावना इतनी तीव्र थी कि वे सामान्य जनता की भूमि को भी हस्तगत करने से बाज नहीं आते थे। 'कवितावली' में कवि ने 'भूमि चोर भूप भप' कहकर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त की थी। 'दोहावली' में कवि स्पष्ट लिखता है –

"गोड़ गंवार नृपाल महि पवल महा-महिपाल।
साम न दाम न भेद कलि केवल दंड कराल।।"

• दार्शनिक चेतना

दर्शन का सामान्य अर्थ है, देखना। परन्तु यह देखना विशेष प्रकार का होता है। अन्य शब्दों में ज्ञान प्राप्ति को ही दर्शन कहा जाता है। तुलसीदास ने अपनी रचनाओं में दर्शन के विभिन्न पक्षों पर समुचित प्रकाश डाला है। कवि ने ब्रह्मा, जीवात्मा, माया, सृष्टि तथा मुक्ति आदि के बारे में अपने मौलिक विचार व्यक्त किए है। रामचरितमानस पर द्वैतवाद तथा अद्वैतवाद का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है। कवि लिखता भी है –

"राम ब्रह्म परमारथ रूपा। अविगत अलख अनादि अनूपा।"

कवि पुराणों में वर्णित ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश को राम से अभिन्न मानता हुआ त्रिदेववाद की महिमा का गान करता है। राम भक्त कवि ब्रह्म अर्थात् राम की शक्ति को माया का नाम देते हैं। उनके अनुसार माया के दो रूप है - व्यक्त और अव्यक्त। अव्यक्त माया के लिए वे माया शब्द का प्रयोग करते हैं और व्यक्त माया के लिए सीता का। यथा -

''श्रुति सेतु पालक राम तुम जगदीश, माया जानकी''

सीता राम की आदि शक्ति हैं वही जगत का मूल है। त्रिदेव शक्तियां उनके अंश मात्रा से ही उत्पन्न हुई हैं। लेकिन शक्ति रूपी माया के उनके कार्य हैं। इसलिए रामभक्त कवि अविधा माया और विद्या माया की चर्चा करते हैं। विद्या माया राम की प्रेरणा से ही विश्व की सृष्टि करती है। यथा -

''एक दृष्टि अतिसय दुख रूपा। जा बस जीव पराभव कृपा।''

पुन: रामकाव्य में जीवन को ईश्वर का अंश माना गया है। इसलिए जो गुण ईश्वर के हैं वे जीवन में भी आ सकते हैं।

''ईश्वर अंस जीवन अविनासी, चेतन अमल सहज सुख रासी।''

मानव माया के वशीभूत होकर संसार के दु:खों को सहन करता है और कष्ट भोगता है। यही नहीं तुलसी भक्त कवि परमार्थ की तुलना में जगत् को सत्य मानते हैं। लेकिन राममय जगत को वे सत्य मानते हैं। इसलिए राम की भक्ति पर बल देते हैं। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि तुलसी काव्य की दार्शनिक चेतना पर विविध भारतीय दर्शनों का प्रभाव स्पष्ट है।

- **कला पक्ष**

कविवर तुलसीदास ने प्राय: साहित्यिक अवधी तथा साहित्यिक ब्रजभाषा का प्रयोग किया है। तुलसीदास की विनयपत्रिका, गीतावली तथा कवितावली आदि रचनाएं ब्रजभषा में रचित हैं। परन्तु 'रामचरितमानस' तथा 'जानकी मंगल' अवधी भाषा में लिखी गई हैं। परन्तु इनकी भाषाओं में भोजपुरी, बुंदेली आदि स्थानीय भाषाओं के शब्दों का भी पर्याप्त मिश्रण हुआ है। कवि ने मुहावरों तथा लोकोक्तियों का प्रयोग करके अर्थ गाम्भीर्य में पर्याप्त वृद्धि की है। दोहा, सोरठा, चौपाई, हरिगीतिका, बरवै, सवैया, कवित आदि तुलसीदास के सर्वाधिक प्रिय छंद हैं। परन्तु उल्लेखनीय बात यह है कि उन्होंने शब्द का प्रयोग बड़ा ही सटीक किया है जिससे भावाभिव्यक्ति में पर्याप्त सहायता मिली है।

तुलसीदास के वाक्य में अलंकारों का प्रयोग स्वाभाविक रूप से हुआ हैं। उन्होंने रीतिकालीन कवियों के समान अलंकार प्रयोग में अपनी विद्वता का प्रदर्शन नहीं किया। यमक, श्लेष, उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, विभावना, अन्योक्ति, उदाहरण, वृत्तांत, संदेह, समासोक्ति आदि अनेक प्रिय अलंकार हैं -

उत्प्रेक्षा - **सुनत जुगल कर माल उठाई। प्रेम विनय पहरिाहन जाई।**
सोहत जनु जलज सनाला, ससिहिं सभीत डेत जयमाला।।''

विरोधाभास - **बिनु पड चलै सुने बिनु काना। कर बिनु करम करै विधि नाना।**
आनन रहित सकल रस योगी। बिनु बानी बकता बड़ जोगी।।

सांगरूपक - **उदति उदय गिरि मंच पर रघुवर-बाल पतंग।**
विकसे संत सरोज-मन, बिकसे लोचन-भृंग।।

अत: कहा जा सकता है कि तुलसीदास ने लोक कल्याण के लिए सर्वत्र समन्वय की स्थपना करने का प्रयास किया है। वे समाज को प्रशासित, व्यवस्थित और मर्यादित देखना चाहते थे। यही नहीं कवि ने तत्कालीन परिस्थितियों और समस्याओं पर भी समुचित प्रकाश डाला है। इस प्रकार हम देखते हैं कि तुलसीदास हिन्दी साहित्य के महान् कवि कहे जा सकते हैं।

स्वयं आकलन के प्रश्न–1

1. तुलसी की काव्य की दो विशेषता लिखिए।
2. तुलसीदास की काव्य भाषा की एक विशेषता बताओं।

10.4 मीरां की काव्यगत विशेषता

• कृष्ण के प्रति प्रेम भावना

मीरांबाई बचपन से कृष्ण के नाम से प्रेम करती थी। उनके पास कृष्ण की एक सुन्दर मूर्ति थी। मीरां को कृष्ण को वह मूर्ति बहुत अधिक पसन्द आई, और हठ द्वारा उस मूर्ति को ले लिय। अब मीरां उसी की सेवा में रहने लगी। कृष्ण का वह नटनागर रूप मीराँ के हृदय में छाने लगा। वह उसके रूप, रंग और सौन्दर्य पर तन्मय होने लगीं।

मीराँ ने कृष्ण के साथ अपना मानसिक वरण कर लिया था। इस प्रकार की भावना पदों में दृष्टिगोचर होती है –

"भाई म्हाणों सुपणा माँ परण्यां दीनानाथ।
छप्पण कोटां जणा पधारयां दूल्हों सिरी ब्रजनाथ।
सुपणा मा तोरण बांध्या री सुपणा मा गहया हाथ।
सुपणा मा म्हारे परण गया पायां अचल सोहाग।
मीरां रो गिरिधर मिल्यारी, पूरब जणम रो भाग।"

मीराँ के इस मिलने में कुछ समय के लिए संकट की उपस्थिति हो गयी। मीरां की आत्मा विरह एवं वेदना के कारण तड़पने लगी धीरे–धीरे फिर आशा की किरण आने लगी । उन्हें हरि आवन की आवाज़ सुनाई देने लगी। वे उस मिलने की घड़ी के लिए बहुत बेचैनी से प्रतीज्ञा करने लगी और शीघ्र ही मानस पटल पर वह मिलन की शुभ बेला भी आ गई । इस भावना को मीराँ ने इन पदों में व्यक्त किया है :–

"जोसीड़ी णे लाख बधाया आस्यां म्हारो स्याम।
म्हारे आणंद उमंग भरमाणी जीव लहयां सुखधाम।"

मीराँ का संयोग पक्ष एक मानसिक जगत का व्यापार है। मानस पटल पर कल्पना के सहारे विभिन्न भाव चित्रों का निर्माण होता रहा है। मीराँ का प्रिय तो उसके हृदय में बसता है। अत: पाती लिखने की समस्या ही नहीं रह जाती है। मीराँ अपने प्रियतम से मानव–मंदिर में मिलती रहती थी। प्रिय के साथ तन्मय होकर मीरां सुध–बुध भूलकर गाया करती थी, नाचा करती थी और अपने मनमोहन का श्रृंगार किया करती थी। यही संयोग के सुखद क्षण मीराँ के जीवन में थे।

• विरह वेदना

विरह की अवस्था में हृदय जनित प्रेम अपने सौंदर्य को निखारता है। प्रेमचन्द जी ने लिखा है कि "सच्चा प्रेम संयोग में भी वियोग की मधुर वेदना का अनुभव करता है। वेदना की अनुभूति काव्य में अपने रूप को प्रकट करके जन–मानस को भी उसी रूप का परिचय दे देती है। प्रेम की वास्तविक अग्नि परीक्षा का समय विरह वेला ही है। विरह की अग्नि परीक्षा का समय विरह ही है। विरह की अग्नि में तपकर प्रेम अपने उज्जवल रूप को प्रगट करता है। कहा जाता है कि विरह वेदना और दुख तो नारी जीवन के नजदीक के साथ है। महादेवी वर्मा ने भी लिखा है कि "जीवन विरह का जलजात, जीवन विरह जलजात"। विरह प्रेम की गहराई की कसौटी है और जो इस परीक्षा में खरा उतरता है वही सच्चा प्रेमी है। संयोग के समय तो वे इतने तन्मय होते हैं कि किसी अन्य वस्तु की उन्हें चिन्ता ही नहीं रहती हैं वियोग के क्षणों में संयोग की स्मृतियाँ वेदना को और भी अधिक तीव्र कर लेती हैं। विरह साहित्यकार की निधि है।

साहित्य के विरह के प्रमुख चार भेद माने गए हैं उन्हें हम सुविधा की दृष्टि से इस प्रकार प्रस्तुत कर सकते है- पूर्वराग, मान, प्रवास और करूण।

पूर्व राग में श्रवण दर्शन आदि से नायिका या नायक का अनुरक्त होना। उसके पश्चात देखने, मिलने आदि की तीव्र आकांक्षा उत्पन्न हो जाती है। मीरां कृष्ण के साथ अपना जन्म-जन्मान्तरों का संबंध मानती है। अतः अपने प्रियतम से मिलने के लिए उसके हृदय में अभिलाषा का जगना स्वाभाविक है। वह चाहती है कि उसका 'प्रियतम उसके सामने ही रहे। मीराँ कहती है कि -

"पिया म्हारे नैणा आगा रहज्यो जी।
नैणां आगां रहज्यों म्हाणे भूल णो जाज्यों जी।।
बस्या म्हारे णोणन माँ नन्दलाल।।"

मीराँ कृष्ण को प्रतिक्षण अपनी आंखों के सामने ही रखना चाहती है। इस अभिलाषा की संतुष्टि न होने से मीराँ हृदय में विरह वेदना तीव्र उठती है। पूर्वानुराग के प्रथम चरण में ही विरह का आभास दृष्टिगोचर होने लगता है। परशुराम चतुर्वेदी के शब्दों में-"उनके पूर्वानुराग में मधुर आकर्षण, स्नेहसिक्त लगाव अपूर्व उलझन एवं दृढ़ निश्चय के भाव है। उनके हृदय में भी श्रीगिरिधर लाल के प्रति जो मधुर रति हैं वहीं, उनके पदों में प्रदर्शित विभाव, अनुभावादि द्वारा क्रमशः परिपुष्ट, होकर क्रमशः मधुर रस का रूप ग्रहण करती हुई दिखाई पड़ती है।

मान जनित विरह की अवस्था में जब नायक-नायिका शारीरिक रूप में तो एक दूसरे के समीप ही होते हैं। पर रूठ जाने के कारण मानसिक दृष्टि से एक दूसरे से दूर तक होते हैं। मीराँ के काव्य में इस प्रकार का विरह नहीं मिलता है।

विरह का सर्वोत्तम प्रकार प्रवास माना गया है। इस अवस्था में दोनों में से एक बाहर चला जाता है और दूसरा उसके विरह में व्याकुल हो उठता है। साहित्य में विरह के इसी रूप का सबसे अधिक चित्रण हुआ है। इसमें शारीरिक और मानसिक दोनों प्रकार के विरह को अधिक प्रस्तुत किया जाता है। मीराँ के पदों में भी दोनों प्रकार की अवस्थाओं का सुन्दर चित्रण हुआ है। शाीरिक अवस्था के सम्बन्ध में मीरां लिखती है कि "पानी ज्यूं पीली पड़ी रे लोग कहयां पिंडवाय।" साथ ही मानसिक चिन्तन की वेदना कह उठती है। "प्रभु जी काहां गया मेहड़ा लगाय" तो उस विरह की वेदना पाठक को भी द्रवीभूत कर देती है।

विरह का चौथा प्रकार करूण माना जाता है। यह वह अवस्था होती है। जब दोनों में से एक की मृत्यु हो जाती है। मीराँ के प्रियतम गिरधर तो अविनासी है। अतः उनके मृत्यु का प्रश्न ही नहीं उठता। अतः मीरां के काव्य में करूण का रूप दिखाई नहीं देता है।

- **भक्तिभावना**

हिन्दी साहित्य कोश के अनुसार- भक्ति शब्द की उत्पति 'यज धातु से हुई है, जिसका अर्थ भजना है। भजन भक्तिः भज्यते भल्या इति भक्तिः भजन्ति अनया इति भक्ति -इत्यादि भक्ति शब्द की व्युत्पतियां की जा सकती है। ईश्वर के प्रति अनन्य प्रेम एवं श्रद्धा का नाम ही भक्ति है।

- **मीराँ के पदों में निर्गुण भक्ति**

मीराँ के कुछ पदों में निर्गुण ब्रह्म का वर्णन आता है। मीराँ का वह बोलना अविनासी है जिसके साथ मीराँ का सच्चा प्रेम है। पंचरंग चोला पहन कर अविनासी ब्रह्मा के साथ झिरमिट खेलना ओर उसी के रंग में रंग जाना मीरां को प्रिय लगता है। उस प्रियतम से मिलने के लिए मीराँ 'अगम देश' की जहां काल तक का गम नहीं है। यथा -

"अबिनासी सुं बालबां हे, जिनसूं सांची प्रीति।
मीराँ कूं प्रभु मिल्या है, एही भगति की रीति।।"

मीराँ का वह प्रियतम जोगी बड़ा ही निष्ठुर है। मीराँ उसका इंतजार करती है और वह नगर में आकर भी रम गया है। इसलिए मीराँ कहती है कि जोगिया से प्रीत करने से ही दुख होता है। इस दुख का मूल कारण ही प्रीति करना है। वह जोगी आसन माड़ कर अडिग होकर बैठा था एक दिन मंझधार में ही छोड़कर चला गया। यथा–

"जोगिया जी निसदिन जोऊं बाट।। टेक।।
पांव न चालै पंथ दूहेलो, आड़ा औधड़ घाट।।
नगर आई जोगो रम गया रे, मो मन प्रीत न पाइ।"

अत: मीराँ कहती है कि अब जोगी की प्रीति पर भरोया कैसे करें। वह धतूरा जोगी से भी करबद्ध प्रार्थना करती है। वह रमईया को अपने प्रेम की स्थिति स्पष्ट कर देती है। मीराँ के पदों में साम्प्रदायिक दृष्टिकोण कहीं पर भी नहीं दिखाई देता। उनका तो केवल एक ही उद्देश्य था और वह था कृष्ण की अराधना।

• मीराँ के पदों में सगुण भक्ति

मीराँ के पदों में सगुण भक्ति की ही प्रधानता है। मीराँ के प्रियतम सदैव उसकी आँखों के सामने सगुण रूप में ही विद्यमान रहते हैं। मीराँ उनकी मोहनी मूर्ति और सांवरी सूरत पर मुग्ध हो चुकी थी। यथा –

"मोहण मूरत सांवरा सूरत ठोणा वण्या विशाल।
अधर सुधारस मुरली राजां उर वैजन्ती माल।।"

मीराँ ने उनकी इस छवि का वर्णन कई पदों में किया है। वे कृष्ण की विविध चेष्टाओं का भी वर्णन करती है। वह कृष्ण स्पष्ट ही नंदनंदन है। मीरां अपने प्रियतम कृष्ण को सभी भांति से प्रसन्न रखना चाहती है। वह उसे आगे नृत्य करती है। उसको रिझौती रहती है। मीराँ ने अपने आपको ही कृष्ण की सेवा में समर्पित कर दिया, अब कृष्ण की इच्छा पर निर्भर करता है कि वह जो चाहे जो करें। इस प्रकार मीराँ ने सगुण भगवान श्री कृष्ण को सम्बोधित करके ही ये पद लिखें है। इस प्रकार मीराँ के काव्य में नवधा भक्ति के प्रमुख नौं सौपान है –श्रवण, कीर्तन स्मरण, पादसेवनम्, अर्चन दास्यसाख्य से सदा श्रवण किया करती है थी। सत्संग के कारण ही "साधा ढिंग बैठ बैठ लोक लाज खूयां" उन्हें बदनाम भी होना पड़ा था।

मीराँ के पदों में कृष्ण के दोनों ही रूपों की चर्चा मिलती है। पर मीराँ का लक्ष्य तो उस गिरधारी को किसी न न किसी तरह पा लेना था। मीरां उसी के लिए युग के साथ संघर्ष करने को भी प्रस्तुत है। युग चिन्तन का प्रभाव भी हमें मीराँ के पदों में स्पष्ट लक्षित होता है। मीराँ की मन: स्थिति के अनुरूप ही कृष्ण का रूप भी मानस पटल पर विविध रूप धारण करता है पर सर्वाधिक प्रभावशाली कृष्ण का सगुण रूप ही रहा जिसके रूप–लावण्य पर मीराँ मुग्ध होकर अपने आपको भूल जाती थी और मैं और तू का अन्तर समाप्त हो जाता था।

• प्रकृति चित्रण

मानव और प्रकृति का बहुत गहरा सम्बन्ध है प्रकृति के खुले प्रांगण में ही मानव जीवन का विकास हुआ है। प्रकृति ने ही जीवन आगे बढ़ने की प्रेरणा दी। प्रकृति से मनुष्य ने कुछ सिखा है। प्रकृति मानव को सबसे अधिक प्रभावित करती है अत: जब साहित्यकार साहित्य का सृजन प्रारम्भ करता हैं तो जाने अनजाने में ही प्रकृति की चर्चा उसकी रचनाओं में आ जाती है। प्रत्येक साहित्यकार की रचना में प्रकृति की चर्चा अवश्य मिलेगी। मीराँ के साहित्य का अध्ययन करने से हमें उसमें प्रकृति चित्रण सम्बन्धी कुछ पद प्राप्त होते हैं। उन पदों के आधार पर हम मीराँ के साहित्य में प्रकृति चित्रण की चर्चा करेगें।

मीराँ के साहित्य सृजन का मूला उद्देश्य कृष्ण की अराधना ही था। कृष्ण मीरां के प्रियतम और परमेश्वर सब कुछ हैं। मीराँ अपने प्रियतम से मिलना चाहती है। मिलन में एक तरफ तो बाधा उपस्थित होती है और दूसरी तरफ प्रकृति विरहणी की वेदना को और तीव्र कर देती हैं। आर्वे की डाली पर कोयल पंचम स्वर में अलापती है और उधर विरहवी की वेदना तीव्रतम हो उठती हैं। सावन का महिना आ गया है और आकाश में बिजलियां चमकने लग गई है। ऐसे ही समय में आकाश में काले बादल मंडराने लगे है :-

"मतवारो बादर आए, रे हरि को सनेसो कबहुं न लायो रे।
दादर मोर पपइया बोले, कोयल सबद सुनाया रे।।
इक कारी अंधिकारी बिजली चमके, विरहणि अति डरपाये रे।
इरू गाजै पवन मधुरिया, मेहा अति झड़ लायो रे।।
इक कारी नाग विरह अति जारी, मीरां मन हरि भाये रें।"

इन बादलों से विरहणी को आशा थी कि ये कभी न कभी हरि का संदेश लाएंगे पर अब तो आशा का क्या करें। बादलों को देखकर दादर, मोर, पपिइया और कोयल आदि बोलने लगी है। आकाश में काली बिजलियां चमकती हैं और बदलों की गर्जना से विरहणी की व्यथा और भी बढ़ जाती है। कालिदास ने मेघदूत यज्ञ के विरह की व्यथा पक्षिणी को पहुंचा देने के लिए संदेश वाहक बनाये गये थे और मीरां आशा करती है उन मंडराते हुए बादलों से कि शायद वे उसके प्रियतम का समाचार लेकर आये हों।

मीराँ प्रियतम गिरधर नागर को उपालंभ देती हुई मीराँ कहती है कि आपने सावन महिने में आने का वचन दिया था।

"सावण आवण कह गया बाला, कर गया कोल अनेक।
गिणता-गिणता धंस गई रे म्हांरा आंगलिया री रेख।।"

उसी समय से मैं आपका इंतजार कर रही हूं। सावन और भादवें में सभी तालाब जल से भरे हुए है और उन सभी को देखकर बिरहणी बेहाल हो रही है। बारहामामा में बारह महिनों के प्रकृति सम्बन्धी तथ्यों को प्रस्तुत किया जाता है। राजस्थानी साहित्य में कई बारहमासे बहुत अधिक प्रसिद्ध है।

मानव अपने हृदयगत भावनाओं का साम्य प्रकृति उसी समय प्रसन्न दिखाई देती । वियोग के समय वही प्रकृति वेदना को तीव्रतम कर देती हैं। वे सभी संयोग के माध्यम से वियोग की भावना को उभारते हैं।

मीराँ के पदों प्रकृति चित्रण सम्बन्धी पद कम मात्रा में मिलते हैं प्रकृति चित्रण सम्बधी ये पद किसी एक निश्चित समय में नहीं लिखे गये। मीराँ का उद्‌देश्य प्रकृति चित्रण नहीं था पर मानव स्वभाव के नाते पद रचना करते हुए पृष्ठभूमि के रूप में प्रकृति के दर्शन होते है। वियोग के समय प्रकृति के प्रति मीराँ ने बहुत कुछ कहा है। मीराँ के युग बारहमासा का प्रचलन बहुत अधिक मात्रा में था और इस सम्बन्ध का एक पद हमें मीराँ के साहित्य में मिलता है। मीराँ के पदों में प्राप्त प्रकृति चित्रण आन्तरिक भावनाओं का सम्बल पाकर और भी निखर उठा है।

- **रहस्यवाद**

उषा की प्रथम किरण के साथ ही साथ मानव ने अपनी आंखें खोली तो उसने अपने आपको प्रकृति के मध्य पाया। प्रकृति एवं जीवन की विविधताओ ंको देखकर मानव हृदय में जिज्ञासा उत्पन्न हुई कि वह अन्नत सत्ता कौन सी है, जिसने इस विश्व का निर्माण किया है और संचालन करती जा रही है? उस वस्तु को देखने और समझने की भावना ने रहस्य को जन्म दिया। इस रहस्य को सुलझाने का प्रयत्न जितना ही किया गया, वह उतना ही उलझता गया। अज्ञात सत्ता को देखने, पाने ओर समझने की यह भावना की साहित्य में रहस्यवाद कहलाती है। रहस्यवाद काव्य की एक विशेष चिन्तन धारा को सूचित करता है। रहस्यवाद शब्द की परिभाषा आचार्य शुक्ल के अनुसार-साधना के क्षेत्र में जो अद्वैतवाद है, काव्य के क्षेत्र में वही रहस्यवाद है।

ब्रह्म और जीवन के सम्बन्धों को लेकर हर युग में मानव चिन्तन करता रहा है। ब्रह्मा और जीव का सम्बन्ध किस रूप में हैं। उनके बीच में क्या भेद है, और ऐसी कौन सी अवस्था आती है। जब आत्मा और परमात्मा में भेद ही नहीं रह जाता है। इन विचारधाराओं की पृष्ठभूमि पर विविध वादों का प्रचलन हो गया है। इन सभी सिद्धांतों के मूल में आत्मा और परमात्मा के संबंधों की चर्चा है। मीराँ के पदो में भी रहस्यवादी भावना की झलक मिलती है। मीरांबाई द्वारा अपनायी गई साधना इसी कारण रहस्यमयी भावनाओं से भी ओतप्रोत है। और उनके पदों में हमें रहस्यवाद की भी कुछ झलक दिखलाई पड़ जाती है।

"भज मन चरण अविनासी।

जे ताइ दीसे धरण गगन बिच, ते ताई सब उठ जारी।।

मीराँ कृष्ण से प्रेम करती है जो प्रेम और सौन्दर्य का अक्षय भंडार ब्रह्म ही हैं। मीराँ की भक्ति मार्धुय भाव की है। उन्हें अपने नारीत्व का पूर्ण ज्ञान है। मीराँ की रहस्य भावना हृदय जनित अनुभूति की प्रेरणा थी। मीराँ प्रेम मार्ग के द्वारा प्रिय तक पहुंचने के लिए प्रयत्नशील रहीं मीरां की भक्ति माधुर्य भाव की थी। इनकी भक्ति के कारण इनका रहस्यवाद शुष्क तथा नीरस नहीं बना। इसमें कबीर की पहुंच तथा जायसी का प्रेमाभिनय है।

स्वयं आकलन के प्रश्न–2

1. मीराबाई की दो साहित्यिक विशेषता लिखिएं।
2. मीरां की भक्ति भावना किस प्रकार की है?

10.5 सारांश

सारांश रूप में हम कह सकते है कि मीरांबाई और तुलसीदास भक्तिाकल के प्रसिद्ध भक्त कवियों में से एक कवि रहे है। तुलसीदास ने अपने काव्य में भगवान श्रीराम की लीलाओं का वर्णन किया है जबकि मीरांबाई ने भगवान श्री कृष्ण को अपना आराध्य मानकर अपने काव्य की रचना की हैं।

10.6 कठिन शब्दावली

चितवा– हृदय । **अविनासी**– अनवर। **म्हारा**– गोरा। **छाड़्या**– छोड दिया। **भेज्यां**– भेजा। **लग्या**– लगी है।

10.7 स्वयं आकलन प्रश्नोत्तर

स्वयं आकलन प्रश्न–1

1. राम के चरित का चित्रण करना और समन्वय की भावना।
2. अवधि भाषा का प्रयोग, दोहा, चौपाई का प्रयोग।

स्वयं आकलन प्रश्न–2

1. श्री कृष्ण को आराध्य मानना, विरह की प्रधानता।
2. माधुर्य भक्ति भावना।

10.8 सन्दर्भित पुस्तक

1. रामचन्द्र शुक्ल–गोस्वामी तुलसीदास।

10.9 सात्रिक प्रश्न

1. तुलसी की काव्यगत विशेषता लिखिए।
2. मीरांबाई की काव्य भाषा को स्पष्ट करें।

*****

इकाई–11
रसखान का जीवन परिचय

संरचना

11.1 भूमिका
11.2 उद्देश्य
11.3 रसखान का जीवन एवं साहित्यिक परिचय
11.3.1 रसखान की रचनाएं
11.3.2 रसखान की साहित्यिक विशेषताएं
स्वयं आकलन प्रश्न
11.4 सारांश
11.5 कठिन शब्दावली
11.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर
11.7 संदर्भित पुस्तकें
11.8 सात्रिक प्रश्न

11.1 भूमिका

हिन्दी साहित्य के कृष्ण भक्त तथा रीतिकालीन कवियों में कवि रसखान का महत्वपूर्ण स्थान है। ये दिल्ली के एक पठान सरदार थे। इनमें काव्य में सूफियों के प्रेम पीर की प्रधानता मिलती है। रसखान ने प्रेमपीर का कृष्ण के मूर्त अवलम्बन बना बना लिया है। इनके विषय में प्रचलित किंवदन्तियों से इतना निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि रसखान एक रसिक जीव थे और उनका लौकिक प्रेम अलौकिक प्रेम में बदल गया था। आचार्य चन्द्रबली पांडेय जी ने उनकी भक्ति के सम्बन्ध में लिखा है कि रसखान नारद भक्त थे, वल्लभी नहीं कई विद्वानों का मत है कि ये बड़े भारी कृष्णभक्त और गोस्वामी बिट्ठलनाथ जी के कृपापात्र शिष्य थे। ''दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता'' में इनका वृतांत आया है।

11.2 उद्देश्य

1. विद्यार्थियों को रसखान के जीवन से परिचित करवाना।
2. भक्तिकाल के सगुण धारा के कृष्ण भक्ति शाखा से अवगत करवाना।
3. रसखान के काव्य से परिचय करवाना।
4. रसखान की भक्तिभावना तथा उनकी काव्यशैली की अभिव्यक्ति।
5. कृष्ण काव्य के रूप सौन्दर्य का चित्रण।

11.3 रसखान का जीवन एवं साहित्यिक परिचय

रसखान के जन्म–समय, शिक्षा–दीक्षा, कार्य–व्यवसाय, निधन–काल आदि के संबंध में कोई प्रामाणिक साक्ष्य अभी तक उपलब्ध नहीं है। फिर भी विद्वानों ने उनकी रचनाओं में कतिपय संकेत सूत्र ग्रहणकर के उनके जीवनवृत के संबंध में महत्वपूर्ण निष्कर्ष प्रस्तुत किए है। इन्होंने 'प्रेम वाटिका' में अपने आपको शाही खानदान का कहा है–

देखि गदर हित साहिबी, दिल्ली नगर मसान।
छिनहिं बादसा बंस की, ठसक छांड़ि रसखान।

संभव है पठान बादशाहों की कुल पंरपरा से इनका संबंध रहा हो। मुगल सम्राट हुमायुं ने दिल्ली के सूखंशीय पठान शासकों से अपना खोया हुआ शासनाधिकार पुनः हस्तगत किया था। इस अवसर पर भयंकर नरसंहार और विध्वंस होना स्वाभाविक था और कवि प्रकृति के कोमल हृदय रसखान द्वारा उस 'गदर' के तांडव रूप को देखकर विरक्त हो जाना भी अस्वाभाविक नहीं। कवि ने जिस 'बादशाह–वंश' की 'ठसक' का त्याग किया, वह वहीं पठान (सूर) वंश प्रतीत होता है।

• जन्म तथा परिवार

रसखान के जन्म के संबंध में विद्वानों में काफी मतभेद है। कुछ विद्वानों ने इनका जन्म संवत् 1615 ई. माना है तथा कुछ विद्वानों ने संवत् 1630 ई. माना है। स्वयं रसखान के अनुसार गदर के कारण दिल्ली श्मशान बन चुकी थी, तब दिल्ली छोड़कर ब्रज (मथुरा) चले गए। गदर सन् 1613 ई. में हुआ था और ये गदर के समय व्यस्क थे, इसलिए कई विद्वान इनका जन्म संवत् 1590 ई. में हुआ था। अन्य मत के अनुसार रसखान अकबर के समकालीन थे और अकबर का शासनकाल 1556–1605 है। अतः इनका जन्म 1590 ई. मानना ही उचित होगा। इनके जन्म स्थान को लेकर भी विभिन्न मत प्रकट किए गए है। कुछ लोग इनका जन्म स्थान 'पिहानी' (दिल्ली के समीप) मानते है परन्तु इनके काव्य में 'दिल्ली' शब्द का एक बार ही प्रयोग हुआ है। गदर के बाद उनका जीवन मथूरा में ही बीता। परन्तु 'शिवसिंह सरोज' के अनुसार रसखान की जन्म भूमि 'पिहानी' जिला हरदोई (उत्तर प्रदेश) मानना ज्यादा उचित है क्योंकि हरदोई जनपद में निर्मित एक प्रेक्षाग्रह का नाम 'रसखान प्रेक्षाग्रह' है। पिहानी और बिलग्राम ऐसी जगह है जहां हिन्दी के बड़े–बड़े और उच्चकोटि के मुसलमान कवि पैदा हुए है।

रसखान के जन्म स्थान और जन्म काल की तरह इनके नामकरण के संबंध में विभिनन मत प्रस्तुत हुए है। परन्तु रसखान का वास्तविक नाम सैय्यद इब्राहिम था। खान इनकी उपाधि थी। नवलगढ़ के राजकुमार संग्राम सिंह द्वारा प्राप्त रसखान के चित्र पर नागरीलिपि के साथ–साथ फारसी लिपि में भी एक स्थान पर 'रसखान' और दूसरे स्थान पर 'रसखां' ही लिखा मिलता है। अतः यह कहा जा सकता है कि जिस प्रकार फारसी कवि अपना नाम संक्षिप्त रखते थे उसी आधार पर रसखान ने अपना नाम बदलकर कविता लिखने की परम्परा को आगे बढ़ाया।

• शिक्षा–दीक्षाः रसखान की पारिवारिक पृष्ठभूमिक अज्ञात है। परन्तु कहा जाता है कि इनके पिताजी एक जागीरदार थे। इसलिए इनका पालन–पोषण बड़े लाड़–प्यार से हुआ माना जाता है। एक साधन–सम्पन्न परिवार से जन्म लेने के कारण इनकी शिक्षा अच्छी तरह उच्चकोटि की हुई थी। रसखान को फारस संस्कृत तथा हिन्दी का अच्छा खासा ज्ञान था। इन्होंने 'श्रीमद्भागवत' का अनुवाद फारसी और हिन्दी में किया था। अब यह संस्कृत, फारसी और हिन्दी के अच्छे जानकार थे। ब्रज के ठाकुर नटवर नागर नंद किशोर भगवान श्री कृष्ण पर इनकी अगाध श्रद्धा थी।

• मृत्युः डॉ. नग्रेन्द्र के अनुसार रसखान की मृत्यु 1618 में वृन्दावन में हुई थी। मथुरा जिले के महावन में इनकी समाधि बनाई गई है।

11.3.1 रसखान की रचनाएं

रसखान का संपूर्ण कृतित्व अभी तक प्राप्त नहीं है। परन्तु रसखान की प्रमुखतः चार रचनाएं प्रामणिक मानी जा सकती हैं।

• **सुजान रसखानः** यह स्फुट छंदों का संग्रह हैं, जिसमें 181 सवैये, 17 कवित्त, 12 दोहे तथा 4 सोरठे हैं। इन छंदों का मूल उद्देश्य भक्ति, प्रेम, राध–कृष्ण की रूप–माधुरी, वंशी–मोहिनी एंव कृष्ण–लीला संबंधी अन्य सरस प्रसंग हैं।

• **प्रेमवाटिकाः** इसके अंतर्गत कवि ने राधा–कृष्ण को प्रेमोद्यान के मालिन–माली मान कर प्रेम के गूढ़ तत्व का सूक्ष्म निरूपण किया है। यह 53 दोहों की लघु कृति है।

• **दानलीलाः** यह केवल 11 छंदों का छोटा–सा पद्य प्रबंध है? जिसमें कवि ने प्रसिद्ध पौराणिक प्रसंग को राधाकृष्ण संवाद के रूप में चित्रित किया है।

• **अष्टायामः** 'अष्टायाम' में संकलित कई दोहों के अंतर्गत श्रीकृष्ण के प्रातः जागरण से रात्रिशयन–पर्यंत उनकी दिनचर्या एवं विभिन्न क्रीडज्ञओं का वर्णन हैं।

स्वयं आकलन के प्रश्न

1. रसखान का जन्म कब हुआ?
2. रसखान का जन्म कहां हुआ?
3. रसखान किसके भक्त थे?
4. प्रेमवाटिका के रचनाकार का नाम बताओं।

11.4 सारांश

सारांश रूप में हम कह सकते है कि रसखान हिन्दी साहित्य में सम्प्रदाय निरपेक्ष कवि माने जाते हैं। वे भगवान श्री कृष्ण के अनन्य भक्त थे। उन्होंने श्री कृष्ण को अपने काव्य में चित्रित किया है।

11.5 कठिन शब्दावली

देखि–देखना। **साहिबी**–साहब/ईश्वर। **ठसक**– स्वाभिमानी।

11.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

1. 1612 ई.
2. दिल्ली के पास
3. भगवान श्रीकृष्ण
4. रसखान

11.7 सन्दर्भित पुस्तक

1. विद्यानिवास मिश्र – रसखान रचनावली।

11.8 सात्रिक प्रश्न

1. रसखान का जीवन परिचय लिखों।
2. रसखान का साहित्यिक परिचय बताओं।
3. रसखान की साहित्यिक विशेषता लिखों।

*****

इकाई—12
रसखान

संरचना

12.1 भूमिका
12.2 उद्देश्य
12.3 रसखान : व्याख्या भाग
स्वयं आकलन प्रश्न
12.4 सारांश
12.5 कठिन शब्दावली
12.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर
12.7 संदर्भित पुस्तक
12.8 सात्रिक प्रश्न

12.1 भूमिका

रसखान भक्ति काल के प्रसिद्ध कृष्ण भक्त कवियों में से एक कवि थे उन्होंने भगवान श्री कृष्ण की विविध लीलाओं का वर्णन किया है।

12.2 उद्देश्य

1. रसखान के जीवन परिचय का बोध।
2. रसखान की रचनाओं का ज्ञान।
3. रसखान की रचनाओं में वर्णित विषय का ज्ञान।

12.3 रसखान : व्याख्या भाग

1 पद

मानुष हौ तो वही रसखानि बसौं ब्रज गोकुल गाँव के ग्वारन ।
जौ पसु हौ तो कहा बस मेरो चरौ नित नंद की धे नु मंझारन ।।
पाहन हौ तो वही गिरे को जो कियो हरिछत्र पुरंदर धारन।
जी खर हो तो बसेरो करौ मिलि कालिंदी कूल कदंब की डारन।

प्रसंग— प्रस्तुत पद्यांश हमारी हिन्दी की पाठ्य—पुस्तक 'मध्यकालीन हिंदी कविता' में संकलित कवि रसखान द्वारा रचित सुजान—रसखान में से लिया गया है।

संदर्भ— प्रस्तुत पद में कवि ने भगवान श्रीकृष्ण तथा ब्रजधाम के प्रति अपने अनन्य प्रेम का चित्रण किया है।

व्याख्या— प्रस्तुत पद में कवि रसखान कहते हैं कि यदि मुझे अगले जन्म में मानव जीवन मिले तो मेरी इच्छा है कि मुझे ब्रज क्षेत्र के गोकुल गाँव में ग्वालों के बीच जन्म हो। यदि मुझे पशु के रूप में जन्म ले तो में नंद बाबा की गऊओं के बीच गाय बनकर चरता रहूँ। कवि रसखान कहते हैं कि यदि मेरा अगला जन्म पत्थर के रूप में हो तो मुझे गोवर्धन पर्वत पर स्थान मिलें जिसे भगवान कृष्ण ने इन्द्र का अभिमान भंग करने के लिए छत्र के रूप में धारण किया था। यदि मुझे अगले जन्म में पक्षी के रूप में जन्म मिलें तो वे चाहते हैं कि उनका बसेरा यमुना के तट पर कदंब के वृक्षों की डालियों पर हो।

विशेष–

1. कवि ने ब्रज क्षेत्र के प्रति अपनी प्रेम भावना को अभिव्यक्त किया है।
2. सरल एवं भावानुकूल साहित्यिक ब्रज भाषा का प्रयोग।
3. अनुप्रास अलंकार की छटा दर्शनीय है।
4. आत्मकथात्मक शैली का प्रयोग।

2 पद

या तकुटी अरु कामरिया पर राज तिहूँ पुर को तजि डारों।
आठहुँ सिद्धि नवी निधि के सुख नंद की गाइ चराइ विसारों ।।
रसखानि कर्बो इन ऑखिन सों, ब्रज के बन बाग तड़ाग निहारौं ।
कोटिक री कलधौत के धाम करील के कुंजन ऊपर बारों।।

प्रसंग – प्रस्तुत पद्यांश हमारी हिन्दी की पाठ्‌य–पुस्तक 'मध्यकालीन हिंदी कविता ' में संकलित कवि रसखान द्वारा रचित 'सुजान–रसखान' में से लिया गया है।

संदर्भ – प्रस्तुत पद में कवि ने भगवान श्रीकृष्ण एवं ब्रजभूमि की महता का चित्रण किया है।

व्याख्या – प्रस्तुत पद में कवि ने भगवान श्रीकृष्ण एवं ब्रजभूमि के प्रति अपनी अनन्य भक्ति भाव को व्यक्त करते हुए कहते हैं कि यह श्रीकृष्ण की लाठी और उनके द्वारा ओढ़े जाने वाले कंबल के बदले यदि मुझे तीनों लोकों के राज्य को न्योछावर करना पड़े तो में कर सकता हूँ। कवि कहता है कि ब्रज में नंद बाबा की गऊओं को जंगलों में चराने ले जाने के लिए यदि मुझे आठों सिद्धियों और नवों निद्धियों से प्राप्त होने वाले सुख को भी न्योछावर करना पड़े तो में कर सकता हूँ। कवि रसखान कहता है कि इन आंखियों को कब ब्रज के वन, उपवन और सरोवरों के दर्शन करने का अवसर प्राप्त होगा। अर्थात् मुझे कब ब्रज के दर्शन होंगे? कवि आगे कहता है कि में ब्रज के उपवन और वहां कांटेदार झाड़ियों पर करोड़ों सोने–चांदी के बने राजमहलों से प्राप्त होने वाले सुख को भी न्योछावर कर दुंगा। अर्थात् ब्रज क्षेत्र में रहते हुए उसे असीम सुख की प्राप्ति होती है। यह जीवन की बड़ी–से–बड़ी सम्पत्ति है और इस सम्पत्ति को प्राप्त करने के लिए सबका त्याग हो सकता है।

विशेष :

1. यहाँ कवि ने कृष्ण के प्रति अपनी अनन्य भक्ति भावना को व्यक्त किया है।
2. सरल, सहज ब्रज भाषा का प्रयोग।
3. अनुप्रास व व्यतिरेक अलंकारों का प्रयोग।
4. आत्मकथात्मक शैली का प्रयोग।

3 पद

मोरपखा सिर ऊपर राखिहाँ, गुंज की माल गरें पहिरोंगी।
ओदि पितंबर लै लकुटी बन गोधन ग्वारनि संग फिरौंगी।।
भावतो बोहि मेरो सखानि सों तेरे कहे सब स्वाँग करोंगी।
या मुरली मुरलीयर की अधरान घरी अबरा न परौंगी।।

प्रसंग– प्रस्तुत पद्यांश हमारी हिन्दी की पाठ्‌य–पुस्तक 'मध्यकालीन हिंदी कविता' में संकलित कवि रसखान द्वारा रचित 'सुजान–रसखान' में से लिया गया है।

संदर्भ– प्रस्तुत पद में कवि ने भगवान श्रीकृष्ण के प्रति गोपियों के अनन्य प्रेम का चित्रण किया है।

व्याख्या— प्रस्तुत पद में एक गोपी दूसरी गोपी से कह रही है कि हे सखी। मैं मोर पंखों को अपने सिर पर उसी प्रकार धारण करेगी जिस प्रकार श्रीकृष्ण धारण करते थे। और अपने गले में गुंजा के फूलों से बनी माला भी उसी प्रकर पहनेगी, जिस प्रकार श्रीकृष्ण पहनते थे। वह श्रीकृष्ण की भांति पीले वस्त्र धारण करके, हाथ में लाठी लेकर ग्वाल—बालों के साथ जंगल में गाएँ चराने भी जाएगी। सखी कहती है कि यही नहीं सारे गोकुलवासी श्रीकृष्ण का रूप धारण करेगे। लेकिन वह भगवान श्रीकृष्ण की मुरली, जिसे भगवान कृष्ण अपने होंठों पर धारण करते हैं, उसे अपने होंठों पर धारण नहीं करेगी।

विशेष :

1. कवि ने गोपियों का मार्मिक वर्णन किया है।
2. सरल, भावानुकूल ब्रज भाषा का प्रयोग।
3. अनुप्रास अलंकार का प्रयोग।

4 पद

एक समै मुरली धुनि में रसखानि लियो कहूँ नाम हमारो।
ता दिन तें परि वैरी बिसासिनी झांकन देती नहीं, है दुबारो।।
होत चढ़ाव बचाओं सु क्यों करि क्यों अलि भेटिए प्रान पियारो।
दृष्टि परी तबहीं घटको अटको हियरे पियरे पटवारो ।।

प्रसंग— प्रस्तुत पद्यांश हमारी हिन्दी की पाठ्य—पुस्तक 'मध्यकालीन हिंदी कविता 'में संकलित कवि रसखान द्वारा रचित 'सुजान—रसखान' में से लिया गया है।

संदर्भ— प्रस्तुत पद में कवि ने भगवान श्रीकृष्ण के प्रति गोपियों के अनन्य प्रेम का चित्रण किया है।

व्याख्या — कवि कहता है कि एक गोपी अपनी सखी से शिकायत करती हुई कहती है कि एक दिन श्रीकृष्ण ने मुरली बजाई उस मुरली की धुन में मेरा नाम गुंजा। गोपी कहती है कि उस विश्वासघाती मुरली ने मेरे और कृष्ण प्रेम को उजागर कर दिया। अब लाज के कारण मैं अपने दरवाजे से बाहर भी झोक नहीं पाती। गोपी कहती है कि हे सखी! अब तुम ही बताओं कि श्रीकृष्ण से कैसे मिलने जाऊँ? अर्थात उस विश्वासघाती मुरली ने मुझे बदनाम कर दिया। अब तो मेरी चारों ओर निन्दा हो रही है, उससे कैसे बचा जा सकता है? कोई उपाय भी नहीं है। हे सखी। अब तुम्हीं बताओ कि मैं अपने प्रिय कृष्ण से ऐसी स्थिति में कैसे मिल सकती हूं? उसे कैसे अपने गले से लगा सकती हूँ? गोपी कहती है कि उसी क्षण उसकी नजर घर के बाहर खड़े चटकीले पीले वस्त्र पहने कृष्ण पर पड़ गई जो उससे मिलने आया था, उसे दर्शन दे दिया गया और उसने मेरा मन मोह लिया।

विशेष :

1. प्रस्तुत पद में गोपियों की भक्ति भावना का चित्रण किया है।
2. सरल, सहज ब्रज भाषा का प्रयोग।
3. अनुप्रास एवं मानवीकरण अलंकारों का प्रयोग।

5 पद

गावें गुनी गुनिका गन्धर्ब औ सारद सेस सबै गुन गावत।
नाम अनंत गनंत गनेस ज्यों ब्रह्मा त्रिलोचन पार न पावत।।
जोगी जती तपसी अरु सिद्ध निरंतर जाहि समाधि समावत।
ताहि अहीर की छोहरियों उठिया भरि छाछ पे नाच नचायत।।

प्रसंग– प्रस्तुत पद्यांश हमारी हिन्दी की पाठ्य–पुस्तक 'मध्यकालीन हिंदी कविता' में संकलित कवि रसखान द्वारा रचित 'सुजान–रसखान' में से लिया गया है।

संदर्भ– प्रस्तुत पद में कवि ने भगवान श्रीकृष्ण की महिमा का गान करते हुए उन्हें परब्रह्म के रूप में चित्रित किया है ।

व्याख्या – प्रस्तुत पद में कवि रसखान अपने आराध्य श्रीकृष्ण के गुणों का गायन करते हुए कहते हैं कि श्रीकृष्ण के गुणों के भंडार हैं। उनके गुणों का गायन अप्सराएँ, संगीतज्ञ, गन्धर्व, साक्षात माँ सरस्वती, शेषनाग जी आदि सभी दिन रात करते रहते हैं। श्रीकृष्ण के अनंत नाम है। अर्थात् उनके नाम की महिमा असीम है, जिसका गायन स्वयं गणेश जी, शिवजी और साक्षात ब्रह्मा जी भी करते हैं। अर्थात् उनके गुणों की कोई सीमा नहीं हैं। कवि रसखान श्रीकृष्ण का गुणगान करते हए कहते हैं कि श्रीकृष्ण के गुणों का बड़े–बड़े योगी, तपस्वी, ब्रह्मचारी, तथा सिद्ध महात्मा लगातार समाधि लगाकर ध्यान करते हैं परन्तु उन्हें श्रीकृष्ण के दर्शन नहीं होते। वे श्रीकृष्ण की लीला का वर्णन करते हुए आगे कहते है कि ब्रज की अनपढ़ ग्वालिनें कटोरा भर छाछ के लिए अपने–आगे पीछे घूमने को विवश करती हैं। अर्थात कृष्ण लीलावश उनके छाछ छीनने का प्रयास करते हैं।

विशेष :

1. पद में श्रीकृष्ण की अपरंपार महिमा का गायन किया गया है।
2. सरल एवं भावानुकूल ब्रज भाषा का प्रयोग।
3. अनुप्रास अलंकार का प्रयोग।

6 पद

खेलत फाग सुहाग भरी अनुरागहि लालन कों धरि कै।
मारत कुंकुम केसरि के पिचकारिन में रंग कों भरि कै।।
गेरत लाल गुलाल लली मनमोहिनी मौज मिटा करि कै।
जात चली रसखानि अली मदमस्त मनों वन कों हरि कै।।

प्रसंग– प्रस्तुत पद्यांश हमारी हिन्दी की पाठ्य–पुस्तक 'मध्यकालीन हिंदी कविता' में संकलित कवि रसखान द्वारा रचित 'सुजान–रसखान' में से लिया गया है।

संदर्भ– प्रस्तुत पद में कवि ने गोपियों के साथ भगवान श्रीकृष्ण की लीलाओं का चित्रण किया है।

व्याख्या– प्रस्तुत पद में होली का वर्णन करते हुए कवि रसखान कहते हैं कि गोपियों होली के दिन काफी उल्लास और उत्साह से भरी हुई है। उल्लास और उत्साह से भरी हुई गोपियों ने होली खेलने के लिए स्नेहपूर्वक बालकृष्ण को पकड़ लिया। वे बालकृष्ण को पकड़ उस पर कुंकुम और केसर से भरे रंग की पिचकारियां फैंकने लगी। सुन्दरी राधा ने कृष्ण पर लाल गुलाब की वर्षा कर दी और अपने मन की पूरी प्यास बुझाती है। कवि रसखान आगे कहते हैं कि गोपिकाएँ कृष्ण के साथ मनमाने ढंग से होली खेलकर मस्ती से चली जाती है।

विशेषः

1. गोपियों के कृष्ण का गोपियों के प्रति प्रेम का चित्रण।
2. सरल, सहज ब्रज भाषा का प्रयोग।
3. अनुप्रास अलंकार का प्रयोग।
4. वर्णनात्मक शैली का प्रयोग ।

7 पद

कान्ह भए बस बाँसुरी के अब कौन सखी हमकों चहिहै।
निस यौस रहे संग साथ लगी यह सौतिन तापन क्यों सहिहै।।
जिन मोहि लिया मनमोहन को रसखानि सदा हमकों दहिहै।
मिति आओ सबै सखी भाग चलें अब तो ब्रज में बेसुरी रहिहै।।

प्रसंग – प्रस्तुत प्यांश हमारी हिन्दी की पाठ्य–पुस्तक 'मध्यकालीन हिंदी कविता ' में संकलित कवि रसखान द्वारा रचित 'सुजान–रसखान' में से लिया गया है।

संदर्भ – प्रस्तुत पद में कवि ने गोपियों के मनोभाव का चित्रण किया है।

व्याख्या – प्रस्तुत पद में गोपी अपनी सखी से कहती है कि हे सखी! कृष्ण तो अब बाँसूरी के वश में हो गए हैं, अर्थात् हे सखि! अब कृष्ण हमसे क्यों प्यार करेगा। गोपी आगे कहती हैं कि बाँसुरी रात–दिन कृष्ण के साथ रहती है, एक क्षण को भी अलग नहीं होती। यह हमारी सौतन बन गई है अर्थात् हमें सौतन की भाँति मानसिक पीड़ा देती है। गोपी कहती हैं कि बाँसुरी ने दूसरों का मन मोहने वाले मनमोहन का ही मन मोह लिया है और हमें सदा संताप देती है। हे सखी सब मिलकर ब्रज से भाग चलें, क्योंकि अब तो ब्रज में बाँसुरी ही रह सकती है।

विशेष

1. प्रस्तुत पद में गोपियों की मुरली के प्रति इर्ष्या भावना का चित्रण।
2. सरल, सहज ब्रज भाषा का प्रयोग।
3. अनुप्रास व मानवीकरण अलंकारो का प्रयोग।

स्वयं आकलन के प्रश्न

1. रसखान का जन्म कब हुआ ?
2. रसखान का जन्म कहा पर हुआ ?
3. रसखान की एक रचना का नाम बताओ।

12.4 सारांश

सारांश रूप में हम कह सकते है कि कवि रसखान ने अपने काव्य में श्री कृष्ण की लीलाओं का वर्णन किया है उन्होंने भगवान श्री कृष्ण को अपना आराध्य माना है।

12.5 कठिन शब्दावली

मानुष – मनुष्य। **ग्वारन** – ग्वाल–बाल । **मंझारन** – के बीच। **पाहन**– पत्थर। **हरि** – कृष्ण। **छत्र** – उत्तरी। **पुरंदर** – इन्द्र। **कालिंदी कूल** – यमुना तट। **लकुटी** – लाठी। **तड़ाग** – तालाब। **निहारों** – देखना। **कोटिक** – करोड़ों। **कलयौत** – सोना– चांदी। **घाम** – भवन। **करील** – कंटीली झाड़ी। **पहिरांगी** – धारण करना। **गोधन** – गायों रूपी धन। **ग्वारनि** – ग्वाल–बाल। **फिरींगी** – घूमूंगी। **स्वांग** – रूप धरना। **समे** – समय। **ता दिन** – उस दिन। **विसासिनी** – विश्वासघाती। **चबाव** – निंदा। **गावें** – गायन करते हैं। **गनिका** – अप्पसराएं। **गन्धरय संगीत** – नृत्य प्रवीण देव योनी के लोग। **त्रिलोचन** – शिवजी। **छोहरियों**– लड़कियों। **फाग** – होली। **धरि के**– पकड़ कर । **लली**– राधा। **बत्ती** – सखी। **चहिहै** – चाहेगा। **निस धौस** – रात–दिन। **सहिहै** – सहेगा। **दहिहै** – जलाती है, दुःख देती है।

12.6 आकलन प्रश्नों के उत्तर :

1. 1533 |
2. दिल्ली।
3. सुजान रसखान !

12.7 संदर्भित पुस्तक

1. विद्यानिवास मिश्रा– रसखान रचनावली।

12.8 सात्रिक प्रश्नः

1. रसखान का जीवन परिचय लिखों।
2. रसखान का साहित्यक परिचय लिखों।

*****

इकाई–13
बिहारी का जीवन परिचय

संरचना

13.1 भूमिका

13.2 उद्देश्य

13.3 बिहारी का जीवन परिचय

13.3.1 बिहारी की रचनाएं

स्वयं आकलन प्रश्न

13.4 सारांश

13.5 कठिन शब्दावली

13.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

13.7 संदर्भित पुस्तक

13.8 सात्रिक प्रश्न

13.1 भूमिका

बिहारी रीतिकाल के रीतिसिद्ध काव्यधारा के प्रसिद्ध कवि थे। उन्होंने अपने काव्य में साहित्यक के विविध पक्षों का वर्णन किया है। बिहारी ने अपने काव्य 'बिहारी सतसई' में नायिका भेद, काव्य के लक्षण आदि का प्रयोग किया है।

13.2 उद्देश्य

1. बिहारी के जीवन का बोध।
2. बिहारी की रचनाओं का ज्ञान।
3. बिहारी के काव्य की विशेषताओं का बोध।

13.3 बिहारी का जीवन परिचय

सामान्यत: यह स्वीकार किया जाता है कि प्रत्येक साहित्यिक रचना में उसके रचयिता के व्यक्तित्व का कोई न कोई अंश प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में प्राय: समाहित रहता है। कवि अपने काव्य में जिस सामग्री-विचार, भाव, कल्पना आदि का उपयोग करता है, वह प्राय: उसके अध्ययन, अनुभव एवं चिन्तन पर आधारित होती है, अत: किसी भी काव्य-रचना के सम्यक् विश्लेषण के लिए कवि के व्यक्तित्व का होना आवश्यक होता है तथा व्यक्तित्व सम्बंधी तथ्यों की जानकारी के लिए उसके जीवन-चरित को खोजना पड़ता है। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए यहाँ बिहारी के जीवन-चरित सम्बन्धी कतिपय पक्षों का अध्ययन किया गया है।

- **जन्म काल**

हिन्दी साहित्य के लगभग सभी इतिहासकार यह मानते हैं कि बिहारी का जन्म सत्राहवीं शती में हुआ था किन्तु जन्म संवत् के सम्बन्ध में मतैक्य नहीं है। सर्वमान्य डॉ॰ भागीरथ मिश्र का मत है कि बिहारी का जन्म संवत् 1652 (1595 ई॰) में हुआ। डॉ॰ नगेन्द्र द्वारा संपादित 'हिन्दी साहित्य के बृहत् इतिहास' में भी इसी मत की पुष्टि की गई है। अत: हमारे विचार से बिहारी का जन्म संवत् 1652 अर्थात् सन् 1595 ई॰ के लगभग माना जा सकता है।

• जन्म–स्थान

बिहारी के जन्म–स्थान के बारे में विद्वानों में अधिक मतभेद नहीं है क्योंकि इसके सम्बन्ध में एक दोहा उपलब्ध है।

जनम गवालियर जानियें खंड बुंदेले बाल ।
तरूनाई आई सुखद, मथुरा बसि ससुराल ।।

विभिन्न विद्वानों ने इस दोहे को प्रामाणिक मानते हुए बिहारी का जन्म ग्वालियर के निकट बसुआ गोबिन्दपुर नामक स्थान को बिहारी का जन्म स्थान माना है।

• नाम

'बिहारी सतसई' के रचयिता का नाम 'बिहारी लाल' था या 'बिहारीदास' इस बारे पर विद्वानों में पर्याप्त मतभेद है। प्राचीन टीकाकारों में कृष्ण लाल एवं कृष्णदत्त कवि अपनी टीकाओं में बिहारी दास नाम का उल्लेख करते हैं, जबकि 'लाल–चन्द्रिका', बिहारी–बिहार, तथा मिश्र जी की भावार्थ प्रकाशिका 'टीका' में बिहारी लाल नाम का उल्लेख मिलता है। लाला भगवानदीन भी अपनी टीका में बिहारी लाल नाम का उल्लेख करते हैं। हिन्दी के प्रथम इतिहासकार गार्सा द तासी, ग्रियर्सन, मिश्रबन्धु, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी आदि इतिहासकार भी अपने ग्रन्थों में 'बिहारीलाल' नाम को ही मान्यता देते हैं। 'जगन्ननाथ दास रत्नाकर' दोनों मतों का समन्वय करते हुए यह मत व्यक्त करते हैं –यह भी सम्भव है कि पहले इनका नाम बिहारी लाल रहा होगा तथा बाद में जब वैराग्य होने पर बिहारी दास हो गया हो। बिहारी सतसई में बिहारी लाल नाम आया है–

सखि सिखावत मानविधि सैननि बरजति बाल।
हरैं कहै, मो हिय बसत, सदा बिहारी लाल ।।
इस प्रकार बिहारी लाल नाम उचित ही ठहरता है।

• बिहारी का परिवार, वंश एवं विवाह

कविवर बिहारी की जीवनी पर महत्त्वपूर्ण प्रकाश डालने वालों विद्धान आलोचकों में डॉ० ग्रियर्सन, रत्नाकर, मिश्रबन्धु, अम्बिकादत्त व्यास, राधा चरण गोस्वामी एवं आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। इन सभी विद्वानों के सोच की आधरभूत सामग्री निम्नलिखित तीन दोहों में है :–

प्रगट भये द्विज राज कुल, सुबस बसे ब्रज आइ।
मेरौ हरौ कलेषु सबु, के सौ के सौ राइ।।
जनमु ग्वालियर जानियै, खण्ड बुन्डैलें बाल ।
तरूनाई आई सुघर, बसि मथुरा ससुराल ।।

इन दो दोहों के आधार पर कविवर बिहारी के जीवन वृत के विषय में उभरती है –बिहारी ब्राह्मण वंश में उत्पन्न हुए थे। वे स्वयं ही ब्रज में आ बसे थे। इनके गुरु तथा पिता केशव तथा केशवराय थे तथा इनके इष्ट देव कृष्ण थे।

दोहे से उनके जन्म स्थान, बाल्यकाल यौवन एवं विवाह के संबंध में जानकारियां मिलती है। उनका जन्म ग्वालियर में हुआ, बाल्यकाल बुन्देलखण्ड में बीता तथा युवावस्था में वे अपनी ससुराल मथुरा में रहे।

बिहारी की जाति के संदर्भ में दो मत और भी प्रचलित हैं। श्री राधाचरण गोस्वामी के अनुसार बिहारी–राय थे, और श्री राधाचरणदास जी के अनुसार बिहारी 'सनाढ्य मिश्र थे। केशवराय ने बिहारी को 'राय' माना है। बिहारी के पिता का नाम 'केशवराय' था, अधिकांश विद्वान इस सम्बन्ध में एकमत है।

- **आश्रयदाता**

बिहारी के जयपुर नरेश के आश्रय में रहने के सम्बन्ध में प्रसिद्ध है कि जयपुर के राजा जयसिंह अपनी नव-परिणीता के साथ रंग-रेलियां मनाने में व्यस्त थे, जबकि जनता के सुख-दुख की ओर से उन्होंने अपनी आँखें मूंद रखी थीं। राजा जयसिंह वैभव और विलास की चकाचौंध में इतने मदांध हो गये थे। वे अन्त:पुर से बाहर निकलकर जनसाधरण के सुख-दुखों को देखना ही नहीं चाहते थे। किसी भी व्यक्ति में इतना साहस नहीं था कि वह राजा जयसिंह की मोह निद्रा भंग कर सके। बिहारी वृत्ति लेने के लिए राजा जयसिंह के दरबार में पहुँचे तो उन्होंने (चौहानी) रानी के आग्रह पर जयसिंह की मोह निद्रा भंग करने की जिम्मेदारी स्वयं ली और निवास में राजा जयसिंह के पास निम्नलिखित दोहा लिखकर भेजा-

नहि परागु, नहि मधुर नहि मधु, नहि विकासु इहि काल,
अली कली ही सौं बंध्यौ, आगे कौन हवाल।

कहा जाता है कि अन्योक्ति गर्भित उपदेश से मिर्जा जयसिंह को प्रबोध हुआ और उनका प्रेमोन्माद उतर गया। इस स्थिति का वर्णन एक विद्वान आलोचक ने इस प्रकार किया है-

'उनकी (राजा जयसिंह) आँखें खुल गईं और आगा-पीछा सोचने की क्षमता लौट आई। तत्काल ही अंजली भर स्वर्ण मुद्राएं देकर उन्होंने बिहारी का सत्कार किया और उनकी प्रशंसा करते हुए प्रति दोहा एक स्वर्ण मुद्रा पारितोषिक स्वरूप देने का वचन देकर इस प्रकार के अन्य दोहों के रचने की प्रेरणा दी।

वस्तुत: बिहारी सतसई की रचना किए जाने के मूल में यही कारण क्रियाशील रहा है। बिहारी ने जयसिंह की आज्ञा से ही सतसई का प्रणयन किया था-

'हुकुम पाई जयसिंह कौ, हरि राधिका-प्रसाद,
करी बिहारी सतसई, भरी अनेकन स्वाद।'

चौहान की रानी ने भी प्रसन्न होकर काली पहाड़ी नाम बिहारी को प्रदान किया। कुछ लोग इस घटना को काल्पनिक स्वीकार करते हैं।

- **मृत्यु**

प्राचीन टीकाकार लाला भगवानदीन संवत् 1720 सन्-1663 ई० को बिहारी का मृत्यु संवत् मानते हैं। मिश्रबन्धु एवं आचार्य रामचन्द्र शुक्ल भी इसी मत को मान्यता देते हैं।

13.3.1 बिहारी की रचनाएं

'बिहारी सतसई' बिहारी की एक मात्र उपलब्ध रचना है। प्राचीन टीकाकार पं० अम्बिकादत व्यास तथा ज्वाला प्रसाद मिश्र ने अपनी टीकाओं में बिहारी की आश्रय-प्राप्ति एवं सतसई की रचना सम्बन्धी एक घटना का वर्णन किया है, जिसके अनुसार राजा जयसिंह अपनी नवविवाहिता रानी के मोहपाश में इतना बंध गये थे कि उन्होंने शासन के समस्त उत्तरदायित्वों को भुला दिया। मिर्जा जयसिंह को अपने दायित्वों के प्रति सचेत करने के लिए बिहारी ने दोहा रचा।

बिहारी ने किसी प्रकार यह दोहा राजा जयसिंह के पास महल में पहुँचा दिया। राजा जयसिंह ने जब यह दोहा पढ़ा तो वे बिहारी के कवित्व पर मुग्ध हो गये तथा उनसे ऐसे ही और दोहों की रचना करने का अनुरोध किया जिसके फलस्वरूप 'बिहारी सतसई' की रचना प्रारम्भ हुई ।

प्राय: सभी इतिहासकारों ने बिहारी की आश्रय प्राप्ति एवं सतसई की रचना सम्बन्धी इस घटना को मान्यता दी है। डॉ० नगेन्द्र द्वारा सम्पादित 'हिन्दी साहित्य का बृहत इतिहास' में भी इस घटना का उल्लेख किया गया है।

हिन्दी की रामकाव्य परम्परा में जो स्थान तुलसीदास 'रामचरितमानस' का है तथा कृष्णकाव्य परम्परा में जो स्थान 'सूरसागर' का है, हिन्दी की सतसई परम्परा में वही स्थान 'बिहारी सतसई' का है। उनका समग्र रचना कौशल केवल इसी एक कृति को समर्पित है। बिहारी ने इसमें संस्कृति, समाज एवं इतिहास का समावेश करके इस तथ्य का खण्डन किया है कि इनका समावेश केवल प्रबन्ध काव्य में ही रहता है। उदाहरणार्थ संस्कृति चित्रण के कुछ दोहे अवलोकनीय हैं-

पतवारी माला पकरि और न कछू उपाय,
तरि संसार-पयोधि कौं, हरि नावैं करि नाव ।
जय माला, छापैं, तिलक, सरै न एकौ कामु,
मन काँचे वाचै वृथा, सांचे रॉचे रामु।

उपर्युक्त दोहों में बिहारी ने वेश-भूषा एवं अन्य बाह्याडम्बरों को छोड़ कर भक्ति भाव को ग्रहण करने का उपदेश दिया है और उनमें भी सर्वाधिक महत्ता प्रेमा-भक्ति को दी है। सामाजिक जीवन से सम्बन्धित उक्तियाँ भी बिहारी के दोहों में परिलक्षित होती हैं-

'बहु धन लै, अहसानु कै, पारो देत सराहि,
वैद वधू हंसि भेद सौं, रही नाह मुंह चाहि।'

बिहारी ने अपने व्यंग्य गर्भित वाक्यों द्वारा तत्कालीन सामंतीय वातावरण का यथार्थ एवं भावपूर्ण चित्रण किया है। तत्कालीन समाज में धूर्त वैद्यों की स्थिति ऐसी थी कि वे स्वयं तो क्लीब होते थे जबकि दूसरों को उस मर्ज की दवा देते थे, ऐसी स्थिति में वैद्य-वधू की मुस्कराहट यदि सहज भाव से फूट पड़े तो आश्चर्य की क्या बात है?

यही नहीं ज्योतिषी जी की स्त्री भले ही किसी दूसरे से सम्बन्ध रखे, पर उन्हें इस बात की किंचित् भी परवाह न थी। वे यदि पुत्र के जन्म में जारजयोग देखते हैं तो इस पर चिंता उत्पन्न होने के बजाय उन्हें प्रसन्नता ही होती है -कि चलो कोई अन्य पुरुष मरेगा -

'चित पितु मारक जोग गनि, भयौ भयैं सुत-सोगु,
फिरि हुलस्यौ जिय जोइसी, समुझै जारज-जोगु।

ऐसे दोहों में मध्ययुगीन समाज की पतित दशा का चित्रण बड़ा ही स्वाभाविक बन पड़ा है। मुक्तक काव्य की कसौटी पर यह रचना पूर्णतः सफल उतरती है। मुक्तक काव्य की दो कसौटियां हैं-

1. कल्पना की समाहार शक्ति
2. भाषा की समास शक्ति

इस दृष्टि से भी बिहारी सतसई में मुक्तक कला का चरम निदर्शन दिखाई पड़ता है। उदाहरणार्थ यह दोहा लीजिए -

'कहत नटत रीझत खिझत, मितल खिलत लजियात,
भरै भौन में करत हैं, नैननु ही सौं बात।'

यहां कवि ने मात्र बारह शब्दों में ही सम्पूर्ण प्रेम प्रसंग को समेट लिया। प्रसंग यह है कि नवविवाहित दम्पत्ति परिवार जनों के मध्य उन्मुक्त प्रेमालाप करने में असमर्थ है। अतः वे नेत्र-संकेतों के माध्यम से अपने हृदय-भाव एक दूसरे तक पहुँचाने का प्रयास कर रहे हैं -पहले नायक संकेत द्वारा नायिका से कहीं एकांत में मिलने का आग्रह करता है, परन्तु नायिका संकेत में नहीं कह देती है। नायिका की इस अनूठी क्रिया पर नायक खीझ उठता हैं। नायिका भी नायक द्वारा भरे परिवार में ऐसी प्रवृत्ति दिखाने से खीझ उठती है। कहना न होगा कि बिहारी ने एक छोटे से दोहे में सम्पूर्ण प्रेम-प्रसंग को चित्रित करके संक्षिप्त सारगर्भत्व और समाहार-शक्ति का अनूठा परिचय दिया हैं।

बिहारी की अनूठी काव्य-क्षमता के संदर्भ में डॉ॰ ग्रियर्सन के उद्‌गार है कि उनकी टक्कर का कवि समग्र यूरोपीय साहित्य में खोजना कठिन ही है -मै नहीं समझता कि इसकी तुलना का कोई भी काव्य यूरोप की किसी भी भाषा में उपलब्ध है। इसी प्रकार डॉ॰ हजारी प्रसाद द्विवेदी ने बिहारी सतसई को रसिकों का गलहार बताते हुए उचित ही यह मत व्यक्त किया। बिहारी सतसई सैकड़ों वर्षो से रसिकों का हृदय-हार बनी हुई है और तब तक बनी रहेगी, जब तक इस संसार में सहृदयता है'।

• **बिहारी सतसई**

बिहारी के विषय में बहुत से वाद-विवाद हैं क्योंकि उनके समर्थकों ने अतिशयोक्ति से काम लिया है तथा उन्हें हिन्दी साहित्य के सर्वोच्च शिखर पर बैठा दिया है। उनके समर्थकों के कुछ कथन उल्लेखनीय हैं-

पद्‌मसिंह शर्मा बिहारी के विषय में लिखते हैं -हिन्दी कवियों में श्री सुत महाकवि बिहारीलाल का आसन सबसे ऊँचा है। शृंगार रस वर्णन, पद-विन्यास, चातुर्य अर्थ-गाम्भीर्य, स्वभावोक्ति और स्वभाविक बोलचाल आदि खास गुणों में वह अपना जोड़ नहीं रखते। राधाचरण गोस्वामी के अनुसार बिहारी को ऐसा पीयूषवर्षी घनश्याम कहा है कि जिसके उदय होते ही सूर और तुलसी आच्छादित हो जाते हैं। विश्वनाथ प्रसाद मिश्र के अनुसार प्रेम के भीतर उन्होंने सब प्रकार की सामग्री सब ही प्रकार से वर्णन प्रस्तुत किये और वे भी सात सौ दोहों में। यह उनकी एक विशेषता ही है।

सरसता में तो बिहारी के समकालीन कवि मतिराम, पद्‌माकर, देव तक इनसे आगे निकल गए हैं। वस्तुतः बिहारी का काव्य नक्काशीदार उत्कृष्ट शिला का एक अप्रतिम नमूना है। यदि इसके साथ भावों की गहनता और तन्मयता भी मिल जाती तो बिहारी हिन्दी साहित्य के सर्वश्रेष्ठ कवि बन जाते हैं। अपने उत्कृष्ट शिल्प द्वारा बिहारी हमें क्षण भर के लिए ही आन्दोलित कर जाते है, परन्तु उनके भावों की अनुगूंज अधिक समय तक स्थायी नहीं रह पाती। शुक्ल जी ने बिहारी की इस निर्बलता को पकड़ लिया था और उनके काव्यशिल्प, भाषा-सौन्दर्य, रस-व्यंजना आदि प्रशंसा करते हुए लिखा था कि-जो हृदय के अन्तराल पर मार्मिक प्रभाव चाहते हैं, किसी भाव की स्वच्छ निर्मल धरा में कुछ देर अपना मन मग्न रखना चाहते हैं, उनका सन्तोष बिहारी से नहीं हो सकता। बिहारी का काव्य हृदय में किसी ऐसी लय या संगीत का संचार नहीं हो सकता, जिसकी स्वधारा कुछ काल तक गूंजती रहे। यदि घुले हुए भावों का आभ्यन्तर प्रवाह बिहारी में होता तो वे एक-एक दोहे पर ही संतोष न करते, मार्मिक प्रभाव का विचार करें तो देव और पद्‌माकर के कवित्त सवैयों का-सा गूंजने वाला प्रभाव बिहारी के दोहों पर नहीं पड़ता ।

अन्त में हम विश्वम्भर मानव के शब्दों में कह सकते हैं-'बिहारी की कला हृदय की सहज उपज का परिणाम नहीं-वह अभ्यास साध्य है। कवि के भाव को ठीक समझने के लिए उससे परिचित होना आवश्यक है। वह कला कई बातों पर निर्भर करती है जैसे रस, अलंकार, नायिक भेद, शब्द, शक्ति, प्रसंग-विधान और भाषा। पाठक को यदि इनमें से एक का भी ज्ञान नहीं तो वह बिहारी के काव्य सौन्दर्य से अपरिचित रहेगा। डॉ॰ शिकुमार शर्मा के शब्दों में कहा जा सकता है कि बिहारी रीति काल के एक सजग कलाकार हैं। वे वचन भंगिमा से सिद्ध-हस्त हैं। बिहारी की वैयक्तिक और उनके युग की परिसीमाएं उनके साथ हैं। उनके द्वारा चित्रित जीवन कहीं-कहीं मटमैला और गन्दला है, पर आखिर धरती का ही जो जीवन है। इतना तो निश्चित है कि बिहारी और उसकी सतसई का एक ऐतिहासिक महत्त्व है। जैसे चन्दबरदाई, कबीर, जायसी, सूर, तुलसी, हरिश्चन्द्र, मैथिलीशरण गुप्त और जयशंकर के बिना काव्य के विभिन्न युगों का इतिहास नहीं लिखा जा सकता, वैसे ही रीतिकाल के दो सौ वर्षो से कड़ी टूटी हुई दिखाई देगी, यदि उसमें से बिहारी का नाम निकाल दिया जाये। बिहारी का काव्य उस युग की रुचियों और प्रवृत्तियों का एक सुन्दर निदर्शन है।

स्वयं आकलन के प्रश्न

1. बिहारी का जनम कब हुआ?
2. बिहारी की किसी एक रचना का नाम लिखों।
3. बिहारी की मृत्यु कब हुई?

13.4 सारांश

सारांश रूप में कह सकते है कि बिहारी रीतिकाल के प्रसिद्ध कवियों में से एक कवि हैं। उन्होंने अपने काव्य में रीति का अनुसरण नहीं किया यद्यपि वे रीति के जानकार थे। भाषा की दृष्टि से उनका काव्य श्रेष्ठ काव्य कहा जाता है।

13.5 कठिन शब्दावली

सखि–सखी, सहेली, **द्विज**– विद्वान। **परागु**–पराग। **नैननु**– नयन। **खिलत**–खिलना। **सुधर**–अच्छा घर।

13.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

1. 1595 ।
2. बिहारी सतसई ।
3. 1663 ।

13.7 सन्दर्भित पुस्तक

1. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र–बिहारी।

13.8 सात्रिक प्रश्न

1. बिहारी का जीवन परिचय लिखों।
2. बिहारी की रचना का संक्षिप्त परिचय लिखों।
3. बिहारी की साहित्यिक विशेषताओं को लिखों।

*****

इकाई–14
बिहारी : व्याख्या भाग

संरचना

14.1 भूमिका

14.2 उद्देश्य

14.3 बिहारी : व्याख्या भाग

स्वयं आकलन प्रश्न

14.4 सारांश

14.5 कठिन शब्दावली

14.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

14.7 संदर्भित पुस्तक

14.8 सात्रिक प्रश्न

14.1 भूमिका

बिहारी हिंदी साहित्य के प्रसिद्ध कवियों में से एक है। उन्होंने अपने काव्य में काव्यशास्त्र के विविध पक्षों का वर्णन किया है।

14.2 उद्देश्य

1. बिहारी के जीवन परिचय का बोध।
2. बिहारी की रचनाओं का ज्ञान।
3. बिहारी की रचनाओं में वर्णित विषय का ज्ञान ।

14.3 बिहारी : व्याख्या भाग

1 दोहा

अपने अंग के जानि कै, जोबन नृपति प्रवीन।
स्तन, मन, नैन, नितंब की, बड़ै इजाफा कीन।।

प्रसंग : प्रस्तुत दोहा हमारी हिन्दी की पाठ्य–पुस्तक 'मध्यकालीन हिदी कविता' में संकलित रीतिकाल के सर्वाधिक प्रसिद्ध कवि 'बिहारी' के 'दोहों' से लिया गया है।

संदर्भ : इस दोहे में कवि ने एक नवयौवना मुग्धा नायिका के शारीरिक परिवर्तनों का चित्रण किया है।

व्याख्या : प्रस्तुत दोहा में कवि बिहारी कहता है के यौवन रूपी राजा बहत चतुर है, उसने नायिका के युवा होते ही उसके उन अंगों को अधिक विकसित कर दिया है? उसने नायिका की आँखों की चंचलता, स्तनों और नितंबों की आकार को बढ़ा दिया है। नायिका के शारीरिक परिवर्तन से उसका योवन झलकता है।

विशेष :

1. प्रस्तुुत दोहा में कवि ने नायिका के यौवन का चित्रण किया है।
2. सरल, सहज तथा सरस ब्रज भाषा का प्रयोग।
3. श्रृगार रस का प्रयोग।
4. अनुप्रास, रूपक अलकारों का प्रयोग।

2 दोहा

पिय–विछुरन की दुसहु दुख, हरषु ज्ञात प्यौसार।
दरजोपन लौं देखियति, तजत प्रान इहि बार।।

प्रसग: प्रस्तुत दोहा हमारी हिन्दी की पाठ्य–पुस्तक 'मध्यकालीन हिंदी कविता' में संकलित रीतिकाल के सर्वाधिक प्रसिद्ध कवि 'बिहारी' के 'दोहो' से लिया गया है।

सदर्भ : प्रस्तुत दोहे में कवि ने एक नायिका जो अपने पति के घर से मायके जाती है। उसकी मनोदशा का वर्णन किया है।

व्याख्या : कवि बिहारी कहता है कि नायिका ससुराल से मायके जा रही है। अपने माता–पिता के सम्बन्धियों से मिलने को असीम खुशी के साथ–साथ उसे पति से बिछुड़ने का असहनीय दुःख भी हो रहा है। कवि बिहारी कहता है कि नायिका की यह दोनों प्रकार की अवस्था शापग्रस्त दुर्योधन के समान है जिसे शाप था कि वह मरते तुम्हारा शारीर दुख और सुख दोनों अवस्था को एक साथ भोगेगा। कवि कहता है के दुख–सुख अवस्था में यह युवती अपने प्राण त्यागने जा रही है।

विशेष :

1. नायिका की दुविधाग्रस्त मनः स्थिति का सजीव चित्रण हुआ है।
2. सरल, सहज ब्रज भाषा का प्रयोग।
3. वियोग श्रृंगार का प्रयोग।
4. अनुप्रास एवं उपमा अलंकारो का प्रयोग।

3 दोहा

अजा तरयौना ही रह्यौ, श्रति सेवक इक रंग।
नाक बास बेसरि तह्यौ, बस मुकुतनु के सग।।

प्रसंग: प्रस्तुत दोहा हमारी हिन्दी की पाठ्य–पुस्तक 'मध्यकालीन हिंदी कविता' में संकलित रीतिकाल के सर्वाधिक प्रसिद्ध कवि बिहारी के 'दोहों' से लिया गया है।

संदर्भ: प्रस्तुत दोहे में कवि ने एक नायिका के रूप सौन्दर्य और उसके श्रृंगार का संयोजन का चित्रण किया है।

व्याख्या: कवि कहता है कि नायिका के कानों में लटका झुमका सदा से कान के साथ एकनिष्ठ एवं सम्मान के भाव से लटका रहा है, और नाक के आभूषण में जड़ा मोती, नाक पर स्थान पाकर यश पा गया है। दूसरी और बेसर अर्थात् अज्ञानी, निकृष्ठ प्राणी को जब 'मुक्तन' अर्थात् मुक्त या साधु–महात्माओं सन्यासियों का साथ मिला तो यह भी 'वाक' अर्थात स्वर्ग को पा गया।

विशेष :

1. प्रस्तुत दोहे में कवि ने एक नायिका के रूप सौन्दर्य।
2 सरल, सहज ब्रज भाषा का प्रयोग।
3. श्रृंगार रस का प्रयोग।
4. अनुपास का प्रयोग।

4 दोहा

तो पर वारों उरवसी, सुनि राधिके सुजान।
तू मोहन कै उर बसी हुवै उरवसी–समान ।।

प्रसंग : प्रस्तुत दोहा हमारी हिन्दी की पाठ्य–पुस्तक 'मध्यकालीन हिंदी कविता' में संकलित रीतिकाल के सर्वोधिक प्रसिद्ध कवि 'बिहारी' के 'दोहों से लिया गया है।

संदर्भ : प्रस्तुत दोहे में कवि ने एक नायिका के रूप सौन्दर्य का चित्रण किया है।

व्याख्या: हे चतुर राधा। तुम इतनी अधिक सुन्दर हो कि में तुम्हारे ऊपर उवेशी नामक अप्सरा को भी न्योछावर कर सकता हूँ। तुम श्रीकृष्ण के ह्रदय में उसी प्रकार निवास करती हो जैसे नायिका अपने ह्रदय में उर्वशी नामक आभूषण को धारण करती है। अर्थात् तुम्हें छोड़कर किसी अन्य युवती से प्रेम नहीं कर सकता।

विशेष–

1. कवि ने राधा के अद्वितीय सौन्दर्य का वर्णन किया है।
2. सरल, सहज भाषा का प्रयोग।
3. श्रृंगर रस का प्रयोग ।
4. यमक अलंकार का प्रयोग हआ है।

5 दोहा

नहि परागु, नहि मधुर मधु, नहि विकासु इहिं काल।
अली, कली ही सो बंप्यो, आगे कोन हवाल ।।

प्रसंग : प्रस्तुत दोहा हमारी हिन्दी की पाठ्‌य–पुस्तक 'मध्यकालीन हिंदी कविता' में संकलित रीतिकाल के सर्वाधिक प्रसिद्ध कवि 'बिहारी' के 'दोहों' से लिया गया है।

सन्दर्भ : प्रस्तुत दोहे में कवि ने एक नायिका के रूप सौन्दर्य पर आसक्त राजा की मानसिक स्थिति का चित्रण किया है ।

व्याख्या : हे भ्रमर ! तू अभी से इस कली के मोहपाश में पड़ गया जबकि यह कली अभी न तो पुष्परज है और न मधुर मकरन्द है। यदि तु अभी से इसके प्रेमपाश में पड़ गया है यदि यह फूल बन गया तो तब तुम्हारी क्या दशा होगी। अर्थात है नायक! तम जिस नायिका से प्रेम करने लगे हो वह अल्पवयस्का है, यौवन के लक्षण अभी उसमें दिखायी नहीं देते हैं। यदि तम अभी से उस कमसिन कन्या पर इतने आसक्त हो गये हो तो तब तुम्हारी क्या दशा होगी जब वह पूर्ण युवती बन जाएगी।

विशेष :

1. नायिका के रूप सौन्दर्य का चित्रण।
2. सरल, सहज ब्रजभाषा का प्रयोग।
3. श्रृंगार रस का प्रयोग।
4. अनुप्रास व अन्योक्ति अलंकारों का प्रयोग।

6 दोहा

रस सिंगार–मंजनु किए, कंजनु मंजनु दैन।
अंजनु रंजनु हूँ बिना खंजनु गंजनु नैन।।

प्रसंग : प्रस्तुत दोहा हमारी हिन्दी की पाठ्‌य–पुस्तक "मध्यकालीन हिंदी कविता' में संकलित रीतिकाल के सर्वाधिक प्रसिद्ध कवि 'बिहारी' के 'दोहों' से लिया गया है।

संदर्भ : प्रस्तुत दोहे में कवि ने नायिका के नेत्रों के सौंदर्य का वर्णन किया है।

व्याख्या : श्रृंगार रस में स्नान किए हुए नायिका के सुन्दर नेत्र कमलों को भी पराजित करते हैं। तात्पर्य यह है के श्रृंगार के कारण नायिका के नेत्र इतने अधिक सुन्दर हैं कि उनके समक्ष कमल भी हीन लग रहे हैं। ये नेत्र इतने अधिक सुन्दर हैं कि वे बिना काजल लगाए ही खंजन पक्षियों को भी तिरस्कृत कर देते हैं। भाव यह है कि नायिका के सुंदर नेत्रों के समक्ष खंजन और कमल भी हीन लग रहे हैं।

विशेष :

1. नायिका के सून्दर नेत्रों का मनोहारी वर्णन किया है।
2. सरल, सहज ब्रजभाषा का प्रयोग।
3. श्रृगार रस का प्रयोग।
4. अनुप्रास तथा प्रतीप अलंकारों का प्रयोग।

दोहा 7

अंग–अंग–नग जगमगत, दीपसिखा सी देह।
दिया बढ़ाएँ हैं रहे बड़ी उज्यारी गेह।

प्रसंग : प्रस्तुत दोहा हमारी हिन्दी की पाठय– पुस्तक 'मध्यकालीन हिंदी कविता' में सकलित रीतिकाल के सर्वाधिक प्रसिद्ध कवि बिहारी के 'दोहों' से लिया गया है।

संदर्भ : प्रस्तुत दोहे में कवि ने नायिका के अदभुत सौंदर्य का मनोहारी वर्णन किया है।

व्याख्या : नायिका ने अपने अंग–प्रत्यंगों में जो आभूषण पहने हैं, उसमें अनेक (रत्न) जड़े हए है जिसकी कान्ति उसके अंगो पर भी पड़ रही है। इससे नायिका का सम्पूर्ण शरीर जगमगा रहा है। नायिका की सखी कहती है कि नायिका के शरीर की कान्ति इतनी उज्ज्वल है कि घर में दीपक बुझाने पर भी प्रकाश फैला रहता है।

विशेष :

1. कवि ने नायिका के सुन्दर शरीर की कान्ति का मनोहारी चित्रण।
2. सरल, सहज ब्रजभाषा का प्रयोग।
3. श्रृगार रस का प्रयोग।
4. विरोधाभास अलकारों अलंकार का प्रयोग।

8 दोहा

घुटी न सिसुता की झलक, झतक्यौं जोबनु अंग।
दीपति देह दुडून मिलि दिपति ताफता–रंग।।

प्रसग : प्रस्तुत दोहा हमारी हिन्दी की पाठ्य–पुस्तक 'मध्यकालीन हिंदी कविता' में संकलित रीतिकाल के सर्वाधिक प्रसिद्ध कवि 'बिहारी' के 'दोहों' से लिया गया है।

संदर्भ : प्रस्तुत दोहे में एक सखी नायक के समक्ष नायिका के सौदर्य का वर्णन करती हुई कहती है–

व्याख्या : प्रस्तुत दोहे में कवि नायिका की सखी नायिक के सामने नायिका सौदर्य का वर्णन करती हुई कहती है– नायिका के शरीर से उसकी शैशवावस्था की झलक (कान्ति) समाप्त नहीं हई है। लेकिन उसके शारीरिक अंगों से यौवन झलकने लगा है। अर्थात् नायिका वयःसन्धि को प्राप्त है, न तो यह बालिका है, न ही पूर्ण यौवना। शिशुता यौवन के बीच की अवस्था उसके शरीर में इस प्रकार सुशोभित हो रहा है जैसे ताफता नामक वस्र अपनी दोहरी कान्ति के कारण चभकता है।

विशेष :

1. नायिका के सौदर्य का सजीव एवं मनोहारी वर्णन।
2. सरल, सहज ब्रजभाषा का प्रयोग।
3. श्रृगार रस का प्रयोग।
4. अनुपास एवं उत्पेक्षा अलंकारों प्रयोग।

9 दोहा

"कहां कहीं बाकी दशा, हरि प्रानन के ईस।
विरह ज्वाल जारिबी लर्ख, मरिबो मई असीस ।।"

प्रसगः प्रस्तुत दोहा हमारी हिन्दी की पाठ्य पुस्तक 'मध्कालीन हिंदी कविता' में संकलित रीतिकाल के सर्वाधिक प्रसिद्ध कवि 'बिहारी' के 'दोहों' से लिया गया है।

संदर्भ : प्रस्तुत दोहे में कवि ने नायक नायिका के मधुर मिलन और उनके वियोग के क्षणों का सुन्दर चित्रण प्रस्तुत किया है।

व्याख्या : प्रस्तुत दोहे में नायिका की एक सखी नायक से कहती है कि मैं उसकी विरह–व्यथा का वर्णन क्या करे? आप तो उसके प्राणों के स्वामी है। उसको विरहाग्नि में जलते हुए और व्याकुल होते हुए देखकर तो ऐसा लगता है कि उसे इस प्रकार से व्याकुल होने से अच्छा ईश्वर उसे मरने का आशीर्वाद प्रदान करे। अर्थात् नायिका विरह–व्यथा से इतनी अधिक है कि उसकी पीड़ा हमसे भी देखी नहीं जाती। ऐसी अवस्था में जीने से तो अच्छा है कि वह मर जाए।

विशेष :

1. प्रस्तुत दोहे में नायिका की विरह पीड़ा का मार्मिक चित्रण किया है।
2. सहज, सरल ब्रजभाषा का प्रयोग।
3. श्रृगार रस का प्रयोग।

10 दोहा

छत्ता छबीले लाल को, नवत नेह सा हिनारि।
चूमति, चाहति लाय उर, पहिरति परति उतारि ।।

प्रसंग : प्रस्तुत दोहा हमारी हिन्दी की पाठ्य–पुस्तक 'मध्यकालीन हिंदी कविता' में संकलित रीतिकाल के सर्वाधिक प्रसिद्ध कवि 'बिहारी' के 'दोहों' से लिया गया है।

संदर्भ : प्रस्तुत दोहे में कवि ने पूर्वानुरागिनी नायिका की प्रेमदशा का सजीव चित्रण किया है।

व्याख्या : प्रस्तुत दोहे में कवि कहता है कि नायिका को नया–नया प्यार प्राप्त हुआ है अर्थात् उसने पहली बार प्यार का अनुभव किया है और उसके सुन्दर प्रियतम ने उसे एक अंगूठी भेंट स्वरूप दी है। नायिका उस अंगूठी पर अत्यधिक मुग्ध है। कभी वह उसे चूमती है, कभी प्यार भरी नजरों से निहारती है और कभी प्याार से छाती से लगा लेती है। कभी यह उसे अपनी अंगुली में पहन कर देखती है, कभी उसे अंगुली से निकाल कर छुपा भी लेती है।

विशेष

1. प्रस्तुत दोहे में नायिका की विरह पीड़ा का मार्मिक चित्रण किया है।
2. सहज, सरल ब्रजभाषा का प्रयोग।
3. श्रृंगार रस का प्रयोग।

स्वयं आकलन के प्रश्न

1. बिहारी का जन्म कब हुआ ?
2. बिहारी की रचना का नाम लिखों।
3. बिहारी की मृत्यु कब हुई ?

14.4 सारांश

सारांश रूप में हम कह सकते है कि बिहारी लाल ने हिंदी सहित्य के लिए सतसई की रचना कर हिंदी सहित्य को समृद्ध किया है।

14.5 कठिन शब्दावली

अपने अंग – अपने पक्ष या दल का। **जोबन** – यौवन। **नृपति** – राजा। **प्रवीन** – चतुर, निपुण। **पिय**– प्रियतम, पति। **दुसहु** – असहनीय। **हरषु** – प्रसन्नता। **प्यौसार** – पिता का घर। **दुरजोधन** – दुर्योधन। **तजत** – त्यागना। **अजों** – अभी भी । **तरयौना** – कर्णफूल । **श्रुति** – कान, वेद। **वारों** – न्योछावर। **उरबसी** – उर्वशी। **उर बसी** – हृदय में बसी हुई। **उरबसी** – हृदय पर पहनने वाला उवेशी नामक आभूषण। **परागु** = पुष्परज। **मयु** = मकरन्द। **मंजनु** = स्नान। **कंजनु** – कमल को। **भंजनु** – पराजित करने वाला, हराने वाला। **अंजनु** – काजल! **खंजन**– खंजन नामक काले रंग का पक्षी। **मंजन** – तिरस्कार करना। **जगमगत**– जगमगाता। **दीपसिखा** – दीपक की लौ। **देह** – शरीर। **दिया बढ़ाएँ** – बुझाए हुए । **उन्यारी** – उजाला। **सिसुता** – बाल्यावस्या। **जोबनु** – यौवन। **अलक्यौ** – झलकने लगा। **मरिबी**– मर जाना। **जग्रीस** – आशीर्वाद। **छला** – छल्ला, अंगूठी। **छबीला** – सुन्दर। **नेह** – प्यार।

14.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

1. 1595 ।
2. बिहारी सतसई ।
3. 1663 ।

14.7 संदर्भित पुस्तक

1. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र– बिहारी।

14.8 सात्रिक प्रश्न :

1. बिहारीलाल के काव्य की काव्यगत विशेषताएँ लिखियें।
2. बिहारीलाल की काव्यभाषा पर नोट लिखों।

*****

इकाई–15
बिहारी और रसखान की काव्यगत विशेषता

संरचना

15.1 भूमिका
15.2 उद्देश्य
15.3 बिहारी की काव्यगत विशेषता
स्वयं आकलन प्रश्न–1
15.4 रसखान की काव्यगत विशेषता
स्वयं आकलन प्रश्न–2
15.5 सारांश
15.6 कठिन शब्दावली
15.7 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर
15.8 संदर्भित पुस्तकें
15.9 सात्रिक प्रश्न

15.1 भूमिका

बिहारी की अभिव्यक्ति के प्रसाधनों अथवा काव्य–भाव की चर्चा करते समय जो बातें प्रमुख रूप से हमें आकर्षिक करती है, उनमें शृंगार भक्ति और नीति और प्रकृति चित्रण सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है।

15.2 उद्देश्य

1. बिहारी के काव्य की विशेषताओं का बोध।
2. रसखान की काव्यगत विशेषताओं का बोध।
3. बहारी की काव्य भाषा का ज्ञान।
4. रसखान की काव्य भाषा का बोध।

15.3 बिहारी की काव्यगत विशेषता

● शृंगार

बिहारी की सतसई में संयोग और वियोग शृंगार की एक अनूठी व्यंजना हुई है। किन्तु वे शृंगार के संयोग पक्ष में जितने अधिक रमे हैं, उतने वियोग पक्ष में नहीं। संयोग शृंगार का निम्नांकित उदाहरण दृष्टव्य है–

मैं मिसहा सोयौ समुझि मुंहचूम्यों ढिंग जाई।
हंस्यौ खिसानी, गल गहयो रही गरै लपटाई।

इसी प्रकार वियोग शृंगार का भी उदाहरण अवलोकनीय है–

कर लै चूमि चढ़ाई सिर उर लगाइ भुज भेंति।
लहि पाती पिय की लखति बांचति ध्रति समेटि।।

बिहारी का संयोग वर्णन जितना सफल हुआ है, उतना वियोग वर्णन नहीं। विरह जीवन की एक गम्भीर स्थिति है। इसका मार्मिक वर्णन नहीं कर सकता। यही बात कवि बिहारी के साथ हुई है। उनका मन वियोग वर्णन में रमा नहीं है वरन् वे खिलवाड़ और पहेलियां बुझाने में ही लग गए हैं। यही नहीं अनेक अत्युक्ति पूर्ण मंजमून बांधने का दोष भी उनके विरह वर्णन में आ गया है। एक उदाहरण दर्शनीय है –

इत आवति चलि जात उत चली छः सातक हाथ।
चढ़ि हिंडोरे सी रहै लगी उसासन साथ ।।

इन्हीं बातों को देखकर ही शुक्ल जी ने लिखा है–भावों का बहुत उत्कृष्ट और उदात्त स्वरूप बिहारी में नहीं मिलता। दिनकर जी का यह कथन भी इस दृष्टि से उल्लेखनीय है–'बिहारी के दोहों में न तो कोई बड़ी अनुभूति है न कोई ऊँची बात सिर्फ लड़कियों की कुछ अदाएं है, मगर कवि ने उन्हें कुछ ऐसे ढंग से चित्रित किया है कि आज तक रसिकों का मन कचोट खाकर रह जाता है जो कविता में ऊँची अनुभूति या ज्ञान की बड़ी–बड़ी बातों की तलाश में रहते हैं, बिहारी की कविताओं से उन्हें अपने लिए चुनौती मिलेगी।

• अनुभव–विधान

बिहारी के दोहों का अनुभव विधान अत्यन्त प्रभावपूर्ण तथा रसाभिव्यंजक है। इन्होंने हावों–भावों की ऐसी सुन्दर योजना की है कि कोई भी इनका समकालीन श्रृंगारी कवि इनकी क्षमता नहीं कर सका। इनके वर्णन को पढ़ कर ऐसा प्रतीत होता है मानो इन्होंने सजीव हाव–भाव भरी मूर्तियां तैयार कर दी हों। एक उदाहरण अवलोकनीय है–

बतरस लालच लाल की मुरली धरी लुकाय।
सौंहे करै भैहनि हंसै देन कहै नटि जाय ।।

• भक्ति और नीति

बिहारी सतसई में प्रमुखता तो श्रृंगार की है परन्तु भक्ति और नीति के दोहों का भी सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है। बिहारी भक्त कवि नहीं थे। इसलिए इन्होंने निर्गुण, सगुण, नाम स्मरण, प्रतिबिन्बवाद, अद्वैतवाद आदि की महिमा मुक्त कंठ से गायी है। बिहारी की दृष्टि राधा की तन द्युति पर टिकी रहती है, मन तक नहीं जा पाई है। इसी प्रकार नीति की उक्तियाँ थी मात्र बाह्य कवच है। जिन्हें उन्होंने बिहारी सतसई में अनेक स्वाद भरने के लिए प्रयोग किया है। इनकी भक्ति–नीति पूर्ण उक्तियों के उदाहरण दृष्टव्य है–

भक्ति – **पतवारी माला पकरी और न कुछ उपाउ ।**
तरि संसार पयोद्यि की, हरि नाम करि नाउ ।।

नीति – **दुसह दुराज प्रजानु को, क्यों न बढ़ै दु:ख द्वन्द्व ।**
अध्कि अंध्रौ जग करत मिलि मानस रविचन्द्र ।।

• उक्ति वैचित्र्य विनोद

किसी बात को कहने का बिहारी का अपना निराला ढंग है। वे अपनी प्रतिभा शक्ति के माध्यम से एक नई बात उपस्थित कर देते हैं। बिहारी ने शब्दों को इतना नापा–तोला है कि अनेक स्थान पर पर्यायवाची शब्दों को रख देने से अर्थ का अनर्थ हो जाता है और दोहे का सम्पूर्ण काव्य सौंदर्य मारा जाता है। इस सम्बन्ध में उनकी यह उक्ति दर्शनीय है–

दृग उरझत, टुटत कुटुम, जुरत चतुर चित प्रीति ।
परति गांठ दुरजन हिए, दई नई यह रीति।।

इसी प्रकार उनकी उक्तियों में कहीं–पानी पीकर प्यास नहीं बुझती है जिससे बिहारी के दोहे खरादे हुए, स्वर्ण जटिल रत्नों के समान काव्य प्रभा से मंडित हो उठे हैं।

बिहारी ने बहुत-सी उक्तियां सज्जन, दुर्जन, कला-प्रेम और मनुष्य के स्वभाव को लक्ष्य करके कही हैं जो कि बड़ी ही सरल, सहज और स्वाभाविक बन पड़ी है-

बड़े न हूजै गुननु बिनु विरद बड़ाई पाइ।
कहत धतुरे सौं कनकु गहनौ गढ़ी न जाई।।

- **प्रकृति चित्रण**

प्रकृति सौन्दर्य का वर्णन कवि बिहारी ने छुट-पुट रूप से ही किया है। इनका प्रकृति वर्णन चित्रांकन और नाद सौन्दर्य की दृष्टि से अनुपम बन पड़ा है। बिहारी ने प्रकृति को मनुष्य स्वभाव से बहुत कुछ प्रभावित माना है, अत: उन दोनों का चित्रण उन्होंने आमने-सामने रखकर किया है। उदाहरणार्थ-

'रंनित भृंग घंटावली झरति दान मधु नीर ।
मद-मंद आवतु चल्यौ कुंजरू कुंज समीर ।
बैठि, रही अति सघन बन पैठि सदन तन मांह ।
देखि दुपहरी जेठ की छांहौं चाहती छांह ।

बिहारी एक सजग कलाकार थे। वे भावावेश की दशा में काव्य-रचना न कर पर्याप्त संतुलित और सावधान मन से एक-एक भाव को तोलते और उसके अनुरूप एक-एक सटीक अलंकार का प्रयोग करते थे। प्राय: उनके अलंकारों की सुन्दर योजना हुई है। इनके काव्य में उपमा, उत्प्रेक्षा और रूपक आदि का प्रयोग हुआ है। इसके अतिरिक्त है- उक्ति वैचित्र्यगत चमत्कार भी बिहारी सतसई में सर्वत्र दृष्टिगत होता है। बिहारी काव्य-कला के चतुर शिल्पी थे, अत: उनके काव्य में इस प्रकार की अनेक शिल्पगत सूक्ष्मताएं विद्यमान हैं। उनकी शिल्पगत विशेषताएं निम्नांकित शीर्षकों के अन्तर्गत विभक्त की जा सकती हैं-

- **उत्कृष्ट पर संघटना**

बिहारी मुक्तककार होने के नाते छोटे से दोहा छन्द में कथ्य को बड़े कौशल के साथ ही भर सकते थे जबकि 'रीति' में विश्वास रखने के कारण भी वे 'पद संघटना' पर बल देते थे। बिहारी के काव्यत्व का यह प्राण तत्व है कि वे कितने कौशल से श्रृंगार रसोचित माधुर्य व्यंजक पदों की नियोजना करके विलक्षण रमणीयता उत्पन्न करने में सफल हुए हैं। कुछ उदाहरणों से इस कथन की पुष्टि की जा सकती है-

जंघ जुगल लोइन निरे करे मनौ विधि नैन ।
केलि-तरून दुख दैन ए, केलि-तरून सुख दैन ।।

इसी प्रकार अन्यत्र एक दोहे से सानुप्रासिक पद-योजना द्वारा माधुर्य की वृद्धि की गई है-

रस-सिंगार-मंजनु किए खंजनु भंजनु दैन ।
अंजून रंजन हूं बिना कंजनु गंजनु नैन ।।

भावानुरूप शब्द चयन की दृष्टि से तो बिहारी की लेखनी का लोहा मानना पड़ता है। नीचे के दोहे में कुछ ही शब्दों से माधुरी सृष्टि करने का कौशल देखा जा सकता है-

ज्यों-ज्यों आवति निकट निसि, त्यों-त्यों खरी उताल ।
झमकि झमकि रहलै करै लगी स्वहटै बाल।।

- **समास पद्धति परक कसाव**

बिहारी की मुक्तक कला के प्रसंग में यह बात अक्सर कही जा सकती है कि बिहारी अत्यन्त लघु आकारीय छन्द में अपने कथ्य को इतना कूट-कूट कर भरते हैं कि उसमें समास पद्धति का सहारा लेना पड़ता है। यही समास-शैली अभिव्यक्तिगत कसाब लाने में समर्थ रहती है। बिहारी की काव्य कलात्मक

उपलब्धि में भाषा एवं शैली की सामासिकता का इसलिए भी महत्व है कि भावगत तीव्रता एवं संक्षिप्तता के कारण प्रखर आवेग सर्वत्रा सुरक्षित रहा है, जिसके आधार पर उनके दोहों में 'गागर में सागर भरने' की बात कही गई है या उनके दोहों का 'नाव के तौर' कहकर देखने में छोटे लगने पर भी गहरा घाव करने वाला कहा गया है। यह सब इसी समास शैली के कारण सम्भव हुआ है। अनेक सन्दर्भो को एक-एक शब्द मात्र से व्यंजित करने की कला में बिहारी समूचे हिन्दी साहित्य में अपना प्रतिद्वन्द्वी नहीं रखते। एक-दो उदाहरण से इस सत्य की पुष्टि जी जा सकती है-

मैं मिसहा सोयौ सुमझि, मुंह चूम्यौ ढिंग जाइ।

हंस्यौ, खिसानी गल गह्यौ, रही गरै लिपटाई।।

इसी प्रकार के दोहों को देखकर डॉ० रमाशंकर तिवारी को बिहारी की इस विशेषता के विषय में निम्न मत व्यक्त करना पड़ा है- बिहारी की इस समास पद्धति का रहस्य यह है कि उनकी रचना कहीं से शिथिल अथवा लचर नहीं होने पाई है। उसमें एक कसावट है, एक चुस्ती है, एक सजगता है, जो भाव को प्रत्येक प्रसंग में चमत्कृत कर देती है।

बिहारी की यह समास शैली श्लेष एवं रूपक अलंकारों की सहायता से भी जुटाई गई है। दोनों अलंकारों के उदाहरणों से इस कथन की पुष्टि हो जाएगी। श्लिष्ट पद योजना द्वारा उत्पन्न कसावट देखिए-

चिरंजीवों जुरै, क्यों जनारी सनेह गंभीर ।

को घटि ए बृजभानुजा वे हलधर के बीर ।।

एक अन्य दोहे में सांगरूपक की योजना द्वारा उत्पन्न कसावट अवलोकनीय है-

खौरि पनिच, भृकुटी-ध्नुष, बीध्कु-समरू तजि कानि ।

हनतु तरून-मृग तिलक-सुर कमान भरि तानि ।।

- **वैदग्ध्य की नियोजना**

बिहारी के काव्य में वाग्विदग्ध्ता एवं क्रियाविदग्दाता के उदाहरणों के आधार पर कवि की कल्पना कुशलता का परिचय प्राप्त हो जाता है। उदाहरणार्थ बिहारी के काव्योद्यान में प्रवेश करते ही हमें मंगलाचरण के रूप में जिस प्रथम पुण्य के दर्शन होते हैं, उसमें भक्ति-भावना की सुगंध, शृंगार भावना की कोमलता एवं सरसता तथा काव्य के कला-पक्ष की कारीगरी- ये तीनों गुण एक ही स्थान पर एकत्र मिलते हैं-

मेरी भव-बाधा हरौ, राध नागरि सोइ ।

जा तन की झाँई परै, श्यामु हरि दुति होइ ।।

अर्थात् हे चतुर राधा, मेरे जन्म-मरण-सम्बन्धी अथवा सांसारिक दुःखों को दूर करो। तुम्हारे शरीर की आभा के आगे कृष्ण का सौंदर्य भी फीका पड़ जाता है अथवा तुम्हारी छाया-मात्र को देखने से ही श्रीकृष्ण जी आनन्द-मग्न हो जाते है अथवा तुम्हारे शरीर के पीत वर्ण की आभा पड़ने से नील वर्ण वाले श्रीकृष्ण हरित वर्ण के हो जाते हैं।

काव्य में वचन-भंगी का बहुत महत्व होता है, जबकि बिहारी की लेखनी की कुशलता के कारण ऐसे स्थल अत्यन्त व्यंजक बन गए है। एक ही उदाहरण से यह बात स्पष्ट हो जाती है।

मानहु विधि तन अच्छ कवि स्वच्छ राखिवै काज ।

दृग-पग पोंछन कौ करे भूषण पायंदाज ।।

वाक्वैदग्ध्य उन स्थलों पर और निखर कर सामने आता है, जहां कवि ने विरोधमूलक कथनों की योजना की है-

रही लटू है लाल, हो लाखि वह बाल अनूप ।
कितौ मिठास दयौ दई इते सलौनें रूप ।।

कवि की भाव योजना उसके द्वारा किये गए हाव और अनुभावों के चित्रण में सफल रूप से अभिव्यंजित हुई है। नायिका नायक से वार्तालाप करने का साधन ढूंढती है। विचार करने पर वह नायक की मुरली छिपा देती है। नायक के पूछने पर वह कहती है कि –मैंने नहीं छिपाई, पर उसकी हंसी से प्रकट होता है कि मुरली उसके ही पास है। दो प्रेमी एवं विनोदशील सरस हृदयों का पारम्पारिक वार्तालाप को कवि ने बड़े सुन्दर शब्दों में व्यक्त किया है और रसिकेन्द्र बिहारी ने हाव-भावपूर्ण चित्र-सा खींच दिया है-

बतरस-लालच लाल की मुरली धरी लुकाई ।
सौंह करै भौंहनि हंसै दैन कहैं नटि जाई।।

ध्वनि एवं वर्ण चित्रों का अंकन

शब्द-ध्वनि के तीन प्रकार हैं-

1 रणनात्मक शब्द-ध्वनि ।

2 अनुकरणात्मक शब्द-ध्वनि ।

3 व्यंजक शब्द ध्वनि ।

बिहारी सतसई से इनके निम्नलिखित उदाहरण दृष्टव्य हैं-

1 **रणनात्मक ध्वनि चित्र**
रनित भृग घंटावली झरति दान मधु नीरू ।
मंद-मंद आवत चल्यौ कुंजक कुज-समीरू ।।

2 **अनुकरणात्मक शब्द ध्वनि –**
रूकयौ सांकरे कुंज मग करत झांझ झुकरात ।
लगै लांक लौझ भरी लाइनु लेति लगाइ ।।

3 **नादतत्व द्वारा व्यंजक चित्रों की सृष्टि-**
लहलछाति तन तरूनई लचि लग सौ लकि जाई ।
लगै लांक लौझ भरी लाइनु लेति लगाइ ।।

इन चित्रों के प्रसंग में डॉ० बच्चनसिंह ने ऐसे चाक्षुष चित्रों को जिनमें शब्द स्पर्श गंध रस आदि का समावेश हो, रेखाचित्र कहकर पुकारा है और बिहारी के दोहों के उदाहरण देकर उनकी रेखाचित्र-कला' का उद्घाटन किया है। रेखाचित्र पाठ की सोद्देश्यता के विषय में उनका मापक मानदण्ड यही रहा है कि वे रेखाचित्र पाठ की संवेदनाओं को जगाने और संवेगों को तीव्र बनाने में पर्याप्त योगदान करते हैं। एक उदाहरण द्वारा इस तथ्य की पुष्टि की जा सकती हैं।

पीठि दिए ही नैकु मरिकर-घुंघट पटु टारि ।
भरि गुलाल की त्राुटि सौं, गई मूहि सी मारि ।।

नायिका की पीठ किए हुए थोड़ा-सा मुड़कर नायक को देखना, तत्पश्चात् एक-एक हाथ से घूंघट उठाना तथा दूसरे से गुलाल की मुट्ठी भरकर नायक पर फैंकना एक सजीव बिम्ब का निर्माण करते हैं।

- **वर्ण चित्रता**

डॉ० नगेन्द्र के अनुसर बिहारी ने रेखाचित्र केवल आंके ही नहीं, अपितु उनमें रंग भी भरे हैं।

बिहारी और देव दोनों ने अपने चित्रों में वर्ण योजना का अद्भुत चमत्कार दिखाया है। कहीं

छाया-प्रकाश के मिश्रण द्वारा चित्र में चमक उत्पन्न की गई है, कहीं उपयुक्त पृष्ठभूमि देते हुए एक ही रंग को काफी चटकीला कर दिया गया है, और कहीं अनेक प्रकार से सूक्ष्म कौशल से मिलते हुए उसमें सतरंगी आभा उत्पन्न की गई है। उदाहरणार्थ यह दोहा अवलोकनीय है-

अधर घरत हरि के परत ओठ दीठि पर जोति ।
हरित बांस की बांसुरी, इन्द्रधनुष सी होति ।।

वय: सन्धि के वर्णन में रंगों का प्रयोग अति सूक्ष्मता, तरलता और कोमलता पूर्वक किया गया है-

छूटि न सिसुता की झलक झलक्यों जोवन अंग ।
दीपति देह दूहन मिलि दिपत तापफता रंग ।।

चमत्कार से अनुप्राणित होने पर कवि ने विरोधी रंगों के मेल से बड़ी उत्कृष्ट भाव-व्यंजना की है-

या अनुरागी चित की गति समुझे नहि कोय ।
ज्यौं-ज्यों डूबै स्याम रंग त्यौं त्यौं उज्जवल होय ।।

- **अलंकार योजना**

बिहारी ने अपने काव्य में वस्तु और भावों को स्पष्ट करने के लिए अलंकारों की योजना की है। उनकी अलंकार सुषमा का आंकलन दो शीर्षकों के अन्तर्गत किया जा सकता है-

अलंकार रूप धर्म एवं प्रभाव साम्य के आधार पर प्रस्तुत विषय को स्पष्ट करके पाठकों के सामने उभरकर आते हैं। इसके अन्तर्गत उपमा, रूपक एवं उत्प्रेक्षा अलंकार ही प्रमुख है। डॉ० अम्बा प्रसाद सुमन ने उचित ही कहा है-'अलंकारों की दृष्टि से 'बिहारी सतसई' के दोहों को देखें तो कोई दोहा ऐसा नहीं जो किसी शब्दालंकार या अर्थालंकार से चमत्कृत न हो, बहुत से दोहे तो दो-दो तीन-तीन अलंकारों से सुसज्जित हैं, जैसे -

उत्प्रेक्षा	-	**सोहत ओढ़े पीतु पटु स्याम सलोने गात ।**
		मनौ नलिमनि सैल पर आतपु पर्यौ प्रभात ।।
रूपक	-	**मंगल बिन्दु सुरंग, मुख ससि केसर आड़ गुरू ।**
		इक नारी लहि सग रसमय किय लोचन जुगल ।।
उपमा	-	**सहज सेत पयतोरिया पहरें अति छवि होति ।**
		चलचादर के दीप लौ जगमगति तन जोति ।।

अन्त में कहा जा सकता है कि बिहारी की सतसई मुक्तकों का मनोरम कोष काव्य है। इसमें बिहारी ने अनेक संवाद भरने का उपक्रम किया है। अतएव, बिल्कुल स्वाभाविक ढंग से वस्तुभाव तथा शिल्प, अनेक दृष्टियों में सतसई में गूढ़-अगूढ़ अर्थ खोजे गए हैं तथा आज भी यह प्रयत्न शिथिल नहीं हुआ है। वस्तुत: बिहारी की कविता इतनी प्रगलभ, इतनी विद्ग्धतापूर्ण एवं संकेत गर्भित है तथा इसकी समास-पद्धति में इतनी कसावट लाने का उपयोग किया गया है कि इसकी अनेक मन अनुकूल व्याख्याएं संभव हो सकी हैं। इसकी अर्थ विषयक समानताओं को ध्यान में रखते हुए ही डॉ ग्रियर्सन ने इसे 'अक्षर कामधेनु' कहा है।

स्वयं आकलन के प्रश्न-1

1. बिहारी की काव्य भाषा की दो विशेषता लिखिए।

2. बिहारी की दो काव्यगत विशेषता को स्पष्ट करें।

15.4 रसखान की काव्यगत विशेषताएं

प्रेमतत्व के निरूपण में रसखान को अद्‌भुत सफलता प्राप्त हुई है। उनका प्रेम वर्णन बड़ा सूक्ष्म, व्यापक एवं विशद् है। उनके काव्य का प्रमुख रस श्रृंगार है, जिसके आलंबन श्री कृष्ण है। उनके रूप पर मुग्ध राधा एवं गोपिकाओं की मन: स्थिति के चित्रण के माध्यम से रसखान ने श्रृंगार की मधुर अभिव्यंजना की है। श्रृंगार के उपरांत रसखान-काव्य में चित्रित दूसरा प्रमुख रस वात्सल्य है। श्री कृष्ण के बाल रूप की माधुरी का वर्णन उन्होंने यद्यपि गिन चुने छंदों में ही किया है, पर उनकी काव्यत्मक गरिमा सूर और तुलसी के बाल-वर्णन की समता करने में भली भांति सक्षम है। रसखान के साहित्यिक विशेषताएं निम्न हैं-

● निश्चल, निस्वार्थ एवं प्रगाढ़ प्रेम

रसखान की साहित्यिक रचनाओं में श्री कृष्ण के प्रति निश्चल, निस्वार्थ एवं प्रगाढ़ प्रेम का निरूपण हुआ है। इनका प्रेम इतना प्रगाढ़ है कि इनके जीवन का एक पल भी श्री कृष्ण के बिना अस्वीकार है। इस प्रकार में प्रभुभक्ति के माध्यम से प्रेम को नए रूप में गढ़ते नजर आते हैं। 'प्रेमवाटिका' नामक ग्रन्थ में प्रेम को दर्शन की भांति स्पष्ट होते हैं। 'प्रेमवाटिका' में वे लिखते है।

''प्रेम प्रेम सब कोउ कहत, प्रेम न जानत कोई।
जो जन प्रेम तौ, मरै जगत क्यों रोइ।।''

● कृष्ण के रूप-सौन्दर्य का चित्रण

रसखान ने भगवान कृष्ण में अपनी अनन्त भक्ति के कारण भगवान श्री कृष्ण के सौंदर्य से तीनों लोकों के सौंदर्य को पराजित करने वाले नायक के रूप चित्रित किया है। यही कारण है कि इनके कवित्त-सवैयों में भगवान कृष्ण के अनुपम, अप्रतिम एवं अलौकिक रूप-सौन्दर्य का चित्रण किया है। उनके काव्य में श्री कृष्ण के रूप सौंदर्य का चित्रण इस प्रकार देखा जा सकता है।

''कल कानन-कुंडल, सिर मोरपखा, उर पै बनमाल विराजित है।
मुरली कर में अधरा मुसकानि, तरंग महाछवि छाजत्ति है।''

● अनन्य भाव से भक्ति

रसखान के काव्य में कृष्ण भक्ति को बहुत महत्व प्रदान किया गया है। उन्हें कृष्ण से जुड़ी प्रत्येक वस्तु से अगाध प्रेम है। जिस कारण उन्हें ब्रज क्षेत्र, यमुनातट, वहां के वन और बाग, पशु-पक्षी, नदी-पर्वत आदि में प्रेममय महसूस करते है और श्री कृष्ण के बिना स्वयं को अधुरा महसूस करते हैं। इनमें कृष्ण भक्ति में गहनता तथा तन्मयता की अधिकता है। ये अपने मन वचन और निरंतर कृष्ण भक्ति की अलख जगाए रहते हैं। वे लिखते हैं-

''बैन वही उनका गुनगाई औ कान वही उन बैन सौं सानी।
हाथ वही उन गात सरै अरू पाइ वही जु वही अनुजानी।।
जान वही उन प्राण के संग और मान वही जु करै मनमानी।
त्यौं रसखानि वही रसखनि जु है रसखानि सो है रसखानि।।

● बालकृष्ण लीलाओं का वर्णन

रसखान के काव्य में बालकृष्ण की लीलाओं का वर्णन भी देखने को मिलता है। हालांकि इनका वर्णन सूर और तुलसी के बाल लीलाओं के समान नहीं है परन्तु जो वर्णन इनके काव्य में है उसमें श्रीकृष्ण की छवि सजीव मान पड़ती है। और ऐसा प्रतीत है कि श्री कृष्ण उनके समक्ष खेलता अपनी लीलाएं करता नजर आता है। एक सवैयें में रसखान लिखते हैं:-

''धूरि भरे अति शोभित स्यामजू, तैसी बनी सिर सुंदर चोरी।
खेलत खात फिरैं अंगना, पग पैजनियां करि पीरी कछोटी।।
वा छवि को 'रसखानि; विलोकत, बारत काम कला निज कोटी।
काग के भाग बड़े सजनी, हरि हाथ सौ ले गयौ माखन रोटी।।

• होली वर्णन

रसखान ने अपने काव्य में कृष्ण को गोपियों के साथ होली खेलते हुए दिखाया गया है, जिसमें श्री कृष्ण गोपियों को भिगो देते हैं। गोपियां फाल्गुन के समय श्री कृष्ण के अवगुणों की चर्चा करती हुई कहती हैं कि कृष्ण ने होली खोलकर हम में काम वासना जागृत कर दी है। पिचकारी से हमें पूरी तरह से भिगा दिया है जिससे हमारा गले का हार भी टूट गया है। जिसका वर्णन इस प्रकार से है-

''आवत लाल गुलाल किए मग सूने मिली इक नार नवीनी।
त्यौं रसखानि लगाइ हियें मौज कियौ मन माहिं अधीनी।।
सारी फटी सुकुमारी हटी अंगिया दर की सरकी रंगभीनीं।
गाल गुलाल लगाइ लगाइ कै अंक रिझाइ बिदा कर दीनी।।''

• श्री कृष्ण की प्रेमाधीनता का वर्णन

कवि रसखान ने अपने काव्य में अपनी अनन्य कृष्ण भक्ति का ही वर्णन नहीं किया बल्कि स्पष्ट किया है कि भगवान कृष्ण भक्तवत्सल है। वे अपने भक्त के प्रेम के अधीन रहते हैं। उन्हें पाने के लिए किसी विधि-विधान या आडंबर करने की जरूरत नहीं बल्कि वो तो अपने भक्तों और प्रेमीजनों के सदैव निकट व ह्रदय में रहते हैं।

''ब्रह्म मैं ढूंढ्यौ पुरान गानन वेद-रिचा सुनि चौगुन चायन।
देख्यौ सुन्यौ कबहूं न कितूं, वह कैसे सरूप औ कैसे सुभायन।
टेरत हेरत हारि परयौ रसखानि बतायौ न लोग लुगायन।
देखौ-दुरौ वह कुंज-कुटीर में बैठयो पलोटत राधिका-पायन।।

स्वयं आकलन के प्रश्न-2

1. रसखान की दो काव्यगत विशेषता को स्पष्ट कीजिए।
2. रसखान की काव्य भाषा की दो विशेषताआ बताओं।

15.5 सारांश

रसखान प्रेम और श्रृंगार के कवि हैं। उन्होंने अपने विषय के अनुरूप सवैया, कवित एवं दोहा छंद को अपना कर काव्य रचना के माध्यम के रूप में चुना। वे भक्त और कवि से पहले एक सहृदय भावुक व्यक्ति है। उनका अंतर प्रेमताप की उष्णता से विगलित होकर मानों विविध भाव सारणियों के रूप में उमड़ पड़ा है। उनकी इस ऐंकांतिक प्रेममयी उमंग ने उनके काव्य को सचमुच 'रस की खान' बना दिया है। उनके काव्य की मुख्य विशेषता यह है कि उनका प्रेम-निरूपण सूफियों की प्रेम-पद्धति का अनुकरण न होकर स्वच्छंद है और उनका श्रृंगार चित्रण किसी 'रीति' विशेष में सीमित नहीं है। उनके काव्य में उनके स्वच्छंद मन के सहज उद्‌गार हैं। इसीलिए उन्हें स्वच्छंद काव्यधरा का प्रवर्त्तक भी कहा जाता है।

15.6 कठिन शब्दावली

सौयौ-सोया। **सोहत**- सहित। **मुख**- मुंह। **ससि**- चन्द्रमा।

15.7 स्वयं आकलन प्रश्न के उत्तर

स्वयं आकलन प्रश्न –1 के उत्तर

1. अलंकार योजना, दोहा शैली का प्रयोग।
2. शृंगारिकता और प्रकृति चित्रण।

स्वयं आकलन प्रश्न –2 के उत्तर

1. कृष्ण के चरित का वर्णन और प्रेम का चित्रण।
2. अलंकार का प्रयोग और भक्ति भावना।

15.8 सन्दर्भित पुस्तकें

1. बच्चन सिंह– बिहारी: नया मूल्यांकन।
2. विद्यानिवास मिश्र– रसखान रचनावली।

15.9 सात्रिक प्रश्न

1. बिहारी की काव्य विशेषता स्पष्ट करें।
2. रसखान की साहित्यिक विशेषता लिखें।

*****

इकाई–16
भूषण का जीवन परिचय

संरचना

16.1 भूमिका
16.2 उद्देश्य
16.3 भूषण का जीवन एवं साहित्यिक परिचय
16.3.1 भूषण की रचनाएं
16.3.2 भूषण की साहित्यिक विशेषताएं
स्वयं आकलन प्रश्न
16.4 सारांश
16.5 कठिन शब्दावली
16.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर
16.7 संदर्भित पुस्तक
16.8 सात्रिक प्रश्न

16.1 भूमिका

भूषण रीतिकाल में वीर काव्य लिखने वाले कवि है। उन्होंने अपने काव्य में अपने आश्रयदाताओं की वीरतापरक कविताओं का सजृन किया है।

16.2 उद्देश्य

1. भूषण के जीवन का बोध।
2. भूषण की रचनाओं की जानकारी।
3. वीर रस का बोध।

16.3 भूषण का जीवन एवं साहित्यिक परिचय

भूषण रीतिकालीन कवि हैं। रीतिकाल के अधिकांश कवियों की कविता नायक–नायिका भेद, नारी रूप, सौन्दर्य चित्रण, शृंगार रस और चमत्कार पूर्ण थी। भूषण की रचनाएं उन सब से हटकर थीं। उन्होंने अपने देश की पुकार को सुना और मुगल अत्याचारी राजाओं के विरूद्ध अपनी लेखनी चलाई इस दृष्टि से भूषण की हवा से विपरीत चलकर देश में चेतना जागृति का कार्य अपनी रचनाओं द्वारा किया।

- **जन्म, समय व स्थान**

भूषण का जन्म कानपुर के तिकवांपुर गांव में सं० 1670 में हुआ था। इनके पिता का नाम रत्नाकर त्रिपाठी था। 'शिवराज भूषण' के आत्म परिचय सम्बंधी छंदों से यह पता चलता है कि ये कान्य कुब्ज ब्राह्मण थे। रीतिकालीन युग के प्रमुख आचार्य कवि चिंतामणि और मतिराम इन्हीं के भाई थे।

भूषण का वास्तविक नाम अभी तक ज्ञात नहीं है। विद्वानों ने घनश्याम, मुरलीधर आदि कई नाम दिए हैं परंतु असली नाम क्या था, कुछ नहीं कहा जा सकता। भूषण इनकी उपाधि थी, जो उन्हें त्रिकूट के सोलंकी राजा रूद्रप्रताप सिंह से प्राप्त हुई थी। यह स्वयं कवि के कथन से स्पष्ट है–

कुल सुलंक चित्रकूटपति, साहस सील समुद्र ।
कवि भूषन पदवी दई, हृदेराम सुन रूद्र।।

भूषण के आश्रयदाता सबसे पहले भूषण संवत् 1721 या संवत् 1723 के आसपास चित्रकूट नरेश के पास पहुँचे। वहाँ उनकी योग्यता से प्रसन्न होकर चित्रकूटाधिपति ने उन्हें 'कवि भूषण' की पदवी से विभूषित किया। कहते हैं कि सोलंकियों का राज्य 1728 संवत् में महाराजा छत्रपाल ने छीन लिया। अतः भूषण संवत् 1728 से पूर्व ही चित्र कूटाधिपति के पास गए होंगे। औरंगजेब से मिलने के लिए शिवाजी जयसिंह के साथ सन्धि के पश्चात् दिल्ली आए थे। यह भेंट 1666 ई० अर्थात् 1723 संवत् में हुई। इसके अनन्तर शिवाजी औरंगजेब के जाल से मुक्त होकर दक्षिण लौट आए। इसे शिवाजी उत्तर भारत में प्रख्यात हो गए। संभवतः भूषण इस ख्याति को सुनकर संवत् 1624 में रायगढ़ आए। यहाँ लगभग छः वर्ष तक वे छत्रपति शिवाजी के आश्रय में रहे। उन्होंने अपना प्रसिद्ध ग्रन्थ शिवभूषण यहीं पर 1730 संवत् में पूर्ण किया। ग्रन्थ के पूर्ण होते ही वे उत्तर लौट गए। उनके लौटने पर शिवाजी का राज्याभिषेक हुआ। शिवभूषण में राज्याभिषेक का कहीं उल्लेख नहीं है। इससे यह बात निश्चित रूप से की जा सकती है कि इससे पूर्व ही वे उत्तर की ओर लौट गए होंगे। शिवाजी के पास से लौटने पर वे अन्य दरबारों में गए हों। अन्य दरबारों में उनका सम्मान हुआ है।

- **भूषण का ज्ञान एवं स्वभाव**

दन्तकथाओं के आधार पर भूषण के सम्बन्ध में ज्ञात होता है कि बाल्यावस्था में भूषण अपढ़ एवं निकम्मे रहे। घर में किसी व्यक्ति ने संभवतः उनकी भाभी ने उनसे कुछ कहा। इसी से प्रेरणा पाकर वे पढ़ने लगे। किन्तु उनका मन अपने भाइयों की तरह श्रृंगार में नहीं रमा। अपने स्वभाव के कारण वे घर छोड़कर चले गए। उनकी योग्यता का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि चित्रकूट अधिपति ने 'कवि भूषण' की पदवी से उन्हें विभूषित किया। शिवभूषण के आधार पर यह कहा जा सकता है कि रीतिकालीन साहित्यिक प्रवृत्तियों से वे पूर्णतः परिचित थे। ग्रन्थ लिखते समय उन्होंने आरम्भ में इस बात का उल्लेख किया है कि सुकवियों से सुन-सुनकर वे कवियों का पन्थ समझ गये। इसी आधार पर उन्होंने 'शिवभूषण' ग्रन्थ की रचना की है। वास्तव में भूषण का ज्ञान पोथी के ज्ञान की अपेक्षा आँखों देखा अधिक था। उनकी गहन बुद्धि समय को पहचानने में समर्थ थी। उनका अपने समय का राजनीतिक ज्ञान अच्छा था। यहाँ की तो बात छोड़ दें, विदेशियों तक के सम्बन्ध में उनकी परख गहरी थी। इस सम्बन्ध में उनका निम्नलिखित कवित्त दृष्टव्य होगा-

जो रूसियान को है तेग खुरासन हू की,
जीति इंगलैड चीन हुन्नर महारी।
हिम्मत अमान परदान हिन्दुवानहू की,
रूप अभिमपन हवसान-हद कादरी ।
नेकी अरबान, सान अदब ईरान त्योंही,
क्रोध है तुरान, ज्यों फराँस फन्ड आदरी।
भूषण भतन इमि देखिए महीतल पै।
बीर सिरताज सिवराज की बहादरी।।

16.3.1 भूषण की रचनाएं

- **शिवभूषण** - भूषण की एक मात्र प्रामाणिक और श्रेष्ठ रचना यही है। इसकी अनेक प्रतियाँ खोज में मिली हैं और विभिन्न स्थानों से इसका प्रकाशन हुआ है। इस ग्रन्थ की प्रामाणिकता के सम्बन्ध में कोई विवाद नहीं है।

रचनाकाल – शिव भूषण का रचनाकाल भूषण ने स्वयं अपने ग्रन्थों में इस प्रकार दिया है–

समत सत्रह सौ तीस पर सुचि बदि तेरसि भानु ।
भूषण सिवभूषन कियौ, पढ़ौ समल सुजान ।।

वर्ण्य विषय –शिव भूषण के प्रारम्भ में गणेश जी की स्तुति है, तत्पश्चात् भवानी की। इसके बाद शिवाजी के पूर्वजों का अति संक्षिप्त परिचय प्रबन्धात्मक ढंग से दिया गया है। फिर शिवाजी के जन्म का उल्लेख हुआ है। कवि ने अपना संक्षिप्त परिचय भी दिया है। बाद में ग्रन्थ लिखने का उद्देश्य इन शब्दों में व्यक्त किया है।

सिव चरित्र लखि यों भयौ, कवि भूषन के चित्त ।
भाँति–भाँति भूषननि सों, भूषित करौं कवित्त ।।
सुकबिन सों सुनि सुनि यों भयौं, कवि भूषन कौ पन्थ।
भूषन भूषनमय करन, शिवभूषन शुभ ग्रन्थ ।।

भूषण में इस एक ग्रन्थ की रचना शिवाजी के चरित्र को भूषित करने के लिए की है। सुकवियों के पंथ को अपना कर भूषण अपने ग्रन्थ को भूषनमय बनाना चाहते हैं। ग्रन्थ के नाम की सार्थकता के सम्बन्ध ा में सरदेसाई का कथन है। शिवाजी के यश वर्णन जिसमें किया गया है अर्थात् जिसके योग से उसे भूषण प्राप्त हुआ है। यह एक अर्थ है, सिवा इसके भूषण का अर्थ अलंकार होता है। इससे अलंकार शास्त्र पर यह ग्रन्थ लिखा गया है।

प्रस्तुत ग्रन्थ अलंकार ग्रन्थ है। इसमें अलंकारों के लक्षण दोहों में दिए गए हैं और उदाहरण कवित और सवैयों में दिये गये है। कतिपय उदाहरणों में छप्पय का प्रयोग किया गया है।

- **शिवाबावनी** –

शिवाजी का रचनाकाल ज्ञात नहीं हैं। इसका प्रमुख कारण यही है कि इसकी कोई हस्त प्रतिलिपि प्राप्त नहीं हुई है। ये सम्पादकों द्वारा किया गया संग्रह मात्र है। इन शब्दों में कुछ ऐसी घटनाओं का वर्णन मिलता है, जो शिवभूषण के रचनाकाल के बाद की है। अतः इतना अवश्य कहा जा सकता है कि इसके बाद स्फुट रूप में शिवभूषण के बाद लिखे गये हैं।

शिवाजी बावनी का वर्ण्य विषय प्रधन रूप में शिवाजी के यश और गौरव का गान है। 52 छन्दों का संग्रह होने के कारण इसे बावनी कहा गया है। अपवाद रूप में छन्दों को छोड़कर सभी छन्द शिवाजी से सम्बधित है। ये छन्द मुक्तक रूप में लिखे गए हैं। प्रत्येक छन्द एक स्वतन्त्र खण्ड चित्र प्रस्तुत करता है। मुगलों के अत्याचार का वर्णन शिवाजी प्रतिक्रिया, समयानुकूल देश की रक्षा करने में शिवाजी का आगे बढ़ना, शिवाजी द्वारा शत्रुओं को आतंकित रहना, इस्लाम के अत्याचार से हिन्दू धर्म की रक्षा करने में शिवाजी का नेतृत्व आदि के खण्ड–चित्र बड़ी ओजस्वी शैली में शिवा बावनी में मिलते हैं। शिवा बावनी की प्रसिद्ध पंक्ति है– 'सिवाजी न होते तो सुनति होती सबकी।'

- **छत्र साल दशक**

छत्रसाल दशक का रचनाकाल ज्ञात नहीं है। इतना निश्चित कहा जा सकता है कि इस संग्रह में आए भूषण के प्रामाणिक छन्द छत्रसाल से भेंट होने के बाद लिखे गए। इसमें उल्लिखित घटनायें शिवभूषण के रचना काल के बाद की हैं। इनकी रचना तिथि शिवभूषण के बाद की है।

छत्रसाल दशक में दो दोहे और बाद में 10 कवित्त संग्रहीत हैं, जिनमें प्रथम दोनों दोहों में बून्दी के दोनों छत्रसाल और शत्रुसाल का उल्लेख हुआ है। बाद के दस कवितों में प्रथम दो कवियों में बूंदी नरेश छत्रसाल हाड़ा का वर्णन है और बाद के आठ कवित्तों में छत्रसाल बुन्देला की वीरता का वर्णन बड़ी ही ओजस्वी भाषा में किया गया है। संख्या और विषय दोनों दृष्टियों से 'छत्रसाल दशक' नाम उचित नहीं लगता।

- **स्फुट काव्य या प्रकीर्ण रचनाएं**

आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित 'भूषण' में भूषण के सब से अधिक छन्द संग्रहीत हैं और पाठ संशोधन की दृष्टि से यही ग्रंथावली श्रेष्ठ है। अत: इसी की प्रकीर्णक रचनाओं पर नीचे विचार किया जा रहा है, मिश्रजी की पुस्तक में कुल 586 छंद है जिनमें 407 छंद शिवभूषण के हैं। शेष 179 छन्दों को प्रकीर्ण में रखा है। इसमें शिवा-बावनी और छत्रसाल दशक के छंद भी सम्मिलित हैं। इनको मिश्र जी ने स्वतन्त्र रचनाओं के रूप में स्वीकार नहीं किया है।

16.3.2 भूषण की साहित्यिक विशेषताएं

रीतिकाल के कवि भूषण एक वीर रस प्रधन कवि माने जाते हैं। उन्होंने अपने इतिहास के प्रत्येक झरोखे से देखा है कि हमारे इतिहास एवं वीरपूर्ण तथा ओजपूर्ण वैभवशाली परिस्थितियों को अपने काव्य में स्थान दिया। भूषण के काव्य में कला एवं भाव पक्ष दोनों ही महत्वपूर्ण हैं। निम्नलिखित शीर्षकों के द्वारा भूषण के कला एवं भाव पक्ष को उज़ागर कर सकते हैं।

किसी रचनाकार द्वारा अपने कृतित्व में जिन भावों का समावेश किया जाता है, उन्हें कवि के भाव पक्ष के अन्तर्गत रखा जाता है। इसे अनुभूति पक्ष भी कहते हैं। अनुभूति से अभिप्राय है कि रचनाकार किस प्रकार से अनुभव करता है, उन्हें अपने परिवेश से देखते हुए अपने भावों को अभिव्यक्त करता है, उनके भाव पक्ष कि विशेषताएं निम्नलिखित शीर्षकों में व्यक्त की हैं-

- **वीर रूप का चित्रण** - भूषण वीर रूप के चित्रण में प्रवीण थे। उनकी वीर रस से परिपूर्ण कविताएं किसी राजा-महाराजों के वीरता प्रधान लड़ाई एवं शौर्य के साथ अपनी अभिव्यक्ति को मुखर किया है। शिवाजी के वीर रूप का चित्रण भूषण की कविता में इस प्रकार हुआ है-

इन्द्र निमि जम्भ पर, बाडव सुअम्भ पर,
रावन सदम्भ पर रघुकुल-राज है।
पौन बारिवाह पर, सम्भु रतिनाह पर,
ज्यों सहस्त्रावह पर राम-द्विजराज है।।
दावा द्रुम दण्ड पर, चीता मृग-झुण्ड पर,
-भूषण' बितुण्ड पर जैसे मृगराज है।
तेज तम अंक पर, कान्ह जिमि कंस पर,
त्यौं मलिच्छ बंस पर सेर सिवराज है।।

साहित्य में चार प्रकार के वीर कहे जाते हैं -युद्धवीर, दानवीर, दयावीर और धर्मवीर। वीरकाव्यों में सामान्यत: युद्धवीरों का प्राधान्य है। युद्धवीर का उत्साह क्रोधावेश में रौद्र रस का रूपधारण कर लेता है। अत: वीर रस प्राय: रौद्र रसोन्मुखी होता है जबकि दान, दया और धर्मवीर का रसात्मक विकास शांत रसोन्मुख होता है।

- **आश्रयदाताओं की स्तुति**

रीतिकाल में कवि दरबारी होने के कारण नारी सौंदर्य का बखान कर, नायक-नायिका भेद, हावभाव, रतिक्रिया आदि का सूक्ष्म वर्णन करके अपने आश्रयदाताओं का मनोरंजन करना उद्देश्य रखता था लेकिन कहीं कहीं कवियों ने अपने आश्रयदाताओं के दान, दया, धर्म और युद्धवीरता का गुणगान कर प्रशस्तिकाव्यों में वीर रस की सृष्टि की है। यह वीर काव्य स्फुट छंदों से लेकर प्रबंधकाव्यों तक पाया जाता है। इस इतिहास, राष्ट्रीयता और युद्धवीरता के काव्य के दर्शन भूषण के काव्य में किए जा सकते हैं।

भूषण के वीरकाव्य को पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने शुद्ध वीर काव्य कहा है। इस काव्य का अपना स्वरूप एवं वैशिष्ट्य है। इसकी विवेचना है–

- **राजा के आदर्शों का चित्रण**– वीरकाव्य में कवियों का आधार प्राय: वीर नायक रहे हैं। कवि के मन में जब तक किसी नायक के प्रति श्रद्धा नहीं होगी, तब तक वह उसे अपने काव्य का विषय नहीं बना सकता। भूषण को काव्य की प्रेरणा अपने नायक से मिली है। उन्होंने कहा भी है –

शिव चरित्र लखि यौं भयौ,
कवि भूषन के चित्त।
भांति भांति भूपननि सों ।
भूपति करौं कवित ।।

- **सामाजिक आदर्श की स्थापना**– वीर काव्यों का संबंध चूंकि सामाजिक आदर्श से होता है। अत: ऐसे नायक का ही अपने काव्य का विषय बनता है, जिसके द्वारा वह उन आदर्शों की स्थापना कर सकता है। भूषण ने अपने अंतरतम् में अपने युग के सांस्कृतिक संकट को अनुभव किया था। इस संकट को दूर करने के लिए अपने युग के श्रेष्ठ पुरुषों का चरितमान कर, उनकी लोकप्रियता को वाणी दी।

स्वयं आकलन के प्रश्न

1. भूषण का जन्म कब हुआ?
2. भूषण किसके दरबारी कवि थे।
3. भूषण की किसी एक रचना का नाम लिखो।

16.4 सारांश

सारांश रूप में हम कह सकते है कि भूषण हिन्दी साहित्य के रीतिकालीन कवि थे। उन्होंने काव्य में वरी परक रचनाओं का सृजन किया, इसलिए इनको वीर रस के कवि कहे जाते हैं।

16.5 कठिन शब्दाली

ह्दे–ह्दय। **सुन**–सुनना। **जीति**–जितना। **अरवान**–अरवियन। **तुरान**– तुर्कीयन। **सिवराज**–शिवाजी। **सिरताज**–सरताज।

16.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

1. सन् 1670।
2. छत्रसाल, शिवाजी।
3. शिवाबावनी।

16.7 सन्दर्भित पुस्तक

1. भूषण–शिवराज भूषण।

16.8 सात्रिक प्रश्न

1. भूषण का जीवन परिचय लिखों।
2. भूषण का साहित्यिक परिचय बताओं।

*****

इकाई–17
भूषण : व्याख्या भाग

संरचना

17.1 भूमिका

17.2 उद्देश्य

17.3 भूषण : व्याख्या भाग

स्वयं आकलन प्रश्न

17.4 सारांश

17.5 कठिन शब्दावली

17.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

17.7 संदर्भित पुस्तक

17.8 सात्रिक प्रश्न

17.1 भूमिका

भूषण हिंदी साहित्य के रीतिकाल में वीर काव्यधारा प्रसिद्ध कवि है। उन्होंने अपने काव्य में वीर रस पूर्ण रचनाओं का वर्णन किया है। रीतिकाल में उनको वीर कवि भी कहा जाता है। उन्होंने अपने काव्य में शिवाजी की वीरता का चित्रण किया है।

17.2 उद्देश्य

1. भूषण के जीवन परेचय का बोध।
2. भूषण की रचनाओं का ज्ञान।
3. भूषण की रचनाओं में वर्णित विषय का ज्ञान।

17.3 भूषण : व्याख्या भाग

पद 1

जे जयंति जै आदि सकति जै कालि कपर्दिनी।
जै मधु कैटभ छलनि देवि जै महिष विमर्दिनी।।
जै चामुण्ड जे चंड मुंड भंडासुर खंडिनी।
जै सुरक्त जै रक्तबीज विड्डात विहांडिनी।।
जै जै निसुंभ, सुंभद्धलिनी, भनि भूषण जै जै भननि।।
सरजा समन्य सिवराज कहें देहि बिजै जै जग–जननि।।

प्रसंग : प्रस्तुत पद्यांश हमारी पाठ्य पुस्तक 'मध्यकालीन हिंदी कविता' संकलित आचार्य कवि 'भूषण' द्वारा रचित छप्पय में से लिया गया है।

संदर्भ : प्रस्तुत छंद में कवि भूषण ने दुर्गा माँ की स्तुति करते हुए वरदान माँगा है कि वह शिवाजी को शेर के समान साहस एवं शक्ति देकर विजयी होने का आशीर्वाद प्रदान करें।

व्याख्या : कवि भूषण ने दुर्गा माता की उपासना करते हुए कहता है कि है माँ दुर्गा! तुम्हारी सदा जय हो, हे आदि शक्ति ! तुम्हरी सदा विजय हो। हे माँ दुर्गा! सारी शक्तियां आपका ही अंश हैं। हे मां! आप विकराल रूप धारण करने वाली काली, शत्रुओं में भय पैदा करने वाली जटाजूट वाली माँ तुम्हारी जय हो।

हे राक्षस संघारक माँ! आपने तो मधु कैटभ नामक राक्षसों को भी छलनी कर दिया, मार डाला। आपने तो महिषासुर जैसे भयंकर राक्षस का भी नाश किया है। चंड और मुंड जैसे विकट राक्षसों को मारकर अपने चामुण्डा नाम पाया है। भंडासुर की भी हत्या की है। तुम तो रक्तबीज के रक्त का पाने करने वाली हो, विड्डाल राक्षस का भी आपने ही विनाश किया था। शुभ और निशुंभ का दलन करने वाली माता आपकी जय हो।

भूषण कवि दुर्गा माँ का स्तुतिगान करते हुए प्रार्थना करते है कि शेर के समान आपकी आराधना करने वाले महाराज शिवाजी को आशीर्वाद मिले ताकि यह भी राक्षसों का नाश कर सकें। अर्थात् सम्पूर्ण संसार में उनकी विजय हो।

विशेष :

1. प्रस्तुत पद में माँ दुर्गा की स्तुति का चित्रण हुआ है।
2. ओजपूर्ण ब्रज भाषा का प्रयोग।
3. तत्सम शब्दावली की प्रधानता।
4. अनुप्रास अलंकार का प्रयोग हुआ है।
5. छप्पय छंद का प्रयोग है।

1 दोहा

तरनि, जगत जतनिधि तरनि, जै जै आनंद ओक।
कोक कोकनद सोक हर, लोक लक आलोक ।।2।।

प्रसंग : प्रस्तुत पद्यांश हमारी पाठ्य पुस्तक 'मध्यकालीन हिंदी कविता' में संकलित आचार्य कवि 'भूषण' द्वारा रचित दोहे में से लिया गया है।

संदर्भ : प्रस्तुत दोहे में कवि भूषण ने भगवन सूर्य का यशोगान का चित्रण किया है।

व्याख्या : प्रस्तुत दोहे में कवि भूषण ने सूर्य का यशोगान करते हुए कवि कहता है कि हे सूर्य देवता! संसार में समुद्र को पार करने के लिए नौकाएं होती हैं, वैसे ही जीवन रूपी समुद्र को पार करने के लिए आपकी शरण लेनी पड़ती है, आपका ही सहारा है। आप तो दयालु हैं इसलिए चकवे का विरह दूर कर उसको प्रेयसी से प्रातः होते ही मिलवा देते हैं अर्थात उसका दुःख दूर करते हैं। कवि भूषण कहते है कि है सूर्य देवता आप विभिन्न लोकों में प्रकाश फैलाते है और लाल कमलों को तालाबों में आप खिलाते हैं।

विशेष :

1. सूर्य देवता की स्तुति की गई है।
2. सरल, सहज व ओजपूर्ण ब्रज भाषा का प्रयोग हुआ है।
3. तत्सम शब्दावली की प्रधानता है।
4. ओजगुण से व्याप्त है।
5. अनुप्रास एवं यमक अलंकारों का प्रयोग।
6. दोहा छंद का प्रयोग हुआ है।

2 दोहा

राजत है दिनराज की, बंस अवनि अवतंस।
जामैं पुनि पुनि अवतरे, कंस–मयन प्रभु अंस।।

प्रसंग : प्रस्तुत पद्यांश हमारी पाठ्य पुस्तक 'मध्यकालीन हिंदी कविता' में संकलित आचार्य कवि भूषण' द्वारा रचित दोहे में से लिया गया है।

संदर्भ : प्रस्तुत दोहे में कवि भूषण ने भगवन सूर्य का यशोगान के साथ–साथ भगवान कृष्ण की महिमा का वर्णन किया है।

व्याख्या : कवि भूषण सूर्य के साथ–साथ भगवान कृष्ण की महिमा का वर्णन करता हुआ कहता है कि सर्यूदेवता का अंश तो पृथ्वी का मुकुट बनकर शोभा देता है अर्थात् सूर्यवंश धरती का सर्वश्रेष्ठ हैं। सर्यवंश में ही ऐसे यशस्वी वंश में बार–बार, कंस को मारने वाले कृष्ण ने जन्म लिया है। अर्थात जहाँ धर्म की हानि होती है वहाँ ईश्वर जन्म लेते है और धर्म की स्थापना करते है।

विशेष :

1. सूर्यवंशी की वीरता का चित्रण।
2. ओजपूर्ण ब्रज भाषा का प्रयोग।
3. तत्सम शब्दावली की प्रधानता है।
4. पुनरुक्ति प्रकाश अलंकार का प्रयोग।
5. दोहा छंद का प्रयोग।

3 दोहा

महाबीर ता बंस में, भयो एक अबनीस।
लियो विरद 'सीसौदिया', दियो ईस को सीस।।

प्रसंग : प्रस्तुत पद्यांश हमारी पाठ्य पुस्तक 'मध्यकालीन हिंदी कविता' में संकलित आचार्य कवि 'भूषण' द्वारा रचित दोहे 'शिवराज भूषण' में से लिया गया है।

सदर्भ : प्रस्तुत दोहे में कवि भूषण ने शिवाजी के 'सिसोदिया' उपाधि पाने के प्रसंग का वर्णन किया है।

व्याख्या : प्रस्तुत दोहे में कवि भूषण कहता है कि इसी सूर्यवंश में एक शासक ऐसा भी हुआ जिसे "सिसोदिया' उपाधि से विभूषित किया गया। यह उपाधि उसे इसलिए दी गई क्योंकि उसने ईश्वर के चरणों में अपना शीश काटकर चढा दिया था।

विशेष :

1. शिवाजी के वंश को 'सिसोदिया' उपाधि प्राप्त करने का वर्णन।
2. ओजपूर्ण ब्रज भाषा का प्रयोग।
3. तत्सम शब्दावली की प्रधानता है।
4. ओजगुण सर्वत्र व्याप्त है।

4 दोहा

ता कुल में नृपवृन्द सब, उपजे बखत बलन्द।
भूमिपाल तिनमें भयो, बड़ो "माल मकरन्द"।।

प्रसंग : प्रस्तुत पद्यांश हमारी पाठ्य पुस्तक 'मध्यकालीन हिंदी कविता' में संकलित आचार्य कवि 'भषण' द्वारा रचित दोहे 'शिवराज भूषण' में से लिया गया है।

संदर्भ : प्रस्तुत दोहे में कवि भूषण ने शिवाजी और उनके वंश का यशोगान करते हए उनके वंश को महान बताया है।

व्याख्या : प्रस्तुत दोहे में कवि भूषण कहता है के महाराज शिवाजी वंश में अनेक यशस्वी शासकों ने समय–समय पर जन्म लिया। उन्हीं राजाओ में एक राजा मालो जी हुए जिनकी कीर्ति फूलों के पराग की तरह सर्वत्र छाई हुई थी। अर्थात् सम्पूर्ण संसार में उनका शासन था।

विशेष :

1. प्रस्तुत दोहे में शिवाजी के पूर्वज मालो जी भोंसले का यशोगान किया गया है।
2. ओजपूर्ण ब्रज भाषा का प्रयोग।
3. तत्सम शब्दावली की प्रधानता है।
4. अनुपास अलंकार का प्रयोग।

5 दोहा

सदा दान किरबान में, जाके आनन अंभु।
साहि निजाम सखा भयो, दुग्ग देवगिरि खम्भु।

प्रसंग : प्रस्तुत पद्यांश हमारी पाठ्य पुस्तक 'मध्यकालीन हिंदी कविता' संकलित आचार्य कवि भूषण द्वारा रचित दोहे 'शिवराज भूषण' में से लिया गया है।

संदर्भ : प्रस्तुत दोहे में कवि भूषण ने शिवाजी की दानवीरता एवं युद्धवीरता का वर्णन किया है।

व्याख्या : कवि भूषण शिवाजी की दानवीरता एवं युद्धवीरता का वर्णन कहता है कि शिवाजी ऐसे महान् योद्धा है कि देते हुए और युद्ध में तलवार चलाते हुए उनके चेहरे पर तेज अर्थात् चमक बनी रहती है। अर्थात् वे दान देने के लिए अधिक प्रसन्न और यूद्ध में तलवार चलाने के लिए उत्साहित दिखाई देते हैं। गोलकुंडा के निजाम ने उन्हें अपना मित्र बनाया और देवगिरी के दुर्ग सौंपने को विवश किया।

विशेष :

1. शिवाजी की दानवीरता एवं वीरता का वर्णन।
2. ओजपूर्ण भाषा का प्रयोग।
3. दोहा छंद का प्रयोग।

6 दोहा

ताते 'सिरजा बिरद' भो, सोभित सिंह प्रमान।
रन–भू–सिला सु भौसिल, आयुषमान "खुमान" ।।

प्रसग : प्रस्तुत पद्यांश हमारी पाठ्य पुस्तक 'मध्यकालीन हिंदी कविता' में संकलित आचार्य कवि "भूषण' द्वारा रचित दोहे 'शिवराज भूषण' में से लिया गया है।

संदर्भ : प्रस्तुत दोहे में कवि भूषण ने शिवाजी को 'सरजा 'भौसिला' और खुमान की उपाधियों का चित्रण किया है।

व्याख्या : कवि भूषण कहता है कि शिवाजी को 'सरजा' उपाधि इसलिए मिली क्योंकि वे सिंह के समान है। अर्थात् वे शक्तिशाली राजा है। कवि कहता है कि शिवाजी संसार के महान राजाओं में सुशोभित होते हैं। वे जगल का राजा शेर की तरह पृथ्वी के एक ही रजा है। उन्हें 'भौसला' पद से विभूषित इसलिए किया गया क्योकि वे युद्ध के मैदान में शिला (चट्टान) की तरह अड़िग रहकर युद्ध करते है। वे दीर्घ आयु थे अर्थात् उन्हें कोई नहीं हरा सकता इसलिए उन्हें 'खुमान' पदवी से सम्मानित किया गया है। वे 'दीर्घजीवी' है अर्थात् लम्बी आयु वाला होता है।

विशेष :

1. शिवाजी की वीरता का चित्रण।
2. ओजपूर्ण ब्रज भाषा का प्रयोग।
3. तत्सम शब्दाबली की प्रधानता है।
4. अनुप्रास एवं उपमा अलंकारों का प्रयोग हुआ है।

7 दोहा

भूषण भनि ताके भयो भुव–भूषण नृप साहि।
रातै दिन संकित रहें साहि सबै जग माहि ।।

प्रसंग : प्रस्तुत पद्यांश हमारी पाठ्य पुस्तक 'मध्यकालीन हिंदी कविता' संकलित आचार्य कवि 'भूषण' द्वारा रचित दोहे 'शिवराज भूषण' में से लिया गया है।

संदर्भ : प्रस्तुत दोहे में कवि भूषण ने शिवाजी की वीरता एवं उनके प्रभाव का वर्णन किया है।

व्याख्या: कवि भूषण कहता है कि जब से शिवाजी महाराज राजा बनकर पृथ्वी के राजा बने है तब से वे अपने पद पर आभूषण रूप में सुशोभित हुए है। कवि भूषण ने शिवाजी की वीरता एवं उनके प्रभाव का वर्णन करते हुए कहते है कि वीर शिवाजी के राज सम्भालते ही संसार भर के राजा रात–दिन अपने अस्तित्व को लेकर शंकाशील रहते हैं। अर्थात् वे सब शिवाजी से भय खाते हैं।

विशेष :

1. शिवाजी की वीरता का वर्णन।
2. ओजपूर्ण ब्रज भाषा का प्रयोग हुआ है।
3. तत्सम शब्दावली की प्रधानता है।

स्वयं आकलन के प्रश्न :

1. भूषण का जन्म कब हुआ ?
2. भूषण की किसी एक रचना का नाम लिखों।
3. भूषण किस युग के कवि है?

17.4 साराश

सारांश रूप में हम कह सकते है कि कवि भूषण ने रीतिकाल में वीर रस की कविताए लिखी है उन्होने शिवाजी की वीरता को आपने काव्य में केंद्र बिन्दु माना है।

17.5 स्वयं आकलन प्रश्नो के उत्तर

1. 1613 ।
2. शिवराजभूषण ।
3. रीतिकाल के रीतिमुत्त काव्यधारा।

17.6 कठिन शब्दावली

जयंति – दुर्गा आदि शक्ति। **कपर्दिनी** – जटाजूट वाली। **मधु कैटभ** – दो राक्षस। **छलनि** – छलने वाली। **महिष** – महिपासुर। **विमर्दिनी** – कुचलने वाली। **चामुण्डा** – का नाम। **चण्ड–मुण्ड**– दो राक्षस जिनका संहार कर दुर्गा, चामुण्डा कहलाई। **भंडासुर** – एक राक्षस । **खंडिनी** – नाश करने वाली। **सरत्त** – लाल। **विहंडिनी**– विनाशिनी। **निसुंभ–सुंभ** – दो राक्षस। **सरजा** – शेर। **तरनि** – सूर्य, नौका। **जलनिधि** – समुद्र। **ओक** – समूह। **कोक** – चकया। **कोकनद** – लाल कमल। **लोक** संसार। **लोक** – प्रकाश। **राजत** – शोभा देता है। **अवनि** – पृथ्वी। **अवतंस** – मुकुट। **मथन** – नाश करने वाले, मथन वाले। **महाबीर** – अत्यधिक बहादूर। **बंस** – वश। **बिरद**– यश। **सिसौदिया** – शीश अर्पित करने वाला। **ता** – उस। **नृपवृन्द** – राजाओ का समूह। **बखत** – समय। **भूमिपाल** – राजा। **बुलन्द** –ऊंचा। **मकरन्द** – फलों का

केसर, सुगंध। **किरवान** – तलवार। **आनन**– चेहरा, मुख। **अभु** – पानी, चमक। **ताते** – इसलिए। **बिरद** – यश **प्रमान** – निश्चित, सबूत। **रन–भू–सिला** – रण में जिला की तरह दृढ़। **भीसिता**– उपाधि। **अयुष्मान**– दीर्घजीवी। **भनि** – वर्णन करता है। **ताके** – उसके। **भुव–भूषण** – पृथ्वी का आभूषण। **संकित** – शंकाशील। **साहि** – शासक। **जग माहि** – संसार में।

17.7 सन्दर्भित पुस्तक

1. भूषण– शिवराज भूषण।

17.8 सात्रिक प्रश्न

1. रीतिकाल में भूषण का स्थान स्पष्ट करें।
2. भूषण का साहित्य परिचय बताओं।
3. भूषण की काव्यभाषा की विशेषताए लिखों।

*****

इकाई–18
घनानंद का जीवन परिचय

संरचना

18.1 भूमिका

18.2 उद्देश्य

18.3 घनानंद का जीवन परिचय

18.3.1 घनानंद की रचनाएं

स्वयं आकलन प्रश्न

18.4 सारांश

18.5 कठिन शब्दावली

18.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

18.7 संदर्भित पुस्तक

18.8 सात्रिक प्रश्न

18.1 भूमिका

रीतिकाल प्रमुख रूप से तीन धाराएं प्रसिद्ध थी, रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध और रीतिमुक्त में घनानंद अंतिम काव्यधारा के अग्रणी कवि है। रीतिबद्ध कवियों के लिए आवश्यक शर्त यह थी कि उन्हें ग्रन्थ-रचना के नियमों से बंधना और जकड़ा रहना पड़ता था। अपने मनोभावों को वे लक्षण के अनुसार अभिव्यक्त करते थे। दूसरी कोटि के कवि अर्थात् रीतिसिद्ध कवियों के लिए इस प्रकार की कोई आवश्यक शर्त न थी कि उन्हें रीतिग्रन्थ ही लिखना है- परंतु वे कवि भी स्वतन्त्रा भाव अभिव्यक्ति के लिए उन्मुक्त न थे । ये कवि लक्षणबद्ध ग्रन्थों की रचना नहीं करते थे, परन्तु इनकी काव्य रचना के मार्ग पर नहीं चलते थे- पर उसी मार्ग के साथ-साथ ही इनको चलना पड़ता था। फलतः इनकी काव्य रचना में वे नियम कुछ शिथिल थे, जो न तो रीतिबद्ध कवियों ने प्राणपण से अपना रखा था। तीसरे प्रकार के कवि थे, जो न तो रीतिबद्ध थे, न रीतिसिद्ध-अर्थात् वे रीतिमुक्त कवि थे- जिन्हें 'रीति' के नाम से ही घृणा थी, वे रीति की छाया मात्र से भी दूर भागते थे। अपने हृदय की उमंगपूर्ण, स्वानुभूति भावनाओं को इन कवियों ने उसी रूप में अभिव्यक्त किया, जैसी उनकी अनुभूति थी। फलतः अपनी स्वच्छंद वृत्ति के कारण ये कवि रीतिमुक्त कवि कहलाए। घनानन्द, बोधा, ठाकुर आदि कवि इसी धारा के सितारे हैं।

18.2 उद्देश्य

1. घनानंद के जीवन परिचय का बोध।
2. घनानंद के साहित्य की जानकारी।
3. घनानंद की काव्यगत विशेषताओं का बोध।

18.3 घनानंद का जीवन परिचय

घनानन्द के जीवन के लगभग सभी महत्वपूर्ण तथ्य विवादास्पद हैं। जैसे नाम, जन्म स्थान, रचनाएं, जन्म तिथि इत्यादि। इनकी जन्म तिथि के संबंध में भी विद्वानों की विभिन्न मान्यताएं हैं। लाला भगवानदीन ने घनानन्द का जन्म सम्वत् 1715 माना है, परन्तु शुक्ल जी ने जन्म संवत् को न मानकर सं० 1746 में इनका जन्म माना है।, परन्तु शुक्ल जी ने जन्म संवत् को न मानकर सं० 1746 में इनका जन्म माना है।

विभिन्न आलोचकों के मतों की आलोचना करने के पश्चात् डॉ० मनोहरलाल गौड़ ने अपनी पुस्तक 'घनानन्द और स्वच्छंद काव्यधारा' में लिखा है - सम्वत् 1730 में इनका जन्म मान लेने पर दीक्षा के समय में 26 या 29 वर्ष के होते हैं, जो इनके जीवन-वृत को देखकर ठीक प्रतीत होता है।

- **जन्म स्थान**

जन्म तिथि की भांति घनानन्द के जन्म-स्थान का विषय भी विवाद की वस्तु बना हुआ है। कुछ आलोचक इन्हें हिसार-निवासी मानते हैं तो अन्य इन्हें बुलंदशहर का मानते हैं। अधिकांश विद्वान् घनानन्द का जन्म दिल्ली और उसके आसपास का भी होना मानते हैं जगन्नाथदास रत्नाकर ने इन्हें बुलंदशहर का निवासी माना है और श्री बहुगुणा के विचार में ये कोट-हिसार के रहने वाले थे? ये भटनागर कायस्थ थे और दिल्ली छोड़कर वृंदावन चले गये थे। इस बात को सभी आलोचकों ने स्वीकार किया है। इन्होंने अपने काव्य में ब्रज और वृंदावन का वर्णन जिस सजीवता के साथ किया है, उसे पढ़कर यह अवश्य लगता है कि इनका अधिकांश जीवन यहीं बीता, अन्यथा उनके काव्य में ब्रज संस्कृति इतना सुन्दर ब्रज का चित्रण न मिलता। हाँ, इतना अवश्य कहा जा सकता है कि सुजान की बेवफाई के कारण ये ही ये वृंदावन गए होंगे।

- **घनानन्द और सुजान**

घनानन्द के काव्य में 'सुजान' का ही वर्णन मिलता है- पर यह सुजान कौन थी, इसका विवेचन भी आवश्यक हो जाता है। घनानन्द मुहम्मदशाह रंगीले के दरबार में खास-कलम प्राइवेट-सेक्रेटरी थे। अरबी-फारसी में माहिर थे- एक तो कवि और दूसरे सरस गायक। प्रतिभा संपन्न होने के कारण बादशाह का इन पर विशेष अनुग्रह था। मुहम्मदशाह रंगीले के दरबार की एक नृत्य-गायन विद्या में निपुण सुजान नामक वेश्या से इनका प्रेम हो गया। इधर सुजान की इन पर अनुरक्ति और दूसरी ओर बादशाह के खास-कलम इन दोनों बातों से घनानन्द की उन्नति से सभी दरबारी मन ही मन ईर्ष्या करते थे। अंततः उन्होंने ऐसा षड्यंत्र रचा, जिसमें घनानन्द पूरी तरह से लुट गए। दरबारी लोगों ने मुहम्मदशाह रंगीले से कहा कि घनानन्द बहुत अच्छा गाते हैं। उनकी बात मानकर बादशाह ने एक दिन इन्हें गाने के लिए कहा, पर ये इतने स्वाभिमानी और मनमौजी व्यक्ति थे कि गाना गाने से इन्होंने इन्कार कर दिया। दरबारी लोगों को इस बात का पता था कि बादशाह के कहने से ये कभी गाना नहीं गाएंगे और हुआ भी वही। दरबारी लोग इसी घड़ी की प्रतीक्षा कर रहे थे। उन्होंने बादशाह से कहा कि यदि सुजान को बुलाया जाए और वह घनानन्द से अनुरोध करे तो वे अवश्य गाना गाएँगे और यह हुआ भी। बादशाह की आज्ञा से सुजान वेश्या दरबार में बुलाई गई और उसके कहने पर घनानन्द ने गाना सुनाया-सुजान की ओर मुँह करके और बादशाह की ओर पीठ करके, परंतु इतनी तन्मयता से गाना सुनाया कि बादशाह और सभी दरबारी मंत्र-मुग्ध हो गए। परन्तु बादशाह जितने ही आनंद-विभोर गाना सुनते समय हुए थे, उतने ही कुपित गाना समाप्त होने के बाद हुए। वह उनकी बेअदबी थी कि सुजान का कहा उनसे बढ़कर हो गया। फलतः क्रोधित होकर उन्होंने तत्काल घनानन्द का दरबार व राज्य छोड़ने का आदेश दिया।

दरबारियों की चाहत पूर्ण हो चुकी थी। घनानन्द ने चलते समय सुजान से साथ चलने का आग्रह किया, परंतु उसने अपने जातीय गुण की रक्षा की और घनानन्द के साथ जाना अस्वीकार कर दिया। जान और जहान और दोनों ही भुलाकर घनानन्द ने वृंदावन में उन्होंने निम्बार्क संप्रदाय में दीक्षा ली। इस संबंध में श्री शम्भुप्रसाद बहुगुणा ने लिखा है 'जीवन की विरक्ति उनके लिए प्रेमपूर्ण राधा-कृष्ण के चरणों की अनुरक्ति बन गई। मरते दम तक वे सुजान को नहीं भूला पाए। राधा कृष्ण को उन्होंने सुजान की स्मृति बना दी और निरंतर सुजान के प्रेम में आँसुओं के स्वरों में ये गीत, कवित-सवैये लिखते रहे। अधिकांश विद्वानों ने घनानन्द का सुजान से प्रेम, बादशाह रंगीले द्वारा देश-निकाला और सुजान के तिरस्कार को सत्य माना है। इतना अवश्य कहा जा सकता है कि घनानन्द के जीवन का अंतिम समय वृंदावन में बीता।

- **मृत्यु**

घनानन्द की मृत्यु-तिथि भी उनकी जन्म-तिथि के समान ही विवादास्पद है। सन् 1760 ई0 में जब अब्दाली ने मथुरा में दूसरा कत्लेआम किया उस समय नादिरशाह के सैनिकों के हाथों इनकी मृत्यु हो गई। अब्दाली ने मथुरा पर आक्रमण संवत् 1813 और दूसरा आक्रमण संवत् 1817 में किया गया था। इन दोनों आक्रमणों का वर्णन हमें चाचा हितवृंदावनदास कृत 'हरिकला वेलि' में मिलता है।

ठारह सै सत्रहौं वर्ष गत जानियै ।
साढ़ वदी हरिबासर बेल बखनियै ।।

इन आक्रमणों में अनेक महान् हस्तियों व सन्तों का वध कर डाला गया था। सं० 1817 में चाचा हितवृंदावनदास जी ने घनानन्द का शव अपनी आँखों से देखा और उनके शव पर दुखी होते हुए इस प्रकार उसका वर्णन किया -

विरह सौ तायौ तत निबाहयौ गत साँचौपन,
धन्य आनन्दघन मुख गाई सौई करी है।
एहो ब्रजरात कुँवर धन्य धन्य तुमहूं कौ
कहा नीकी प्रभु यह जंग में बिस्तरी है

घनानन्द की अभिलाषा थी कि वे ब्रज-रज में लोटते हुए ही अपने प्राण दें और उनकी यह इच्छा भगवान् कृष्ण ने पूरी कर दी। इस बात की पुष्टि 'राधा कृष्ण ग्रंथावली' में एक स्थान पर मिलती है-सुना है, मथुरा में कत्लेआम करने वालों से उन्होंने कहा कि मुझे तलवार के घाव थोड़ी-थोड़ी देर तक दो। इनको ज्यों-ज्यों तलवार के घाव लगते गए, त्यों-त्यों ये ब्रज-रज में लोटते रहे, ऐसे देह त्याग दी ।

घनानन्द के सम्बन्ध में यह जन श्रुति भी प्रचलित रही है। कि वे निम्बार्क-सम्प्रदाय में दीक्षित थे। उनके द्वारा लिखे गये ग्रन्थ 'परमहंस वंशावली' के उपलब्ध हो जाने से उक्त धारणा और भी पृष्ट हो गई है। उसमें इन्होंने अपनी गुरु परम्परा का भी वर्णन किया है। इस गुरु-शिष्य परम्परा में घनानन्द 37वें गुरु श्री नारायण देव के शिष्य थे। घनानन्द सदा अपने ऐसे गुरु के कृपाहस्त की छाया अपने सिर पर चाहते थे। उन्हीं की भक्ति से भरकर इन्होंने 'परमहंस' वंशावली' लिखी। इस सम्प्रदाय में दीक्षित होकर घनानन्दजी साधना की ऊँची भूमिका पर पहुँच गये थे। विश्वनाथ प्रसाद मिश्र जी ने लिखा है-प्रेम साधना का अत्यधिक पथ पार कर बड़े-बड़े साधकों, सिद्धों को पीछे छोड़ सुजानों की कोटि में पहुँच गये थे। अत: सम्प्रदाय में उनका सखी भाव का नामकरण हो गया था। घनानन्द जी का साम्प्रदायिक अथवा सखी भाव का नाम करण हो गया था। घनानन्द जी का साम्प्रदाायिक अथवा सखी नाम 'बहुगुनी' था।

18.3.1 घनानन्द की रचनाएं

घनानन्द की सरस रचनाओं का सर्वप्रथम संग्रह भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने 'सुजान शतक' नाम से किया था, जिसमें सवैया, कवित, छप्पय और दोहे मिलाकर 100 से अध्कि छन्द है। घनानन्द की कृत्तियों के सम्बंध में सर्वप्रथम विस्तृत सूचना मिश्र बन्धुओं ने दी हैं। उनके अनुसार सुजान सागर, कोकसार, घनानन्द कवित्त, रसकेलि-बल्ली और कृपाकाण्ड निबन्ध नामक ग्रन्थ बनाये, जो खोज में मिले हैं। सरदार कवि ने अपने संग्रह में इनके प्राय: डेढ़ सौ छन्द लिखें हैं और इनके 425 छन्दों का एक स्फुट संग्रह देखा जा सकता है।

मिश्र बन्धुओं द्वारा प्रदत्त सूचना सभा की खोज रिपोर्टो एवं अन्य सूत्रों से उपलब्ध सूचनाओं के आधार पर आचार्य पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने सं० 2009 में 'घनानन्द ग्रन्थावली' का प्रकाशन करने का स्तुत्य कार्य किया है। घनानन्द की प्रमुख कृतियों का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है-

- **सुजानहित**

इस कृति का विशेष महत्व है। सुजानहित कवि की सबसे बड़ी रचना है। इसमें कुल मिलाकर 507 छन्द हैं, जिनमें कवित्त, सवैयों का बाहुल्य है। इसके अतिरिक्त दोहा, सोरठा भी है। इन पदों का वर्ण्य-विषय है –सुजान, उसका रूप वर्णन, प्रेम व्यंजना तथा यत्र-तत्र ब्रज-संस्कृति का चित्रण प्रत्येक छन्द हृदय स्पर्शी है। कवि की स्पष्ट आत्माभिव्यक्ति है। इन छन्दों के वर्ण्य-विषयों से लगता है कि ये छन्द सुजान के प्रति अनुरक्त होकर भी कवि ने लिखे हैं और विरक्त होकर भी, क्योंकि अनेक छन्दों में संयोग शृंगार का सरस वर्णन है तो अनेक में वियोग का हृदय-विदारक चित्रण थी ।

- **कृपाकन्द**

इस कृति में भगवद्कृपा के महत्व पर प्रकाश डाला गया है। यहां पर कि कवि की लौकिक वेदना सहज ही अलौकिकता में परिवर्तित हो गई। भगवान के अनुग्रह की कोई सीमा नहीं है। उनकी अमोध कृपा के दान को सम्भालने के लिए बुद्धि वस्त्र जीर्ण-शीणै हैं। उसे आत्मसात करने के लिए हृदय ही समर्थ है। इस कृति में पुष्टि मार्गी भक्ति के तत्व भी निहित हैं।

- **वियोग-वेलि**

प्रस्तुत कृति में कवि ने गोपियों की विरह-व्यंजना की है। इस कृति के अध्ययन से प्रतीत होता है कि श्रीकृष्ण रामलीला करते-करते अन्तर्धान हो जाते हैं, गोपियां सिसक-सिसक कर रोने लगती हैं। गोपियों की सामूहिक वेदना का चित्रण है। गोपियां बस यही कहती हैं- कृष्ण केवल हमारे हैं और हम केवल कृष्ण की हैं। वास्तव में गोपियों के माध्यम से घनानन्द का अपना हृदय ही यहां पिघल कर बह गया है।

- **इश्कलता**

इश्कलता में प्रिय के रूप, उसके प्रभाव तथा विरह-वेदना का चित्रण है, जो फारसी काव्य-शैली से प्रभावित है। इसमें इश्कलता मजाजी से इश्क हकीकी का चित्रण है। भाषा-शैली की दृष्टि से यह रचना अनोखी ही है। इसके छन्दों में कवि ने ब्रज, अरबी, फारसी, पंजाबी, खड़ी बोली तथा डोगरी आदि भाषाओं का शब्द मिश्रण करके हृदयहारी विन्यास किया है। और इस अद्‌भुत कौशल को संगीत की स्वरलहरियों में ऐसा बांधा है कि संगीत ही साकार हो उठा है।

- **दानघटा**

यह कृति दानलीला का काव्यात्मक नाटक है। इस रचना पर सूर का प्रभाव लक्षित होता है। घनानन्द ने अनेक स्थलों पर श्रीकृष्ण को 'आनंदघन' कहा है इसलिए इस कृति का नाम भी 'दानघटा' रखा है। इसमें श्रीकृष्ण, उनके सखागण तथा गोपियों के नाटकीय सम्वाद हैं। यह काव्य-नाटिका सवैया छन्द में लिखी गई है। इस रचना की लोलुपता का चित्रण है और अन्त में राधा-कृष्ण के मिलन का उपाय भी सखियों ने बताया है कि श्रीकृष्ण राधिका के गुण गा-गाकर उन्हें रिझा सकते हैं।

- **मुरलिका-मोद**

यह रचना जितनी छोटी है उतनी ही मार्मिक भी। इसमें श्रीकृष्ण तथा गोपियों का वर्णन है कि गोपियाँ मुरली से कैसे प्रभावित होती थीं। मुरली-वादन से जड़-चेतन सब कुछ प्रभावित होता है। इसमें मुरली के प्रति गोपियों का सौतिया-दाह भी व्यंजित हुआ है ।

- **पदावली**

इस कृति में विविध विषयों के पद है। वास्तव में पदावली कवि के जीवन के उत्तर पक्ष का बोध कराती है। जब उसने वैराग्य धरण कर लिया था तथा लौकिक प्रेम से हटकर अलौकिकता की ओर उन्मुख हो गया था। इसमें नायिका-भेद, प्रेम, विरह, वात्सल्य तथा राज-संस्कृति के बहुत से चित्र अंकित हैं।

श्री शम्भुप्रसाद बहुगुना इस कृति में प्रयुक्त हुए सुजान नाम को राधा और कृष्ण के लिए आमुक्त हुआ मानते हैं। पं० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने भी लिखा है कि घनानन्द भगवत् भक्ति सुजान शब्द का व्यवहार श्री राधिका के लिए अपनी रचना में बराबर करते रहे ।

स्वयं आकलन के प्रश्न

1. घनानंद का जन्म कब हुआ?
2. घनानंद किसके दरबारी कवि थे?
3. घनानंद की किसी एक रचना का नाम लिखों।
4. घनानंद किस सम्प्रदाय के अनुयायी थे।

18.4 सारांश

सारांश रूप में हम कह सकते है कि घनानंद रीतिकाल में रीतियुक्त काव्यधारा के कवि थे। उन्होंने काव्य में आत्म अभिव्यक्ति का चित्रण किया है। उनके काव्य में विरह की चरम सीमा दिखाई देती है इसलिए उनको प्रेम के पीर कवि कहा जाता है।

18.5 कठिन शब्दावली

ठारह–अठ्ठारह। **निबाहयौ**–निभाना। **ऐहो**–ऐसा। **तुमहूं**–तुम।

18.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

1. 1673।
2. मुहम्मद शाह रंगीला।
3. सुजान शतक।
4. निर्बाक सम्प्रदाय।

18.7 सन्दर्भित पुस्तक

1. रामदेव शुक्ल–घनानंद का काव्य।

18.8 सात्रिक प्रश्न

1. घनानंद का जीवन परिचय लिखों।
2. घनानंद की रचनाओं का परिचय बताओं।
3. घनानंद की काव्यगत विशेषता लिखों।

*****

इकाई–19
घनानंद : व्याख्या भाग

संरचना

19.1 भूमिका

19.2 उद्देश्य

19.3 घनानंद : व्याख्या भाग

स्वयं आकलन प्रश्न

19.4 सारांश

19.5 कठिन शब्दावली

19.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

19.7 संदर्भित पुस्तक

19.8 सात्रिक प्रश्न

19.1 भूमिका

हिंदी साहित्य में घनानंद रीतिकाल के प्रसिद्ध कवियों में से एक है उन्होंने अपने काव्य प्रेम अपने प्रेम की आत्माभिव्यक्ति की है।

19.2 उद्देश्य

1. घनानंद के जीवन परिचय का बोध।
2. घनानंद की रचनाओं का ज्ञान।
3. घनानंद की रचनाओ में वर्णित विषय का ज्ञान।

19.3 घनानंद : व्याख्या भाग

1 पद

लाजनि लपेटि चितवनि भेद–भाव–भरी, लसति ललित सोल–चख–तिरछानि मैं।
छवि को सदन गोरो बदन, रुचिर भाल, रस निचुरत मीठी मुदु मुसक्यानि में।
दसन–दमक फैलि हियें मोती–माल होति, पिय सों लड़कि प्रेम–पगी बतरानि मैं।
आनंद की निधि जगमगति छबीली बाल, अंगनि अनंग–रंग ढूरि मुरि जानि मैं।।

प्रसग : प्रस्तुत कवित्त हमारी हिन्दी की पाठ्य–पुस्तक 'मध्यकालीन हिंदी कविता ' में संकलित कवि घनानंद' द्वारा रचित 'घनानंद कवित' में से लिया गया है।

संदर्भ : प्रस्तुत कवित में घनानंद ने नायिका के रूप–सौन्दर्य एवं उनकी भाव–भंगिमाओं का वर्णन किया है।

व्याख्या : प्रस्तुत कवित्त में घनानंद ने नायिका के रूप–सौन्दर्य का चित्रण करते हुए कहते हैं कि नायिका शरमातें हुए अर्थात् लज्जा–भाव में बहुत सुंदर लग रही है। उसके सुंदर और चंचल की तिरछी भोहें बहुत सुंदर और अत्यन्त रमणीय प्रतीत होती है। अर्थात् शर्माती हुई नायिका अत्याधिक सुंदर लग रही है। उसका गौरा वर्ण, सुन्दर मुख सुंदर मस्तिष्क को देखकर लगता है मानों सौन्दर्य का भण्डार है अर्थात् सुन्दरता का साक्षात् घर है। उसकी मृदु मुस्कान से मानो मधुर रस टपक रहा हो। जब वह धीरे–धीरे मुस्कराती है तो उसकी मुस्कान

वक्षस्थल पर फैले मोतियों की माला के समान प्रतीत होती है। जब वह अपने प्रियतम से प्रेम–रस से भरी बातें करती है तब उसकी दन्तावलि की कान्ति उसके वक्षस्थल पर फैलकर मोतियों की माला के समान प्रतीत होती है। कवि कहता हैं कि अंग–अंग में जो काम–जन्य छटा छिटकती है, उससे उसका उसका रूप सौन्दर्य सुन्दर एवं आकर्षक लगता है।

विशेष

1. प्रस्तुत कवित में घनानंद ने नायिका का 'नख–शिख' वर्णन किया है।
2. सरल, सहज व भावपूर्ण ब्रज भाषा का प्रयोग हुआ है।
3. अनुपास एवं उत्प्रेक्षा अलंकारों का प्रयोग।
4. कवित्त छंद का प्रयोग है।

2 पद

झलकै अते सुन्दर आनन गौर, छके दृग राजत काननि छवै।
हंसि बोलनि मैं छवि–फूलन की बरषा उर–ऊपर जाति हैं हवै।
लट लोल कपोल कलोल करै कल कंठ बनी जलजावलि द्वै।
अंग–अंग तरंग उठे दुति की परिहै मनौ रूप अबै धर वे।।

प्रसंग : प्रस्तुत कवित्त हमारी हिन्दी की पाठ्य–पुस्तक 'मध्यकालीन हिंदी कविता' में संकलित कवि 'घनानंद' द्वारा रचित 'घनानंद कवित' में से लिया गया है।

संदर्भः प्रस्तुत पंक्तियों में कविवर घनानन्द ने नायिका के रूप–सौन्दर्य का चित्रण किया है।

व्याख्या : प्रस्तुत पंक्तियों में कविवर घनानन्द ने नायिका के रूप–सौन्दर्य का चित्रण करते हुए कह रहे हैं। कि नायिका का गौर वर्ण मुख रूप की छवि से झिलमिला रहा है। यौवन के उन्माद में उन्मत बड़ी–बड़ी आँखें कानों का स्पर्श करती हुई अत्यन्त सुशोभित हो रही हैं। जब नायिका मुस्करा कर, हँस–हँस कर कुछ बोलती है तो उसके वक्षस्थल पर सौन्दर्य के फूलों की वर्षा हो जाती है। कवि घनानन्द कहते है कि उसके चंचल तथा सुन्दर लटें नायिका के कपोलों पर क्रीड़ा कर रही है। उसके सुन्दर बालों उसकी गर्दन में मोतियों की माला की तरह शोभायमान हैं। उसके शरीर के एक–एक अंग में रूप–सौन्दर्य की लहरें उठती हैं, मानो उसका सौन्दर्य अभी–अभी पृथ्वी पर बिखर जाएगा।

विशेष

1. प्रस्तुत पंक्तियों में कवि ने नायिका के रूप–सौन्दर्य का चित्रण किया है।
2. सरल, सहज व भावपूर्ण ब्रज भाषा का प्रयोग हुआ है।
3. अनुप्रास अलकारों का प्रयोग।
4. सवैया छंद का प्रयोग है।

3 पद

छवि को सदन मोद मंडित वदन–चंद तृषित चखनि लाल, कब धौ दिखाय हो।
चटकीली भेख करें मटकीली भांति सो ही मुरली अधर धरे लटकत आय हो।
लोचन ढूराय कछू मृदु मुस्क्याय, नेह भीनी बतियानी लड़काय बतराय हौ।
विरह जरत जिय जाने, आनि प्रानप्यारे, कृपानिधि, आनंद को घन बरसाय हो।।

प्रसंगः प्रस्तुत कवित हमारी हिन्दी की पाठ्य पुस्तक 'मध्यकालीन हिंदी कविता' में संकलित कवि 'घनानंद' द्वारा रचित 'घनानंद कवित' में से लिया गया है!

संदर्भ : प्रस्तुत कवित्त में घनानंद श्रीकृष्ण के प्रति गोपी की अभिलाषा का वर्णन किया है।

व्याख्या – गोपियों कहती हैं कि हे श्रीकृष्ण! आप कब पधारोगे? सौन्दर्य–सदन प्रसन्नता से सुशोभित अपना मुख–चन्द्र इन प्यासी आंखों को कब दिखाओगे? हे श्रीकृष्ण! तुम भड़कीली वेशभूषा अर्थात् पीलेवस्त्र धारण करके चटक–मटक चाल के साथ अर्थात् मस्ती में झूमते हए और होठों पर मुरली धारण किये हुए इधर कब आओगे? अर्थात् हमारी प्यासी आँखे आपके दर्शनों की अभिलाषी हैं। हे मधुसुदन! आप अपनी आँख मटकाते हुए, कोमल मुस्कराहट मेरे मन में ललक पैदा करने वाली बाते कब करोगे? हे स्वामी आप मुझे अपने विरह में जानबुझकर जलाते हो। कवि घनानंद कहते है कि हे प्राणप्रिय। हे कृपा के सागर! आप मुझ दीन पर कब आनन्द के बादल वर्षा करोगे? अर्थात मेरी विरहाग्नि को कब बुझाओगे?

विशेष :

1. प्रस्तुत कवित्त में घनानंद ने गोपियों के विरह वेदना का चित्रण किया है।
2. सरल, सहज व भावपूर्ण ब्रज भाषा का प्रयोग।
3. रूपक श्लेष अलंकारों का प्रयोग।
4. कवित छंद का प्रयोग है।

4 पद

वहै मुसक्यानि, वहै मृदु बतरानि, वहै लड़कीली बानि आनि उर में अरति है।
वहै गति लैन, औ बजावनि ललित बैन, वहै हंसि दैन, हियरा तें न टरति है।
वहै चतुराई सों चिताई चाहिबे की छवि, वहै छैलताई न छिनक बिसरति है।
आनन्दनिधान प्रानप्रीतम सुजान जू की, सुधि सब भांतिन सों बेसुधि करति है।।

प्रसंगः प्रस्तुत कवित हमारी हिन्दी की पाठ्य–पुस्तक 'मध्यकालीन हिंदी कविता' में संकलित कवि 'घनानंद' द्वारा रचित 'घनानद कवित' में से लिया गया है।

संदर्भ : प्रस्तुत में पक्तियों घनानंद ने नायिका के रूप–सौन्दर्य एवं उनकी भाव–भंगिमाओं का वर्णन किया है।

व्याख्या : प्रस्तुत पंक्तियों में कवि नायिका के विरह की वेदना का चित्रण करते हए कहता है कि हे प्राणप्रिय! तुम्हारे साथ बिताये गये प्रत्येक क्षण याद आते है। कवि कहता है कि तुम्हारी वह मुस्कान, वहीं बच्चों वाली कोमलतायुक्त बातें मेरे हृदय में बस गयी हैं। उनकी वह मधुर, मस्त चाल, सुन्दर बाँसुरी बजाना, बात–बात पर हंसना हृदय से निकलता ही नहीं। अर्थात् मुझे आपके साथ बिताए हुए हर पल याद जा रहे है। कवि आगे कहते है कि तम्हारी वह चतुरता से प्रेरित उनकी नायिका की ओर देखने की छटा एवं वह छैलापन क्षणभर के लिए भी भुलाए नहीं भूलता, सदैव ध्यान में चढ़ा रहता है।

विशेष

1. प्रस्तुत पंक्तियों में कवि के विरह वेदना का चित्रण हुआ है।
2. सरल, सहज व भावपूर्ण ब्रज भाषा का प्रयोग।
3. अनुप्रास अलंकारों का प्रयोग।
4. कवित्त छंद का प्रयोग है।

5 पद

जासों प्रीति ताहि निठुराई सों निपट नेह, कैसे करि जिय की जरनि सो जताइयै।
महा निरदई दई कैसे कैं जिवाऊँ जीव, बेदन की बढ़वारि कहाँ ल दूराइयैं।

दु:खको बखान करिवै कौ रसना कै होति, ऐपै कहूँ वाको मुख देखन न पाइयै।
रैन दिन चैन को न लेस कहूँ पैये भाग, आपने ही ऐसे दोष काहि धौ लगाइयै ।।

प्रसंग : प्रस्तुत कवित्त हमारी हिन्दी की पाठ्य–पुस्तक 'मध्यकालीन हिंदी कविता ' में संकलित कवि 'घनानंद' द्वारा रचित 'घनानंद कवित' में से लिया गया है।

संदर्भ : प्रस्तुत कवित्त में घनानंद ने प्रेम की एकनिष्ठता एवं नायिका की निष्ठुरता, कठोरता का चित्रण किया है।

व्याख्या : प्रस्तुत कवित्त में घनानंद नायिका की निष्ठुरता, कठोरता का चित्रण करते हुए कहते है कि जिससे मैंने प्रेम किया, उसने मेरे साथ निष्ठुरता, कठोरता वाला व्यवहार किया अर्थात् उसने मुझसे प्रेम नहीं किया। कवि कहता है कि इस उपेक्षा भाव से मेरे ह्रदय में जलन होती है तुम्हे मैं कैसे बताऊँ। वह कठोर ही नहीं, बल्कि अति निर्मम है। अपने ह्रदय से उस निष्ठुरता और निर्मम को कैसे जीने दूँ। अर्थात् मैं उसे अपनी ह्रदय निकाल दूँ अर्थात् कैसे भुला दूँ ? कवि कहता है कि मैं अपनी विरह वेदना को कहाँ तक छिपाता फ़िरता रहूँ। यह पीड़ा तो निरन्तर बढ़ती ही जाती है। अब तो यह पीड़ा इतनी अधिक बढ गई है कि छिपाने से भी नहीं छिपती। कवि आगे कहता हैं कि लाज के कारण इस पीड़ा का तो वर्णन भी नहीं किया जाता। विरह की वेदना इतनी अधिक हो गई है जो असह्म हैं। कवि कहते है कि यदि प्रिय का मुख देख पाऊँ तभी सन्तोष प्राप्त होगा। अर्थात् रात–दिन चैन नहीं है, मन तड़पता रहता है। इसका प्रिय को दोष नहीं दिया जा सकता। यह तो सब अपने भाग्य का ही दोष हैं। इसीलिए मुझे ऐसी विरह–वेदना सहनी पड़ रही है।

विशेष

1. प्रस्तुत कवित्त में घनानंद नायिका की निष्ठुरता कठोरता का चित्रण किया है।
2. भावपूर्ण ब्रज भाषा का प्रयोग।
3. कवित्त छंद का प्रयोग है।

6 पद

भोर ते सांझ लै कानन ओर निहारति बावरी नेकु न हारति।
सांझ तें भोर लौ तारनि ताकिबो तारनि सो इकतार न टारति।
जौ कहूँ भावतो दीठि परै घनानंद आंसुनि औसर गारति।
मोहन–मोहन जोहन की लगियै रहै आंखिन के डर आरति।।

प्रसंग : प्रस्तुत कवित्त हमारी हिन्दी की पाठ्य–पुस्तक 'मध्यकालीन हिंदी कविता' में संकलित कवि 'घनानंद' द्वारा रचित 'घनानंद कवित' में से लिया गया है।

संदर्भ : प्रस्तुत पक्तियों में कवि घनानंद ने नायिका के विरह की व्याकुलता वर्णन किया है।

व्याख्या : प्रस्तुत पक्तियों में नायिका की सखी किसी अन्य सखी को कहती है कि सुबह से सायं तक बावली, पगली वह वन की ओर देखती रहती है और इस प्रकार देखने में वह तनिक भी थकान अनुभव नहीं करती। अर्थात् अपने नायक की आने की राह देखती रहती है। सखी कहती है की वह पागल की तरह अपने नायक की राह से सांयकाल से प्रातः काल तक अपनी आँखों को नहीं हटाती। अर्थात् नायक के आने की उम्मीद में वह रास्ता देखती रहती है। कवि कहते है कि नायिका टकटकी लगाकर नायक का रास्ता देख रही है उसका नायक कब और किधर से अया जाएँ । कवि नायिका की मानसिक स्थिति का चित्रण करते हुए कहते है कि नायिका नायक के विरह में आँखों से आँसू बहा नहीं सकती। अर्थात् यदि वह नायक के विरह में आसू बहाती

है तो उसे डर है की उसकी आँखों से आँसू बहते रहने के कारण उसकी आँखों की दृष्टि धुधुली न हो जाय और वह प्रिय को देख नहीं पाय। अर्थात् प्रिय के रूप दर्शन का अवसर ही खो बैठती है। कवि घनानंद कहते है कि इस प्रकार मनमोहन प्रिय को सामने देखने की इच्छा उसके नेत्रों के भीतर सदैव बनी रहती है।

विशेष

1. प्रस्तुत पंक्तियों में नायिका की विरह–वेदना का अत्यन्त सजीव चित्रण किया है।
2. सरल ब्रज भाषा का प्रयोग।
3. यमक अलकंार का प्रयोग।
4. सवैया छंद का प्रयोग हुआ है।

7 पद

भए अति निठुर, मिटाय पहुचानि डारी, याही दुःख हमै जक लागी हाय हाय है।
तुम तौ निपट निरदई, गई भूलि सुधि, हमै सूल सेलनि सो क्योह न भलाय है।
मीठे–मीठे बोल बोलि ठगी पहिलें तौ तब, अब जिय जारत कहौ धौ कौन न्याय है।
सुनी है कै नाहीं, यह प्रगट कहावति जू, काहू कलपाय है सु कैसे कल पायहै ।।

प्रसंगः प्रस्तुत कवित्त हमारी हिन्दी की पाठ्य–पुस्तक 'मध्यकालीन हिंदी कविता' में संकलित कवि 'घनानंद' द्वारा रचित 'घनानंद कवित' में से लिया गया है।

संदर्भ : प्रस्तुत पद में कविवर घनानन्द ने विरह में तड़पती हई विरहिणी नायिका का चित्रण किया है।

व्याख्या : प्रस्तुत पद में विरहिणी नायिका अपने प्रियतम को उपालम्भ देती हई कहती है कि – हे प्रिय! तुम अत्यन्त निष्ठुर हो गए हो। तुम मुझे भूल गए हो। तुमने मेरी पिछली जान–पहचान को भी पूरी तरह मिटा दिया है। अर्थात् तुम्हे उसका स्मरण कभी नहीं हो सकता। कवि घनानंद कहते है कि मुझे तो तुम्हारे विरह की पीड़ा की कसक किसी भी प्रकार नहीं भूलती। अर्थात यह विरह वेदना मेरे हृदय को बार – बार पीड़ित करती रहती है। कवि घनानंद कहते है कि पहले तो तुमने अपनी मीठी–मीठी बातों से मुझे फांस लिया और अब मुझसे दूर रह कर अपने विरह की अग्नि में मेरे हदय को जलाते हो। कवि कहते है। कि अब तुम्हीं बताओ यह कैसा न्याय है। कवि घनानंद कहते है कि क्या तुमने यह प्रसिद्ध कहावत नहीं
सुनी कि जो किसी को तड़पाता है, जो कष्ट देता है, वह स्वयं भी सुख–चैन नहीं पाता। अर्थात वह भी दुखी रहता है।

विशेष –

1. प्रस्तुत पद में कविवर घनानन्द ने संयोग एवं वियोग की अवस्था का चित्रण किया है।
2. सरल, सहज ब्रज भाषा का प्रयोग।
3. कवित छंद का प्रयोग।

8 पद

हीन भएं जल मीन अधीन, कहा कछु मो अकुलानि समाननै।
नीर–सनेही को लाय कलंक, निरास है कायर त्यागत प्रानै।
प्रीति की रीति सु क्यौं समुझै, जड़ भीत के पानि परें को प्रमानै।
या मन की जु दसा घन आनंद, जीव की जीवन जान ही जानै।।

प्रसंग : प्रस्तुत कवित हमारी हिन्दी की पाठ्य–पुस्तक 'मध्यकालीन हिदी कविता' में संकलित कवि घनानंद द्वारा रचित 'घनानंद कवित' में से लिया गया है।

संदर्भ : प्रस्तुत पद में घनानंद ने सच्चे एवं आत्मनिष्ठ प्रेम का वर्णन किया है।

व्याख्याः प्रस्तुत पद में घनानंद कहते हैं कि मछली जल के बिना जीवित नहीं रहती और जल के अधीर होती है। वह जल की व्याकृलता में अपने प्राण त्याग देती है। परन्तु मेरी व्याकृलता मछली की व्याकुलता के समान नहीं है अर्थात वह मेरी बराबरी नहीं कर सकती। कवि घनानंद कहते हैं मछली अपने प्रिय जल से अलग होकर कायरतापूर्वक अपने प्राणों को बलिदान कर देती और अपने प्रेमी और प्रेम को कलकित करती है। परन्तु मैं कारयरता या निराशा में आपने प्राणों का बलिदान नहीं कर सकता। अर्थात् मेरा प्रेम सच्चा और पवित्र है। मैं प्रेम को कलंकित नहीं कर सकता। कवि कहता है कि मछली प्रेम की प्रकृति और रीति को नहीं समझती इसलिए वह अपने प्राण त्याग देती है जबकि प्रेम में तो मिलन और इंतजार का भाव रहता है। अर्थात प्रेम तो जीवन को जीवन–दान देने वाली संजीवनी है। कवि घनानन्द कहते है कि मेरे इस मन की जो दशा है उसको समझने वाली संजीवनी–स्वरूप सुजान ही जानती है।

विशेष

1. प्रस्तुत पक्तियों में कवि घनानन्द ने अपनी प्रियसी सुजान की निष्ठुरता का उल्लेख किया है।
2. भावपूर्ण ब्रज भाषा का प्रयोग।
3. वक्रोक्ति अलंकार का प्रयोग।
4. कवित्त छद का प्रयोग है।

स्वयं आकलन के प्रश्न :

1. घनानंद का जन्म कब हुआ ?
2. घनानंद की प्रेमिका का नाम लिखों।
3. प्रेम के पीर कवि किसको कहा जाता है ?

19.4 सारांश

सारांश रूप में हम कह सकते है कि घनानन्द ने अपने काव्य में अपनी प्रेमिका सुजान के प्रेम को अभिव्यक्त किया है।

19.5 कठिन शब्दावली

चितवनि– दृष्टि। **लसति**– सुशोभित । **ललित**– सुन्दर, मनोहर। **लोल–चख**– चंचल **सदन**– घर। **निचुरत**– निचुड़ता है। **दसन–दमक**– दांतों की चमक। **छबीली** – छवियुक्त, सुन्दर। **आनन**– मुख। **राजत**– सुशोभित। **काननि छबै**– कानों को छते हए। **कलकंठ**– सुन्दर गर्दन। **चटकीली**– भड़कीली। **तृषित**– प्यासी। **लटकत**– प्रेम की मस्ती से झुमते हए। **नेह भीनी**– से सिक्त। **लड़काय**– ललक पैदा करके। **कृपानिधि**– कृपा के सागर। **बतरानि**– बातें। **ललित**– सुन्दर। **बैन**– बांसुरी। **टरति**– टलती। **छिनक**– क्षण भर भी। **बिसरति**– भूलती। **सुधि**– स्मृति। **बेसुधि**– होश–हवास खो देना। **निठुराई**– निष्ठुरता, कठोरता। **जरनि**– जलन। **जिवाऊँ**– जिलाऊँ। **दुराइये**– छिपाऊँ। **बावरी**– बावली। **न हारति**– थकती नहीं। **ताकियों न टारति**– देखना नहीं छोडती। **आँसुनि औसर गारति**– आँसुओं से अवसर खो देती है, रो–रोकर अवसर गंवा देती है। **निठूर**– निष्ठुर, कठोर। **सूल**–सेलनि– वेदना की टीस। **जिय जारत**– हृदय जलाते हों। **पायहै**– पाएगा। **हीन भएँ जल**– जल से वियक्त होकर। **मीन अधीन**– मछली विवश होता है, व्याकुल हो जाती है। **पानिपऐं**– हाथों में। **जान**– सुजान, प्रेमिका।

19.6 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर

1. 1673 । 2. सुजान।
3. घनानंद ।

19.7 संदर्भित पुस्तक

1. लल्लन राय – घनानंद।

19.8 सात्रिक प्रश्न

1. घनानंद का जीवन परिचय लिखो।
2. घनानंद की काव्यगत विशेषताओं का चित्रण कीजिए।

*****

इकाई–20
भूषण और घनानंद की काव्यगत विशेषता

संरचना

20.1 भूमिका
20.2 उद्देश्य
20.3 भूषण की काव्यगत विशेषता
स्वयं आकलन के प्रश्न–1
20.4 धनानंद की काव्यगत विशेषता
स्वयं आकलन के प्रश्न–2
20.5 सारांश
20.6 कठिन शब्दावली
20.7 स्वयं आकलन प्रश्नों के उत्तर
20.8 संदर्भित पुस्तक
20.9 सात्रिक प्रश्न

20.1 भूमिका

भारतीय साहित्य में वीर काव्यों की सुदीर्घ परम्परा देखने को मिलती है पर भूषण के वीरकाव्य की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इन्होंने कल्पना का प्रयोग उतना ही किया है जिसमें कोई कवि किसी तथ्य को प्रकाश में ला सकता है। पौराणिक पात्रों का प्रयोग कवि ने उपमानों के रूप में लिया है। भूषण का वीर काव्य शृंगारी भावना से बचा हुआ है और वह शुद्ध ऐतिहासिक वीरकाव्य कहलाने का अधिकारी है। इनके काव्य में देश की संस्कृति और गौरव का मान है और इस नाते व राष्ट्रीय कहलाने का अधिकारी भी है। वास्तव में इन्हीं विशेषताओं के कारण भूषण का वीरकाव्य हिन्दी साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान रखता है।

20.2 उद्देश्य

1. भूषण की काव्यगत विशेषताओं का बोध।
2. घनानंद के काव्य की विशेषताओं की जानकारी।
3. काव्य की भाषा की जानकारी।

20.3 भूषण की काव्यगत विशेषताएं

• धर्म एवं संस्कृति पर बल

भूषण में भारतीय संस्कृति के प्रति प्रेम अभूतपूर्व था। औरंगजेब द्वारा भारतीय संस्कृति के उच्च मूल्यों का विनाश किया जाना उन्हें तनिक भी नहीं भाता था। उन्हें भारतीय संस्कृति, जिसे हिन्दू संस्कृति कहते हैं, अपनी आध्यात्मिकता, अहिंसात्मकता, सहिष्णुता, सन्तोष आदि के कारण विश्व की सर्वश्रेष्ठ संस्कृति लगती थी। शिवाजी ने इन सभी उदात्त मूल्यों की पहचान की थी। शिवाजी में इन सभी उदात्त मूल्यों की उन्होंने उपस्थिति पाई। अतः उनकी लेखनी शिवाजी की ही होकर रह गई।

धार्मिकता भी राष्ट्रीयता का चिथ है। औरंगजेब द्वारा वैदिक धर्म के विनाश एवं उसके स्थान पर इस्लाम के प्रसार को देख भूषण तड़प उठे। उन्होंने ऐसे बादशाहों के कुकृत्यों की बुराई की। भूषण ने शिवाजी की प्रशंसा इसीलिए की कि उन्होंने उक्त कृत्यों का विरोध किया –

वेद शखे विदित पुरान परसिद्ध राखे
राम नाम राख्यो अति रसना सुधर में ।
हिन्दुन की चोटी रोटी राखि है सिपाहिन की
कांधे जनेऊ माला राखी गर में ।

साहित्य के साथ भाषा भी किस राष्ट्र की संस्कृति की थाती होती है। भूषण ने हिन्दी के माध्यम से भाषागत चेतना जाग्रत कर अपनी राष्ट्रीयता का परिचय दिया ।

- **आश्रयदाताओं का पराक्रम वर्णन**

भूषण ने अपने आश्रयदाताओं का पराक्रम वर्णन तथा सेनाओं के आक्रमण के संदर्भ में यथार्थ से दूर कल्पना का आश्रय लिया है। उनके काव्य में अतिशयता का समावेश है। अनेक छन्दों में अतिशयोक्ति प्रतीत होती है -

भूषन भनत नाद विहद नगारन के,
नदी-नद मद गैबरन के गलत है।
ऐल-फैल खैल मैल खलम में गैल-गैल,
गजन की ढेल-पेल सैल उलसत है।
तारा सो तरनि धूरि धारा मे लगत जिमि,
धारा पर पारा पारावार सो हलत है।।

- **राष्ट्रीय कवि** -

भूषण राष्ट्रकवि के रूप में मुखर हुए। कुछेक आलोचक भूषण को सम्प्रदायवादी तथा संकुचित विचार धारा वाला कवि कहते हैं -उनकी धारणा है कि भारत एक समूचा राष्ट्र है और भूषण ने राज्य विशेष की प्रतिष्ठा के लिए अन्य शासकों की निन्दा की तथा मुसलमानों के प्रति घृणा के भाव फैलाये। यह कथन भ्रामक है। भूषण ने हिन्दुत्व के सम्मान के प्रति आस्था के स्वर दिये तथा अन्याय एवं दमन के प्रति विद्रोह के स्वर। कवि ने अपने युग के हिन्दु-समाज का प्रतिनिधित्व किया तथा उस शासक का विरोध किया। जिसने हिन्दू जाति को नष्ट करना चाहा था। हिन्दुओं की एकता का मंत्र अन्याय के विरूद्ध खड़े होने के लिए था, राजपूतों के शोर्य की स्मृति का अर्थ वीरता तथा कर्त्तव्य बोध मात्र था। वह चापलूस कवि न था और न उसने अपने आश्रयदाताओं की प्रशंसा केवल लोभ विशेष के कारण की अपितु उनके शौर्य की यशोगाथा से समग्र भारत की सुसुप्त चेतना को जागृति देना था। शिवाजी के अतिरिक्ति छत्रमल के वीरत्व की भी प्रशंसा की है :-

भुज भुजगेस की वै संगिनी भुजंगिनी सी,
खेदि-खेदि खानी दीह दारून दलन के ।
बखतर पाखरनि बीच धसि जाती मीन,
पैर पार जात परवाह ज्यों खलन के ।।
रैया राय चम्पति का छत्रसाल महाराज,
भूषण सकत कसे बखान यों बलन के
पच्छी परछीने ऐसे परे परछीने बीर,
तेरी बरछी ने बर छीने हैं खलन कें ।

- **भूषण के काव्य में इतिहास**

भूषण कवि के काव्य के अपने युग का इतिहास मुखरित हुआ है। कवि की दृष्टि युग के यथार्थ पर अधिक रही है। इस सम्बन्ध में पीछे लिखा गया है यहाँ भूषण के काव्य में अपने युग की अनुस्यूत ऐतिहासिक स्थूल घटनाओं का विवरण, ऐतिहासिक दृष्टि से उनका अध्ययन और अध्ययन-प्रसूत निष्कर्षो का निरूपण करने का प्रयत्न किया गया है।

स्वयं आकलन के प्रश्न-1

1. भूषण के काव्य की दो विशेषता लिखिएं।
2. भूषण की काव्य भाषा का एक गुण बताओं।

20.4 घनानंद के काव्य की विशेषता

घनानंद ने अपने काव्य में प्रधनतः चार प्रकार की अनुभूतियों की व्यंजना की है, जिनकी विविध स्वरूपों में अभिव्यक्ति हुई है। ये चारों है- सौंदर्यानुभूति, प्रेमानुभूति, संयोगानुभूति एवं विरहानुभूति। इनके अनुभूति-पक्ष के अध्ययन हेतु इन पर समालोचनात्मक दृष्टि डालना समीचीन होगा।

- **भाव-पक्ष**

सौन्दर्यानुभूति-कवि घनानन्द का भावुक हृदय सौंदर्य सम्बन्धी अनुभूतियों को ग्रहण करने में अद्वितीय है। ये एक प्रेमी थे, इसलिए इन्होंने 'सुजान' के रूप-सौन्दर्य का प्रेमी की दृष्टि से अत्यन्त सूक्ष्मता से अवलोकन किया था और उसकी सौन्दर्य सम्बन्धी विभिन्न भंगिमाएँ इनके हृदय में उतरती चली गई थीं। इनके काव्य में 'सुजान' की इन विभिन्न मुद्राओं का जो सौन्दर्य अभिव्यक्त हुआ है, वह इनकी इस विशिष्ट सौन्दर्यानुभूति का परिचायक है-

सुख स्वेद-कनी मुखचन्द बनी, बिथुरी आलकावलि भांति भली ।
मद-जोवन, रूप छकी आंखियाँ अवलोकनि आरस-रंग-रली ।।
घन आनंद ओपित ऊँचे उरोजनि चोज मनोज के ओज दली।
गति ढीली लजीली रसीली सुजान मनोरथ-बेल पफली।।

कवि ने केवल 'सुजान' की सौन्दर्य-व्यंजना में ही अपनी अनुभूति की मार्मिकता का परिचय नहीं दिया है, अपितु इनकी इस मार्मिकता के दर्शन इनके प्रकृति-सौन्दर्य चित्रण में भी होते हैं।

लाजनि लपेटी चितवनि भेद-भाव भरी, लसति ललित लोल चख-तिस्छनि मैं।

छबि को सदन गोरौ बदन, रूधिर भाल-
रस निचुरत मीठी मृदु मुस्कयानि मै।
दसन-दमक फैलि हिए मोती माल होति,
पिय सों लड़कि प्रेमु-पगी बतरानि मैं।

- **भक्ति**- विषयक पदों में कवि ने कृष्ण एवं राधा के सौन्दर्य का चित्रण किया है और यह चित्रण भक्तिपूर्ण श्रद्धा से युक्त सूक्ष्म अनुभूतियों के जीवन्त चित्र के रूप में सामने आया है-

आपत चरन तनक झुकि जाऊँ। छ्वै सीत राधा के पाउँ।।
राधा को जूठनि ही जियौ। राधा को पक्षासीन ही पियौं।।
राधा कौ सुख सदा मनाऊँ। सुख दै दै हौं सुख ही पाऊँ।।

- **प्रेमानुभूति**- घनानंद एक प्रेमी थे। प्रेम में ही असफल होकर वे एक उत्कृष्ट कोटि के कवि बने थे, इसलिए उनकी प्रेमानुभूति में एक स्वाभाविक मधुरता है, जिसकी व्यंजना उनके हृदय के मर्मस्थल से होती प्रतीत होती है-

अधिक बधिक ते सुजान, रीति रावरी है,
कपट चुगो दै फिरि निपट करौ बुरी ।
गुनन पकरि ले, निपांख करि घोर देहु
मरिहि न जियै, महा विषम दया छुरी ।
हौं न जानौं, कौन धै, ही या में सिधि स्वारथ की,
लखि क्यों परति प्यारे अन्तर-कथा दुरी ।
कैसें आशा द्रुम पै बसेरा लहै प्रान खग,
बनक निकाई घनआनंद नई जुरी ।।

'सुजान' के प्रति प्रेम में व्याकुल हृदय जब उसकी रूप-सुधा का पान करता है तो उसकी एक-एक भांगीमाओं पर स्वयं ही अहमता को निछावर करता चला जाता है-

झलकै अति सुन्दर आनन गौर, छवोदृग राजत काननि छ्वै।
हँसि बोलनि में छवि-फूलन की, बरषा उर-ऊपर जाति है ह्वै ।
लट लोल कपोल करैं, कल कंठ बनी जलजावलि है।
अंग-अंग तरंग उठैं दुति की, परिहै मनौं रूप अबै धर च्वै।।

● **संयोगानुभूति**-प्रेम में संयोग का क्षण अत्यन्त उल्लसित करने वाला और तन-मन को हर्षित करने वाला होता है। प्रियतम के संग प्रणयकेलि करता कवि उसके माधुर्य में इतना गहन गोता लगानें लगता है कि वह माधुर्य उसकी अनुभूति का स्थाई अंग बन जाता है-

ललित उमंग बेलि आल-बाल अन्तद ते,
आन्नद के घन सीची रोम रोम ह्वै चढ़ी।
अगम-उछाह-चाह छायौ सु उछाह रंग,
अंग-अंग फूलन दुकुलानि परै कढ़ी ।।
बोलत बधाई दौरि दौरि के छबीलै दृग,
दसा सुभ सगुनौती नीकैं इन है पढ़ी ।
कंचुकि तरकि मिले सरकि उरोज, भुज
फरकि सुजान चोंप-चुहल महा बढ़ी ।।

रति-सुख को प्राप्त करने के पश्चात् कवि जब अपनी प्रेयसी के अलसाए अस्त-व्यस्त रूप को देखता है, तो उसके प्रणय-रस की प्राप्ति कर विमुग्ध हो उठता है। यह विमुग्धता उसके मर्म को प्रभावित करती है और वह उस अनुपम सौन्दर्य की व्यंजना निम्नलिखित रूप में करता है-

केलि की कला निधान सुंदरि महा सुजान,
आन न समान छवि-छाहै। पै छिपैयै सौनि ।
माधुरी-मुदित मुख उति सुसील भाल,
चंचल विसाल नैन लाज भीजिए चितौनि ।।

● **विरहानुभूति**- हृदय की कोमल भावनाएं जब किसी का स्नेह पाकर उसके अस्तित्व से जुड़ जाती है तो मानव-हृदय उसके प्रति समर्पित हो जाता है। इस समर्पण का भाव और भी गहन तब होता है जब दूसरा पक्ष भी उसे प्रेम-भरा समर्पण प्रदान करता है। इस समर्पण-भाव को ही प्रेम कहा जाता है तब प्रेम का यह स्वरूप ईश्वरीय रूप धरण कर लेता है। इन समर्पण के क्षणों में मनुष्य सारी दुनियादारी, प्रपंच, दल

और आडम्बर से विहीन हो जाता है, किन्तु ऐसा समर्पण दो भावुक हृदय के स्नेहसिक्त प्रेम में ही उत्पन्न हो सकता है। इसमें यदि एक पक्ष भी कृत्रिम भावुक्ता से युक्त रहा तो इस प्रेम में की गई परिणति अत्यन्त दारूण होती है। घनानन्द एक भावुक प्रेमी थे, किन्तु उनकी 'सुजान' जो सम्भवतः कोई नर्तकी या वेश्या थी, उनसे प्रेम का नाटक करती थी। घनानन्द ने उसके प्रेम में अपना पद, व्यक्तित्व मर्यादा सब कुछ त्याग दिया, किन्तु वह उन्हें निष्ठुरता से ठुकरा गई। वे इस चोट को सहन नहीं कर सके और जीवन भर उस व्यथा को अपने काव्य में व्यक्त करने का प्रयास करते रहे –

लोचननि तारे हैं सुझावौ सब सूझौ नाहिं।
बूझी न परित, ऐसे सोचनि कहा दहो
हौं तो जान राप, जाने जाहु न आजस चाहें,
आनन्द के घन छाय-छाय उकरे रहौ ।
मूरति मया की हाहा सूरति दिखायै नेक,
हमै खोय या विधि हों कौन धौं हमैं लहा लहौ ।।

कुछ विद्वान यह भी कहते हैं कि बादशाह के मीरमुंशी जैसे पद पर आसीन घनानन्द इस सत्य से परिचित नहीं थे कि नर्तकियां या वेश्याएं किसी से प्रेम नहीं करतीं, अपितु सम्पत्ति की चाह में प्रेम का नाटक करती हैं?...एक भावुक हृदय व्यक्ति होने के कारण उन्होंने मृर्खता की थी और इस मूर्खता का परिणाम उन्हें जीवन भर भोगना ही था।

सांसारिक दृष्टिकोण से यह विश्लेषण सत्य है, किन्तु भावनाओं के दृष्टि कोण से इसका कोई मूल्य नहीं है। प्रेम, प्रणय का पर्याय नहीं है। यह एक ऐसी भावना है जो मनुष्य के हृदय को पशु-पक्षियों तक से जोड़ देती है और वे भिन्न प्राकृतिक जीव भी इसके तरंगों की अनुभूति करने लगते हैं। प्रेम में दुनियादारी, समाज, रीति, व्यवस्था आदि का ध्यान नहीं रहता। इसमें सौन्दर्य, आयु, सामाजिक स्तर, जाति-धर्म आदि तत्वों का कोई महत्व है। जिससे नेह लग जाए, प्रेमी हृदय के लिए वही उसका इष्ट होता है। फिर, ऐसा नहीं कि वेश्याएं या नर्तकियों के पास हृदय नहीं होता और यह भी पूर्णरुपेण स्पष्ट नहीं है कि सुजान नर्तकी या वेश्या थी। कुछ विद्वान उसे किसी रंगरेज (कपड़ा रंगने वाली) की पुत्री बताते हैं, जो घनानन्द के सामाजिक स्तर, तत्कालीन, धर्मिक-सामाजिक रूढ़ियों एवं उसके उल्लंघन के कारण उन पर आनेवाली विपत्तियों को ध्यान में रखकर उनके प्रणय-बन्धन को तोड़ गई थी।

कारण चाहे जो भी हो, सुजान की इस निष्ठुरता ने कवि के हृदय में हाहाकार उत्पन्न कर दिया और यह हाहाकार जब काव्य के रूप में व्यक्त हुआ तो उसकी मार्मिकता किसी को भी उद्वेलित कर देने के लिए पर्याप्त थी। विरह से व्याकुल कवि का हृदय मार्मिकता की व्यंजना में उसके चरमोत्कर्ष पर पहुँच गया –

अन्तर उदेग दाह आंखिन प्रवाह आंसू,
देखी अटपटी चाह भीजनि दहनि है ।
सोइबो न जागिबो हो, हँसिबों न रोइबो हूँ।
खोय-खोय आप ही में। चेतक लहनि है।।
जान प्यारे आवत बंसत पै आनन्दघन
विरह विषय दसा मूल लौ कहनि है।
जीवन मरन् जीव मीच बिना बन्यौ आप
हाय कौन विधि नची नेही की रहनि है ।।

अत: यह निर्विवाद रूप में कहा जा सकता है कि घनानंद के काव्य की श्रेष्ठता का मूल तत्व उसकी मार्मिकता है, जिसकी व्यंजना में कवि ने किसी आडम्बर या कृत्रिमता की सहायता नहीं ली है, अपितु अपने हृदय की वास्तविक अनुभूतियों को इसमें प्रवाहित कर दिया है। उनकी अनुभूति की इसी तीव्रता एवं मार्मिकता ने उन्हें हिन्दी–साहित्य के श्रेष्ठतम कवियों की श्रेणी में ला खड़ा किया है। कवि की अनुभूति सम्बन्धी श्रेष्ठता का उदाहरण उनके भक्ति–पदों में भी यत्र–तत्र दृष्टिगत होता है, किन्तु इसका स्वरूप उन्हीं पदों में अधिक मार्मिक रूप में अभिव्यक्त हुआ है। जिनमें उन्होंने विरहभाव से कृष्ण की भक्ति–व्यंजना की है। घनानन्द मूलत: प्रेम–भाव के कवि हैं, इस कारण उनकी मार्मिकता के वास्तविक दर्शन उनकी श्रृंगारिक रचनाओं में, विशेषत: विरहभाव की रचनाओं में ही होते हैं।

- **कला–पक्ष**

घनानन्द के भावोत्कर्ष का मूल कारण यह है कि उनका कला–पक्ष भी उन भावों के अनुरूप ही उत्कृष्ट है। घनानन्द की भाषा की स्वाभाविकता और सरलता उनके भावों का उत्कर्ष करने में अधिक सहायक रही है। घनानंद ने अलंकारों और अनुप्रासों को जागरूक होकर काव्य में स्थान नहीं दिया, वह तो उनके भावों के वेग के साथ स्वयं चले आए हैं। घनानन्द को शब्दों की शक्ति का पूरा ज्ञान था इसलिए उनके लाक्षणिक और व्यंग्य प्रयोग उनके भावों को उभारने में अधिक सहायक हुए हैं। मुहावरे और लोकोक्तियों की भी इस महान कलाकार ने बड़ी सुन्दरता और उपयुक्तता के साथ व्यवहृत किया है। इस प्रकार महाकवि घनानंद के काव्य में जिस प्रकार हृदय की गहरी पैठ थी, उसी प्रकार कला–पक्ष की कुशलता भी उच्चकोटि की थी।

- **भाषा–प्रयोग**– घनानन्द के काव्य के प्रसिद्ध प्रशस्तिकार ब्रजनाथ की दृष्टि में घनानन्द की भाषा के गुण इस प्रकार है –क्रांति गांभीर्य और विविधि प्रकार की अर्थवत्ता, साधना सापेक्षता, सुन्दरता, स्वच्छता, एकरूपता या सांचे में ढला हुआ होना, सुघड़ता, अनूठापन और गूढ़ता । उनकी इस प्रकार की भाषा को तथा उसके सौन्दर्य को वही समझ सकता है, जो भाषा प्रवीण हो –

नेही महा ब्रजभाषा प्रवीण औ सुन्दरतानि के भेद को जानै,
जोग वियोग की रीति मैं कोविद भावना–भेद–स्वरूप को ठानै।
चाह के रंग मैं भीज्यौ हियो, विछुरें मिलें प्रीतम संाति न मानै,
भाषा–प्रवीन सुछन्द सदा रहै, सो घन जी के कवित बखानै।

इस छन्द में स्पष्ट है कि घनानन्द का शब्दकोश समृद्ध है 'ब्रजभाषा में तो उनकी गहरी पैठ है। उनकी भाषा का स्वरूप साहित्यिक होते हुए भी ठेठ ब्रज के लोकप्रयुक्त स्वरूप का मार्धुय लिए हुए है, साथ ही उनके निजी व्यक्तित्व का सौन्दर्य बांकपन, माधुर्य आदि भी उसमें समा गया है। उनकी भाषा में फारसी, संस्कृत आदि भाषाओं के शब्द बहुत कम आये हैं, वे उनकी भाषा–शैली के सांचे में ही ढले हुए मिलेंगे। ब्रजभाषा के संदर्भ में घनानन्द कवित्त, सवैया, पद–छन्दों का लालित्य तो कोमलकांत पदावली की प्रधानता । वे अपनी कविता में भाषा को भावों में ब्रजभाषा के मधुर लालित्य तथा पद–संघटना का प्रमुख कारण उनकी वर्ण–योजना है। वर्णो की योजना करते समय कवि वर्ण–संगति तथा वर्ण संगीत को महत्त्व देता है। घनानन्द अच्छे संगीतज्ञ भी थे। भाषा के स्वर लालित्य का मूल प्रयोजन यही प्रवृत्ति है। ब्रजभाषा की मुधर पद संघटना की दृष्टि से निम्न छन्द उल्लेखनीय है–

'एरे बीर पौन, तेरो सबै ओर गौन, बीरी,
तो सो और कौन, मनैं ढरकौही बानि है।
जगत के प्रान ओछे बड़े सौं समान ध्न,
आनन्द–निधान, सुखदान दुखि गनि है।
धूरि तिन पावन की हाहा निकु आनि है।

उपर्युक्त छन्द में 'बीर, पौन, गौन और कौन' ढरकोही-बानि है, प्रान समान आनन्द-निधान, सुखदान, हाहा आदि शब्द संगीत तत्व के बोधक है। पाठक पढ़ते ही मृदंग जैसे घोष की अनुभूति करता है।

घनानन्द की भाषा के भावानुकूल लालित्य को दृष्टि में रखकर ही शुक्ल जी ने लिखा है, इनकी-सी विशुद्ध, सरस और शक्तिशाली ब्रजभाषा लिखने में कोई कवि समर्थ नहीं हुआ। विशुद्धता के साथ प्रौढ़ता और माधुर्य भी अपूर्व है।

भाषा की नाड़ी की सुन्दर पहचान उन्हें थी। शब्दों को छन्द के अनुकूल भाव के रूप अनुकूल रूप देकर वे कविता के चरणों में इस प्रकार बांध दिया करते थे मानो वही उनकी निश्चित जगह हो, वे वहां से भाव को विश्रृंखलित किए बिना इधर-उधर नहीं किए जा सकते ।

● **शब्दयोजना**- घनानन्द के काव्य में शब्दों का प्रयोग भावानुकूल स्थितियों में बड़ा ही भव्य बन पड़ा है। इन्हें 'भाषा प्रवीन' भी कहा गया है। घनानन्द के काव्य में तत्सम, तद्भव, देशज, देशी, विदेशी भाषाओं के शब्दों के प्रयोग को देखकर लगता है कि उनका शब्द भंडार काफी समृद्ध था। उनके द्वारा प्रयुक्त कुछ शब्द निम्न प्रकार है-

तत्सम - पंजक, कुरंग, विभाकर, दिनेश, मलय,ह्रदय, अर्क आदि ।

तद्भव - परंजरू, जतन, उदेग, निसि, पदराथ, दीठी आदि ।

देशज - डैस, ढोबा, अखीली आदि ।

पंजाबी - नाल, कित, बल, लेखां, गल्लां, कीता, जाणदा आदि ।

विदेशी - इस्क, चस्का, महबूब, इलम, जिगर आदि ।

● **सूक्तियों का प्रयोग** - घनानन्द के सामने भाषा लाचार-सी प्रतीत होती है, उन्होंने जिधर चाहा है, भाषा को बेधड़क मोड़ दिया है, पर उनके भाषा-शिल्प की प्रमुख विशेषता यह है कि काव्य रस में बाधा नहीं आ पाई है। घनानन्द की उक्तियों में जो भंगिमा है वह और कहीं प्राप्त नहीं होती। उनके समस्त काव्य में एक से एक सुन्दर और श्रेष्ठ उक्तियां भरी पड़ी हैं। उनमें जो नवीनता और भाव-व्यंजकता है वह साधारण तथा सुलभ नहीं। कतिपय उदाहरण दृष्टव्य हैं -

अंग अंग तरंग उठै दुति की परि है मनौ रूप अबैघर च्वै ।
प्यास भरी बरसैं तरसैं मूख देखन को आँखियां दुखदाई ।

लोकोक्तियाँ और मुहावरे -कहावतों और मुहावरों से भी घनानन्द की भाषा सजीव हुई है। कहावतों की अपेक्षा मुहावरों का प्रयोग घनानन्द ने अधिक किया है। यों कहावतों के प्रयोग की दृष्टि से ठाकुर अद्वितीय हैं। घनानन्द द्वारा प्रयुक्त एक कहावत इस प्रकार है-

सुनी है कै नाही यह प्रगट कहावत जु,
काहू कलपाइ हैं सु कैसें कलपाई है।

इसी प्रकार विष घोलना, छाए रहना, पाटी पढ़ना आदि मुहावरे भी प्रयुक्त हुए हैं। इन सभी साधनों के प्रयोग के कारण घनानन्द की भाषा, से प्राण, अर्थ की शक्ति से सम्पन्न और विशिष्ट हो गई है।

● **अलंकार विधान** - घनानन्द की अधिकांश कविता सरल, निरलंकृत भावावेशपूर्ण शैली में लिखी गई है। इसमें कहीं-कहीं अलंकारों का समायोजन भी हुआ है, परन्तु वे सहज साधरण ढंग से अनायास ही चले आये हैं। दूसरी बात यह है कि इनकी अलंकारिकता परम्परायुक्त अलंकारिकता से भिन्न है, यह भावों की अभिव्यक्ति के लिए हुई है।

घनानन्द के काव्य में शब्दालंकार, अर्थालंकर एवं उभयालंकार अर्थात् तीनों प्रकार के अलंकारों का प्रयोग हुआ है। कवि ने शब्दों के अलंकारों का प्रयोग जमकर किया है किन्तु वे कहीं भी भावाभिव्यक्ति एवं रसात्मकता में बाधक नहीं वरन साधक ही बनकर आये हैं। अलंकारों के विभिन्न प्रयोगों से काव्य शिल्प के कला तथा भाव पक्ष दोनों का ही परिष्कार हुआ है। घनानन्द के काव्य में शब्दालंकारों में अनुप्रास, श्लेष, यमक एवं वक्रोक्ति का बहुत प्रयोग हुआ है। यमक का उदाहरण दृष्टव्य है–

उमगि–उमगि घन आनंद मुरलिका में
गौरी गाय ढौरी सौ बुलावै गौरी गाय को।

यहां गौरी शब्द के क्रमशः अर्थ रागिनी विशेष और गौर वर्ण की गाय है। घनानन्द के काव्य की सम्पदा उनका अर्थ गाम्भीर्य है। अर्थालंकारों में घनानंद ने उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, विरोधाभास, व्यतिरेक आदि अलंकारों का बड़ा ही मार्मिक अंकन किया है। विरोधाभास घनानन्द का सबसे प्रिय छंद है। उनके काव्य में विरोध ने जिस आलंकारिक सौन्दर्य की सृष्टि की है, उसका मूल उत्स उनका हृदय, उनके विचार उनका जीवन है जो विषमता का कोष था। उनका जीवन विषम परिस्थितियों और मनः स्थितियों का केन्द्र था। इसलिए अपने प्रेम को बिना बांकपन के, बिना स्थिति वैषम्य के निदर्शन के और कुछ तो नहीं तो बिना शब्द–विरोध ा को वे व्यक्त नहीं कर पाते थे। यही कारण है कि विरोधाभास की उनकी आलंकारिक सौन्दर्य–चेतना को केन्द्र बिन्दु हो गया है–अलंकार इसी केन्द्रीय शोभापरक धर्म के ईर्द–गिर्द चक्कर लगाते हैं–

मीत सुजान अज्ञात करौ जिन, हा हा वहुजियै तोहि अमोही ।
एक विश्वास की टेक गहें लगि आस रहै बसि प्रान बटोही ।
हो घनानन्द जीवन मूल दई कित प्यासनि मारत मोही ।।

घनानन्द अपने विचित्र प्रिय के व्यवहार का चित्रण करते हुए लिखते हैं कि वह मीत होकर भी अनीति करता है। अनीति तो पुष्ट करेगा, वह मीत कैसा? मोहक होते हुए भी प्रेमी के लिए अमोही बन जाता है। जीवन पानी का मूल स्रोत है, फिर भी प्यासा मरता है।

घनानन्द का दूसरा प्रिय अलंकार रूपक है। उन्होंने एक से एक नए कितने ही सांग रूपक प्रस्तुत किए। उदाहरण के लिए निम्न वैराग्य परक छन्द में कवि का आसाधरण कौशल दर्शनीय है जिसमें उन्होंने जड़ जीव को उद्बोधित किया है–

बाल्यावस्था की संध्या तो तूने हंस रोकर गंवा दी, और यौवन की रात्रि विष की मदिरा पीकर और सोकर गंवा दी। अरे जड़ चातक जीव आनंद घन को छोड़ संसार के धुएं को ही तू मेघ समझे हुआ था। अब भी जग की ओर देखता नहीं कि केशों की ओर से सवेरा हो रहा है। ऐसे अनेक उदाहरण उनके काव्य में यत्र–तत्र बिखरे पड़े हैं।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि घनानन्द की शैली ही निराली थी। उनकी शैली में जो अलंकार हैं वह उनके व्यक्तितत्व से प्रसूत है। अलंकारों के नितांत वैयक्तिक प्रयोग, सूझ की मार्मिकता के साथ–साथ नवीनता और अनोखापन उन्हें ब्रजभाषा के अद्वितीय शिल्पकारों की श्रेणी में बिठा देते हैं।

● **छन्द योजना** – घनानन्द ने अपनी काव्य सर्जना में कवित्त और सवैया इन दो छंदों को सर्वाधिक अपनाया। इनमें छंदों में किसी प्रकार का दोष नहीं है। रीतिकालीन मतिराम और देव जैसे सफल कवियों में भी छंद–विषयक दोष पाये जाते हैं। इनमें कवियों की मस्तानी चाल पर शुक्ल जी विभोर हो उठे थे।

स्वयं आकलन के प्रश्न–2

1. घनानंद के काव्य की दो विशेषता बताओं।
2. घनानंद के भाषिक प्रयोग की एक विशेषता लिखों।

20.5 सारांश

कहा जाता है कि कविवर घनानन्द के काव्य में दोनों पक्ष ही उन्नत तथा भव्य है। कवि ने अपने काव्य में कला पक्ष को भिन्न करके नहीं देखा, वह तो उनके भाव पक्ष का ही सहायक रहा है। उनके सम्पूर्ण काव्य में भाव की उच्चता के साथ-साथ भाषा, अलंकार, अनुप्रास तथा अन्य उपकरणों को भी घनानन्द ने भाव व्यंजना के लिए अपनाया है। उनका काव्य उनके हृदय के सरल उद्गार मात्र ही थे। उनकी संतुलित दृष्टि के पफलस्वरूप उनका अनूठा काव्य वैभव उनको रीतिकालीन कवियों की कोटी से पृथक कर देता है। इसलिए तो घनानन्द को रीति-काल के स्वच्छंदतावादी कवियों की अनुपम माला का बहुमूल्य मोती स्वीकार किया जाता है, लक्षण का वैभव है, मुहावरों की उक्तिचातुरी है तथा वचन की वक्रता है। इन काव्य गुणों का जैसा उत्कर्ष घनानन्द की कविता में मिलता है वैसा अन्यत्र नहीं ।

20.6 कठिन शब्दावली

दाता- आश्रयदाता। **चढ़यो**-चढ़ाई । **मोहि** - मुझे। **इन्हू**- इन्हें। **उन्हूं**- उन्हें। **आपत**- अपने आप। **कपट**- छल। **निपट**- शुद्ध रूप।

20.7 स्वयं आकलन प्रश्न के उत्तर

स्वयं आकलन प्रश्न-1

1. आश्रयदाताओं की स्तुति और वीर रस की प्रधानता।
2. रस का प्रयोग और अलंकारों का प्रयोग।

स्वयं आकलन प्रश्न-2

1. आत्म अभिव्यक्ति और विरह की प्रधानता।
2. ब्रज भाषा का प्रयोग और मुहावरेदार भाषा।

20.8 सन्दर्भित पुस्तक

1. रामदेव शुक्ल- घनानंद का काव्य।

20.9 सात्रिक प्रश्न

1. भूषण की काव्यगत विशेषता बताओं।
2. घनानंद के काव्य की विशेषता लिखों।

*****

स्नातक प्रथम वर्ष
हिन्दी नवीन पाठ्यक्रम

कोर्स कोड : **HIND 103**
DSC-1B (CBCS)

मध्यकालीन हिन्दी कविता

इकाई 1 से 20

संशोधितः डॉ. मंगत राम

अन्तर्राष्ट्रीय दूरवर्ती शिक्षा एवं मुक्त-अध्ययन केन्द्र
हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय, ज्ञान पथ
समरहिल शिमला -171005

अनुक्रमणिका

क्र.सं.	विषय	पृष्ठ संख्या
इकाई–1	कबीरदास का जीवन परिचय	
इकाई–2	कबीरदास : व्याख्या भाग	
इकाई–3	सूरदास का जीवन परिचय	
इकाई–4	सूरदास : व्याख्या भाग	
इकाई–5	कबीरदास और सूरदास की काव्यगत विशेषताएं	
इकाई–6	तुलसीदास का जीवन परिचय	
इकाई–7	तुलसीदास : व्याख्या भाग	
इकाई–8	मीरांबाई का जीवन परिचय	
इकाई–9	मीरांबाई : व्याख्या भाग	
इकाई–10	तुलसीदास और मीरांबाई की काव्यगत विशेषताएं	
इकाई–11	रसखान का जीवन परिचय	
इकाई–12	रसखान	
इकाई–13	बिहारी का जीवन परिचय	
इकाई–14	बिहारी : व्याख्या भाग	
इकाई–15	बिहारी और रसखान की काव्यगत विशेषताएं	
इकाई–16	भूषण का जीवन परिचय	
इकाई–17	भूषण : व्याख्या भाग	
इकाई–18	घनानंद का जीवन परिचय	
इकाई–19	घनानंद : व्याख्या भाग	
इकाई–20	भूषण और घनानंद की काव्यगत विशेषताएं	